पुरातत्त्वमन्दिर-ग्रन्थावली

आचार्यश्रीसिद्धसेनदिवाकरप्रणीतं

सन्मतितर्क-प्रकरणम् ।

जैनश्वेताम्बर-राजगच्छीय-प्रद्युम्नसूरिशिष्य-तर्कपञ्चानन-

श्रीमद्-अभयदेवसूरिविनिर्मितया तत्त्वबोधविधायिन्या

व्याख्यया विभूषितम् ।

पञ्चमो विभागः ।

[समाप्तश्चायं ग्रन्थः]

गूजरात विद्यापीठ

अमदावाद

गूजरात
पुरातत्त्वमन्दिर
ग्रन्थावली



गुजरातपुरातत्त्वमन्दिरग्रन्थावली

आचार्यश्रीसिद्धसेनदिवाकरप्रणीतं

-प्रकरणम्।

श्वेताम्बर-राजगच्छीय-प्रद्युम्नसूरिशिष्य-तर्कपञ्चानन-
श्रीमद्-अभयदेवसूरिनिर्मितया तत्त्वबोधविधायिन्या
व्याख्यया विभूषितम्।

पञ्चमो विभागः।

(तृतीयं काण्डम्)

गूजरातविद्यापीठप्रतिष्ठितपुरातत्त्वमन्दिरस्थेन
संस्कृतसाहित्य-दर्शनशास्त्राध्यापकेन
पं० सुखलालसंघविना
प्राकृतवाङ्मयाध्यापकेन जैनन्याय-व्याकरणतीर्थ-
पं० बेचरदासदोशिना च
पाठान्तर-टिप्पण्यादिभिः परिष्कृत्य संशोधितम्।

गूजरात विद्यापीठ
अमदावाद

प्रथमावृत्ति, प्रतिसं० ५००] संवत् १९८७ [मूल्यम्-१०

प्रकाशक:—नरहरि द्वारकादास परीख महामात्र, गूजरात विद्यापीठ,
अमदावाद

मुद्रक:—रामचंद्र येसू शेडगे, निर्णयसागर प्रेस, नं. २६–२८, कोलभाट लेन, मुंबई.

टीका-टिप्पण्युपयुक्तग्रन्थसंकेतस्पष्टीकरणम्।

संकेत	ग्रन्थ
अनुयोगद्वारवृत्तिः	
आचारा० सू०	आचाराङ्गसूत्रम्
आवश्यकनि० उपोद्घातनि० ,, प्रथमाव० ,, सामायिकनि०	आवश्यकनिर्युक्तौ उपोद्घातनिर्युक्तिः, प्रथमावश्यकनिर्युक्तिः, सामायिकनिर्युक्तिः
उत्तरा०	उत्तराध्ययनसूत्रम्।
ओघनि०	ओघनिर्युक्तिः।
का०	कारिका।
गु० मू०	गुलाबविजयसत्का सन्मतिसूत्रमूलप्रतिः।
जीवविचा०	जीवविचारप्रकरणम्।
जीवाजीवाभि० प्रतिप०	जीवाजीवाभिगमसूत्रे प्रतिपत्तिः।
जम्बूद्वीपप्र० वक्ष०	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ वक्षस्कारः।
तत्त्वार्थ० तत्त्वार्थसू०	तत्त्वार्थसूत्रम्।
तत्त्वार्थ० भा०	तत्त्वार्थभाष्यम्।
तत्त्वार्थराजवा०	तत्त्वार्थराजवार्तिकम्।
द्रव्यगुणपर्यायरासः	
धर्मसं०	धर्मसङ्ग्रहणीसूत्रम्।
नवत०	नवतत्त्वप्रकरणम्।
नैषध०	नैषधकाव्यम्।
न्यायकुमुद० लि०	न्यायकुमुदचन्द्रोदयः लिखितः।
परमात्मप्रकाशः	
पातञ्जलद०	पातञ्जलदर्शनम्।
पञ्चाध्या०	पञ्चाध्यायी अमृतचन्द्रीया
पञ्चाश०	पञ्चाशकम्।
पञ्चाशकटी०	पञ्चाशकटीका।
पञ्चास्ति०	पञ्चास्तिकायः।
प्रवचन० प्रवचनसा०	प्रवचनसारः।
प्रवचनसारो० द्वा०	प्रवचनसारोद्धारे द्वारम्।
बृहत्सं० वृक्ष०	बृहत्संहिता (वाराही संहिता) वृक्षायुर्वेद-प्रकरणम्
ब्रह्मसू० शां०	ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्।
भगव० भगवतीसू०	भगवतीसूत्रम्।
मनु० मनुस्मृ०	मनुस्मृतिः।
महाभा० शान्ति० मो० ध० अ०	महाभारतम् शान्तिपर्वणि मोक्षधर्म अध्यायः।
महाव्युत्पत्तिः	बौद्धग्रन्थः।
यास्कनि०	यास्कनिरुक्तम्।

वाच०	वाचस्पत्य।
वायुपुराणम्	
विशेषाव०	विशेषावश्यकभाष्यम्।
वैद्यक० सिं०	वैद्यकशब्दसिन्धुः।
वैशेषिकद्वात्रिंशिका	
श० } शत० }	शतकम्।
शास्त्रदी०	शास्त्रदीपिका।
शास्त्रवा० समु० स्तव०	शास्त्रवार्तासमुच्चये स्तवकः।
श्लो० वा० वाक्याधि०	श्लोकवार्तिके वाक्याधिकारः।
,, औत्पत्तिकसू०	,, औत्पत्तिकसूत्रम्।
षड्द० स०	षड्दर्शनसमुच्चयः।
षड्द० वृ०	षड्दर्शनसमुच्चयस्य बृहद्वृत्तिः।
सनातन प्र० गु०	सनातनजैनग्रन्थमाला प्रथमो गुच्छकः।
सनातन प्र० गु० स्वयंभूस्तो० अर०	,, अरनाथस्तोत्रम्।
सूर्यसिद्धान्तः	
स्वयंभू० } स्वयंभूस्तो० }	स्वयंभूस्तोत्रम्।

विषयानुक्रमः ।

संपादकीय निवेदन।

सन्मतिना पांचमा भागमां त्रीजुं कांड पूरुं थावी गयुं छे. अने ए रीते त्रिकांडी आ आखो [illegible] मूळ अने टीका साथे पांच भागोमां पूरो थाय छे.

१९८६ नी शरुआतमां ज छपाई गयेलुं आखुं त्रीजुं काण्ड तैयार हतुं एथी मात्र मूळ अने [illegible] पूरतो पांचमो भाग बीजा भागोनी जेम प्रगट करी शकाय तेम तो हतो पण एमां केटलांक [illegible] परिशिष्टो उमेरवानां होवाथी तेनुं प्रकाशन लंबाववामां आव्युं छे. आ पांचमा भागने अंगे [illegible] निवेदन नीचेना मुद्दा परत्वे छे.

१ त्रीजा कांडना मूळ अने टीकानुं परिमाण.

२ मूळनो विषय अने मूळकारनी तेजस्विता.

३ टीकाना [illegible] चर्चा अने टीकाकारना समयनुं वातावरण.

४ कांडनां नामो अने ग्रंथना पूर्वमुद्रित नामनुं परिवर्तन.

५ [illegible] उपयोग अने परिशिष्टोनो परिचय.

(१) आ कांडनी मूळ गाथाओ मात्र मूळवाळा लिखित पुस्तकमां ७० छे अने मूळसहित [illegible] लिखित पुस्तकोमां एक गाथा ओछी छे–६९ छे. मूळवाळा लिखित पुस्तकमां जे गाथा ७० [illegible] छे ते गाथाने टीकावाळां पुस्तकोमां [illegible] ६९ मी गणवामां आवी छे. एटले मूळवाळा [illegible] ६९ मी छे ते गाथाने टीकावाळां पुस्तकोमां स्थान आपवामां नथी आव्युं. अमारा [illegible] पृ. ७१० मां नोंधी छे.

[illegible] आशीर्वादात्मक मंगळ सूचवे छे. अने आ [illegible] गाथा [illegible] छे. [illegible] आदि, मध्य अने अंतमां मंगळ होवां जोइए, [illegible] मंगळात्मक शब्दनो निर्देश मळे छे. [illegible] मंगळ थई जाय छे [illegible]

[illegible]

[illegible]

आगळना भागो—कांडो—नी जेम आ भागमां पण टीकाकारे पोतानी टीकाने केटलेक स्थळे विस्तारेली छे अने केटलेक स्थळे टूंकावी छे. एकंदर जोतां कोई पण भाग करतां आ भागमां टीकानुं परिमाण खास ओछुं जणाशे नहि. आ भागमां द्वितीय भागनी अपोहचर्चानी जेम कणादमतनी परीक्षाना प्रकरणमां श्रीशांतरक्षितना तत्त्वसंग्रहनुं पूरेपूरुं प्रतिबिंब छे, जे अमे टिप्पणमां एनी कारिकाओ वगेरे मूकीने जणाव्युं छे.

(२) न्यायना कोई पण ग्रंथमां प्रमाण अने प्रमेय ए बे तत्त्वनी चर्चा प्रस्तुत होय छे ज्यारे जैनन्यायना ग्रंथमां ए बे उपरांत त्रीजी नयनी चर्चा पण होय छे. प्रस्तुत प्रकरणमां पहेलामां नयनी, बीजामां ज्ञान या प्रमाणनी अने त्रीजा कांडमां ज्ञेय के प्रमेयनी चर्चा करेली छे.

गौतम के दिग्नागनी प्रमेयनी चर्चाओनी जेम आ प्रकरणनी प्रमेयनी चर्चामां पदार्थना स्वरूप विषे एटले के संसारमां मुख्य तत्त्वो अमुक अमुक छे, तेना भेदो प्रभेदो अमुक छे अने ते प्रत्येकनुं स्वरूप अमुक जातनुं छे, एवी खास कंई चर्चा करवामां नथी आवी. परंतु पदार्थना स्वरूपने कई रीते समजवुं जोईए अने पदार्थने कई रीते जोईए तो बराबर समजाय एवी समजण वधु वीगतथी आपवामां आवी छे, अने विचारना जगतमां जीव अने जगत विषे जे जे विरोधी मान्यताओ चाली आवे छे तेनो समन्वय करवानी दृष्टि पण आ प्रकरणमां खास मूकवामां आवी छे.

एक अनुभवी कहे छे के दृश्य अने अदृश्य बधुं नित्य छे, अने बीजो अनुभवी कहे छे के ए बधुं अनित्य छे. आ मान्यताओ जे बे दृष्टिकोण उपर रहीने स्थिर करवामां आवी छे ते दृष्टिकोण जिज्ञासुओना ख्यालमां आवी जाय तो ए बे वचेनो विरोध तुरत टळी जाय. ए विरोध टाळनारी सरळ अने समाधायक पद्धति आ ग्रंथमां खास स्पष्ट करवामां आवी छे.

एक द्रष्टा एम कहे छे के अमुक पदार्थ मने तो लांबो देखाय छे, बीजो कोई एम कहे के मने तो ए ज पदार्थ टूंको देखाय छे अने त्रीजो एम कहे के ए त्रिकोण देखाय छे; त्यारे आ बधाना दृष्टिकोणने समजनारो वैज्ञानिक एम कहे के ए पदार्थ लांबो, टूंको अने त्रिकोण देखाय छे ए बधुं सापेक्ष भावे बराबर छे. कारण के जोनाराओनी निर्दोष दृष्टिओ अने पदार्थ वचेनो संबंध जुदी जुदी जातना छे. आ समाधानकारी दृष्टिनुं नाम अनेकांतवाद विभज्यवाद के स्याद्वाद छे.

जैन आगमोमां आ दृष्टिनुं दिग्दर्शन तो छे ज पण आ ग्रंथकारे आ प्रकरणमां ए दृष्टिने एक वैज्ञानिकनी रीते समजावेली छे. एटले के जेम कोई वैज्ञानिक कोई तत्त्वनुं पृथक्करण करीने तेनां प्रत्येक अंशने स्पष्ट करी बतावे छे तेम आचार्य सिद्धसेन दिवाकरे आ काण्डमां अनेकान्तवादनी बधी बाजुओने खुली रीते समजावेली छे एम अनेकान्तवादनुं शास्त्रीय पृथक्करण आ [illegible] पहेलुं थयुं छे.

आ प्रकरणना मान भागमां [illegible] पोताना युगमां व्यापेली महत्ताने [illegible] विचारप्रवाहने पण जोई शकाय छे.

केटलीक वार एवुं बने [illegible] शब्दस्पर्शी होय छे. [illegible] अने [illegible] ज्यारे बधी बाजी हाथमांथी [illegible] त्यारे पण [illegible] नथी भूलातो.

आचार्य सिद्धसेनना [illegible] दर्शन थाय छे.

(४) टीकावाळी कोई प्रतिमां कांडनां खास नामो लखवामां आव्यां नथी. मात्र मूळनी प्रतिमां पहेला कांडनुं नाम 'नयकांड' छे, अने बीजानुं नाम 'जीवकांड' छे. त्रीजानुं कशुं नाम नथी आप्युं.

अमे अहीं कांडोनां जे नामो राखेलां छे ते मूळना विषयने अनुसरीने राखेलां छे. मूळनी प्रतिमां जे बीजा कांडनुं नाम 'जीवकांड' लखेलुं छे तेना करतां मूळनो विषय जोतां तेनुं 'ज्ञानकांड' नाम वधारे बंधबेसतुं लागे छे. तेथी ज अमे ए प्रतिमांनुं पहेलुं नाम कायम राख्युं छे. बीजा कांडनुं नाम बदल्युं छे अने त्रीजा कांडनुं नाम तो अमारे विषय प्रमाणे नवुं कल्पवुं पड्युं छे.

आगळना चारे भागोमां परंपराप्रसिद्ध एवुं 'सम्मति' नाम कायम राखेलुं पण ए विषे विशेष ऊहापोह करीने अमे आ भागमां 'सन्मति' एवुं नाम राखेलुं छे. ए विषे अमे तेम करवाना कारणनी सप्रमाण चर्चा छट्ठा भागनी प्रस्तावनामां करेली छे.

(५) पाठांतरोनी पद्धति आ भागमां बीजा भागोना जेवी ज राखी छे अने बीजा भागोमां वपरायेली प्रतिओनो उपयोग पण तेटलो ज थयो छे. कोई खास नवी प्रति उमेरवाणी नथी पण ताडपत्रनी बे प्रतिमांनी ला० संज्ञावाळी प्रतिनो अंतनो घणो भाग अधूरो होवाथी तेनो उपयोग अमे आमां करी शक्या नथी.

परिशिष्टोनो परिचय.

ग्रंथनुं रहस्य, संशोधकोने उपयोगी एवी ऐतिहासिक वस्तु अने संपादनशैली वगेरेने समजवा माटे ग्रंथने अंते नीचे जणावेला स्वरूपवाळां १३ परिशिष्टो अकारादि क्रमथी आपवामां आव्यां छे.

१. पहेला परिशिष्टमां सन्मतिनी मूळ गाथाओ तेना कांडना अने गाथाना अंक साथे मूकवामां आवी छे.

२. जे जे श्वेताम्बरीय के दिगम्बरीय न्यायग्रंथो प्रस्तुत संपादनने अंगे अमारा जोवामां आवेला, तेमां ज्यां ज्यां सन्मतिसूत्रनी मूळ गाथाओ उद्धृत करायेली छे, तेने लगतुं बीजुं परिशिष्ट छे. एमां नयचक्र अने सिद्धिविनिश्चय जेवा केटलाक हस्तलिखित दुर्लभ ग्रंथोनी पण नोंध छे.

३. त्रीजुं परिशिष्ट पण बीजाना जेवुं ज छे, मात्र तेमां सन्मतिना रहस्यने पूरेपूरुं पामी पोतानी कृतिमां परिणमावनाराओमां विरल एवा श्रीमान् यशोविजय उपाध्यायजीना लगभग बधा मुद्रित ग्रंथोनो उपयोग करेलो छे.

श्रीमान् यशोविजयजीए पोताना ग्रंथमां ज्यां ज्यां सन्मतिसूत्रनी गाथाओ उद्धरेली छे त्यां त्यां घणे ठेकाणे विवरण पण करेलुं छे. एमानुं केटलुंक विवरण तो स्वतंत्र छे, जे प्रस्तुत टीकाने अनुसरतुं पण नथी. अमे एम धारेलुं के श्रीमान् यशोविजयजीना विवरणवाळी बधी गाथाओनो एक संग्रह करवो, जे सन्मतिनी लघु टीका जेवो बनी जाय, पण ए माटे एक खास जुदो बीजो [illegible] ज तैयार करवो पडत जेथी ग्रंथ प्रकाशनमां घणो वधारे विलंब थाय. तेथी ए संग्रह न करतां आ [illegible] दिष्ट ज एवुं आपेलुं छे के तेने वांचनारो कोई [illegible] ए संग्रहने [illegible]

४. परिशिष्ट चोथामां कांडना अने गाथाना अंक साथे बधी गाथाना [illegible] शब्दोनो कोश आपेलो छे [illegible] छे. तेनुं पण उपर लख्या प्रमाणेना बधा अंको आपी [illegible] छे

५. पांचमा परिशिष्टमां [illegible] टीकामां [illegible] अवतरणोनो [illegible]

सम्पादकीयं निवेदनम् ।

सन्मतेरस्मिन् पञ्चमे भागे तृतीयं काण्डं समाप्तम् । एवं च काण्डत्रयमितः सटीकोऽयं समग्रः समूलो ग्रन्थः पञ्चसु भागेषु पूर्णो जातः ।

गतवर्षारम्भ एव तृतीयं काण्डं मुद्रितमासीत् । ततश्च अन्यभागवदयमपि मूलटीकाटिप्पणियुक्तः पञ्चमो भागः प्रकाशयं नेतुं योग्योऽभवत्, परन्तु अनेन भागेन सह मुद्रणीयानि उपयोगीनि आवश्यकानि च परिशिष्टानि क्रियमाणानि आसन्, अत एवायं भागो विलम्बेन विदुषां करतलमागतः । अस्य भागस्य संबन्धे निवेदनीयानि मुख्यानि वस्तूनि इमानि ।

(१) तृतीयस्य काण्डस्य मूलटीकयोः परिमाणम् ।

(२) मूलस्य विषयो मूलकारस्य च तेजस्विता ।

(३) टीकास्वरूपचर्चा टीकाकारसमयस्य च परिस्थितिः ।

(४) काण्डानां नामानि पूर्वमुद्रितस्य च ग्रन्थभागस्य परिवर्तनम् ।

(५) प्रतीनामुपयोगः परिशिष्टानां च परिचयः ।

(१) मूलमात्रे लिखितपुस्तकेऽस्य भागस्य सप्ततिर्गाथाः प्राप्यन्ते । मूलसहिते च सादर्शे टीकापुस्तके गाथानामेकोनसप्ततिर्लभ्यते । मूलमात्रपुस्तके या सप्ततितमी गाथा सैव सटीकेषु पुस्तकेषु अन्तिमा अर्थादेकोनसप्ततितमी गणिता । या गाथा मूलपुस्तके एकोनसप्ततितमी सा टीकापुस्तकेषु क्वापि न दृश्यते । अतश्च सा मूलपुस्तकगता गाथा ७५७ पृष्ठे पाठान्तरत्वेनास्माभिर्निर्दिष्टा ।

सन्मतिप्रकरणस्यान्तिमा गाथा आशीर्वादरूपं मङ्गलं सूचयति । इयं च मूलपुस्तकगता अन्तिमा विवादग्रस्ता गाथा नमस्कारात्मकमङ्गलरूपा । शास्त्रस्यादौ मध्येऽन्ते च मङ्गलमाचरणीयमिति प्राचीनः प्रवादः । प्रवादानुसारेण चास्मिन् प्रकरणे आद्यावन्ते च मङ्गलात्मकता स्पष्टा । यदि मूलपुस्तकगता अन्तिमा गाथा प्रक्षिप्ता नावधार्येत तदा प्रकरणस्यान्ते मङ्गलद्वयापत्तिर्भवेत् । न चान्ते मङ्गलद्वयस्य कश्चिदुपयोगः । अतो मूलपुस्तकगता अन्तिमा नमस्कारात्मकमङ्गलसूचिका गाथा प्रक्षिप्तैव भवेत् न मूलकारकृतिरिति ।

अन्यथास्य प्रकरणस्य सर्वा अपि गाथाः टीकाकारेण व्याख्याताः । या गाथा अवतरणरूपेणैव [illegible] तासामपि टीकाकृता व्याख्यानव्यथा नाग्रहेण रक्षिता । इयं च गाथा यदि मूलकारकृतित्वेनाभिप्रेता तदा टीका[illegible] [illegible]ममवश्यं व्याख्यास्यदेव । अन्ततो नान्यदिदमपि किन्तु इमां गाथां [illegible] [illegible] मैत्रत्वेन तु सोऽपरिष्यदेव । परन्तु टीकायां [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उल्लिखिता दृश्यते । अतो [illegible] सा गाथा [illegible] [illegible] अस्मिन् प्रतिष्ठिते अनेकान्तवादप्रकरणे प्रक्षिप्ता [illegible] [illegible] ।

[illegible] अस्य प्रकरणस्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] शतं प्राप्यते । उपयुज्यमानासु [illegible] सटीकप्रतिषु क्वापि [illegible] न लभ्यते । अतस्तस्या अन्तिमाया गाथायाः पूर्वोक्तैव [illegible] [illegible] [illegible] भागस्य एकोनसप्ततिर्गाथाः प्रकाश्यन्ते ।

अस्मिन्नपि काण्डे टीका कियत्सु स्थलेषु विस्तारिता कियत्सु च संक्षेपिता । प्रमाणतोऽस्य काण्डस्यापि व्याख्यामानं न न्यूनं प्रतिभाति । अस्मिन्भागेऽपि कणादमतपरीक्षाप्रकरणं सर्वथा शान्तरक्षितकृततत्त्वसङ्ग्रहप्रतिच्छायैव । तच्चास्माभिस्तत्त्वसङ्ग्रहकारिकाः पञ्जिकां च टिप्पणे उपन्यस्य सुस्पष्टितम् ।

(२) न्यायविषयके ग्रन्थे सर्वत्रापि प्रमाणं च प्रमेयं चेति तत्त्वद्वयी एव प्रस्तुता । जैनन्यायग्रन्थे तु सैव नयतत्त्वाधिका तत्त्वत्रयी चर्च्यते । प्रस्तुते प्रकरणे प्रथमे नयो द्वितीये प्रमाणम् तृतीये च काण्डे प्रमेयमिति तत्त्वत्रयी चर्चिताऽस्ति ।

गौतमो दिग्नागो वा स्वीये स्वीये प्रकरणे 'जगति प्रधानानि तत्त्वानि इमानि, तेषां भेदाः प्रभेदा एते, तेषु एकैकस्य स्वरूपमेतत्' इत्यादिपद्धत्या यथा प्रमेयं चर्चयाञ्चकार तथा नायमाचार्योऽस्मिन् प्रकरणे किमपि तादृशं चर्चयामास । किन्तु पदार्थस्वरूपं कया रीत्या बोद्धव्यं कया रीत्या च पदार्थो दर्शनीयो येन मुज्ञानः स्यादित्येतादृशी बोधसरणी सविस्तरमत्र प्रकरणे ग्रन्थकृता निरूपिता । यच्च संसारे जीवजडविषया या या विरोधिन्यः परम्पराः परम्परातः प्रचलिताः कर्णोपकर्णमायाताश्च सन्ति तासां सर्वासां समन्वयबीजमपि अत्र प्रकरणे प्रतिष्ठापितमाचार्येण ।

एकः कश्चिदनुभवी कथयति 'यदिदं दृश्यमदृश्यं वा तत्सर्वं नित्यम्' । द्वितीयश्च महानुभावः कथयति 'यदिदं सत् तत्सर्वमनित्यम्' इति । यां मूलदृष्टिमालम्ब्य एते विरुद्धे मते तैस्तैरनुभविभिः स्थिरीकृते सा दृष्टिर्यदि तत्त्वजिज्ञासुभिर्ज्ञायेत–विचारगोचरं प्राप्येत तदा तयोर्विरुद्धयोर्मतयोर्विरोधस्तूर्णमुपशान्तः स्यात् । या च तद्विरोधशमनी सरला समाधायिका पद्धतिः सैवास्मिन्ग्रन्थे सुस्पष्टिता । सा दृष्टिरनेकान्तवादो विभज्यवादः स्याद्वादो वा इति नाम्ना जैनशास्त्रे विश्रुता ।

जैनागमेषु तस्या दृष्टेर्बीजं निहित एव परन्तु वैज्ञानिकेन इव मूलकृता सिद्धसेनाचार्येण प्रस्तुते प्रकरणे सा दृष्टिस्तदंशांशान् पृथक् पृथक् कृत्वा निरादीकृत्य च दर्शिता । अनेकान्तवाददृष्टेरेतादृशं तात्त्विकं पृथक्करणमस्मिन् पुस्तक एव प्रथमं प्राप्यते ।

अयं महावादी सिद्धसेनाचार्यो रूढमार्गानुगामी नासीत् किन्तु स्वयुगस्यास्य सामाजिकाज्ञानान्धतमसं दूरीकर्तुं स दिवाकरो दिवाकर एव जातः । एतच्चास्य प्रकरणस्य प्रान्तस्थिताभिर्गाथाभिः स्पष्टमवगम्यते ।

इदानीं सम्प्रति निरङ्कुशैरन्यैः [illegible] सत्यशोधिकां च मन्यमानाः सूरयो न सत्यान्वेषकाः किन्तु केवलं [illegible] एव इयती जगती दृश्यते । ततश्च निश्चितः समाजोऽपि [illegible] । [illegible] गुरवः [illegible] इव [illegible] न [illegible] । [illegible] सिद्धसेनाचार्या एवं निरूपयन्ति-

"[illegible] न हि [illegible] । [illegible] ।" (गाथा ६३)

"[illegible] ।" (गा० ६४)

"[illegible] ।" (गा० ६५)

"[illegible] ।" (गा० ६६)

अपरत्र: भगवदर्शीव सिद्धसेनाचार्यो न इयतैव कथनेन विरमति किन्तु किञ्चिदधिकमपि उद्धोषयति ।

"स्वसिद्धान्तं परसमयं च गम्भीरतया अजानन्तः क्रियाकाण्डमेव च प्रधानया अवलगन्तस्ते कमपि नित्याकाण्डमारोहेशमेव नावबुध्यन्ते ।" (गा० ६७)

उपर्युक्तगाथागतैराचार्यवचनैस्तत्समयतमोमयपरिस्थितिभेदकमाचार्यतेजः सुस्पष्टतया प्रकटीभवति ।

(३) टीकाकृता काण्डद्वये या टीकाशैली योजिता सैवास्मिन्काण्डेऽपि दृश्यते । मूलग्रन्थमाश्रित्य स्वसमयं यावद् स्थिरीभूतानि सर्वाणि तत्त्वचिन्तनानि अस्यां टीकायां योजनीयानीत्युद्देशेनेयं टीका कृता इत्यवभाति । स चोद्देशस्त्रिष्वपि काण्डेषु समान एव व्यवसितो दृश्यते ।

प्रामाण्यत्वं नित्यमनित्यं वेति जिनमूर्तिरागूरणैराभूषणीया न वेति च चर्चाद्वयं टीकाकृता अस्य काण्डस्य टीकायां प्रकान्तम् । तदेतत् टीकाकृत्समयमिति संसूचयितुमलम् ।

"कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ" (उत्तराध्ययन अध्ययन २५ गाथा ३२) इत्यागमवचनाद् जिनशासनप्रवराः कमपि जातिं जातित्वेनैव न उत्कर्षयन्ति किन्तु गुणैः प्रधानामेव प्रधानां मन्यन्ते । बौद्धानामपि जातिवादविषये ईदृशमेव मतम् । तच्च आचार्यशान्तरक्षितेन तत्त्वसङ्ग्रहे सुसमर्थितम् । गुणप्रधानामेव जातिं सुजातिं मन्यानः श्रीज्ञातपुत्रीयः सिद्धान्तो ज्ञातपुत्रजिननिर्वाणानन्तरमपि तदनुयायिभिर्धिरमाचरितः, परन्तु अधुनातनजैनेषु तदाचरणा न दृश्यते । ते ▮ केवलं जातिमेव प्रधानां मन्वाना अधुनातनब्राह्मणा इव दृश्यन्ते । एतादृशविपरीताचारप्रसरणे जातिप्रधानब्राह्मणसमाजप्रबलसंसर्गमन्तरा नान्यत्किमपि प्रबलं कारणमवभाति । यश्च मूर्तिभूषाविषयो विवादोऽत्र टीकाकृता उद्लेखि स तु साम्प्रदायिक एव । वस्तुतस्तु एतादृशेषु तत्त्वविचारग्रन्थेषु एते साम्प्रदायिका विवादा न स्थानमर्हन्ति । किन्तु "तस्मादर्पि बलीयसी" इति न्यायेन तत्त्वविचारेष्वपि अहो! रूढिसाम्राज्यं सुदुर्निवारम् ।

(४) टीकाप्रतिषु क्वापि काण्डनाम्नामुल्लेखो न विद्यते । केवलं मूलप्रतौ नयकाण्डेति नाम्ना प्रथमं काण्डं जीवकाण्ड इति नाम्ना च द्वितीयं काण्डमभिहितं तृतीयस्य तु किमपि नाम न निर्दिष्टम् । अत्र तु मूलग्रन्थविषयमनुसृत्य काण्डनामानि अस्माभिः परिवर्तितानि प्रकल्पितानि च ।

पूर्वमुद्रितेषु चतुर्षु अपि भागेषु मुखपृष्ठे परम्पराप्रसिद्धं 'सम्मति' इति नाम मुद्रितम् । अस्मिन् भागे तु तत्स्थाने 'सन्मति' इति नाम सविशेषं विचार्य योजितम् । एतद्विषया सप्रमाणा चर्चा षष्ठे भागे प्रस्तावनायामस्माभिः कृता ।

(५) पाठान्तरयोजनपद्धतिः प्रतीनामुपयोगश्च पूर्वमुद्रितभागवदत्रापि अवगन्तव्यः । केवलं 'छ' संज्ञिका ताडपत्रप्रतिः प्रान्ते त्रुटिताऽऽसीत् ।

परिशिष्टानां परिचयः ।

ग्रन्थरहस्यं संशोधकोपयोगि ऐतिहासिकं वस्तु सम्पादनशैलीं चावगन्तुं ग्रन्थान्ते त्रयोदश परिशिष्टानि अकारादिक्रमेण योजितानि । तत्स्वरूपं यथा—

(१) सन्मतेः सर्वा मूलगाथाः काण्डाङ्केन गाथाङ्केन च सह प्रथमपरिशिष्टे दर्शिताः ।

(२) श्वेताम्बरीया दिगम्बरीयाश्च ये ये न्यायग्रन्थाः प्रस्तुतसम्पादनाय अस्माभिरवलोकितास्तेषु यत्र यत्र सन्मतिसूत्रमूलगाथा उद्धृतास्तत्तद्गाथास्थलदर्शकं द्वितीयं परिशिष्टम् । नयचक्र–सिद्धिविनिश्चयप्रमुखा हस्तलिखिता दुर्लभा ग्रन्था अपि अत्र परिशिष्टे उपयुक्ताः ।

(३) तृतीयमपि परिशिष्टं द्वितीयपरिशिष्टमिव ज्ञेयम्, नवरम् सन्मतिसूत्ररहस्यं यथार्थं प्राप्य सत्कृतौ तदवतारयत्सु प्रधानानां श्रीमतां यशोविजयोपाध्यायानां प्रायस्सर्वे मुद्रिता ग्रन्था अत्र परिशिष्टे उपयुक्ताः ।

श्रीमता उपाध्यायेन सत्कृतौ यत्र या गाथा उद्धृता तत्र तस्या विवरणमपि कृतम् । तच्च विवरणं क्वचित् क्वचित् स्वतन्त्रम्—प्रस्तुतां टीकां नानुसरति । एकस्मिन् परिशिष्टे ताः सर्वाः सविवरणा गाथाः संयोज्य मुद्रणीया येन तत्संग्रहः सन्मतिलघुटीकेव स्यादित्यासीदस्माकं भावना । परन्तु तदर्थं पृथगेवैको भागो मुद्रणीयो भवेत् तत्र च स्यादसह्यः कालविलम्बः इति न तत्करणे प्रयत्नं कृतवन्तः, किन्तु इदं परिशिष्टमेवैतादृशं व्यधायि यत् केनचित् व्युत्पन्नेन च्छात्रेणापि तद्दर्शनमात्रेणैव स संग्रहः सुकरः ।

(४) काण्डस्य गाथायाश्चाङ्केन तद्व्याख्यायाश्च पृष्ठाङ्केन सह मूलगाथागतशब्दानां कोशो दर्शितश्चतुर्थे परिशिष्टे । यः शब्दो यत्र यत्र यतिकृत्वः समागतस्तस्य तानि सर्वाणि स्थलानि दर्शितानि ।

(५) पूर्वपक्षं दर्शयितुं स्वमतं संवदितुं च टीकाकृता यानि अन्यग्रन्थगतानि गद्यपद्यानि अवतरणानि उद्धृतानि तानि सपृष्ठाङ्कं दर्शितानि पञ्चमे परिशिष्टे । तथा यानि अवतरणानि सटिप्पणानि तेषां पार्श्वे कोष्ठके टिप्पणाङ्कोऽपि निहितः । (तेषां च टीकाकारादर्शितानि मूलस्थलान्यपि संशोध्य संशोध्य दर्शितानि यथासम्भवम्, येषाञ्च मूलस्थानानि न प्राप्तानि तेषां पार्श्वे ग्रन्थे [ ] एतादृशं रिक्तं चिह्नं निहितम्)

(६) टीकाकारेण दर्शितानां ग्रन्थकाराणां ग्रन्थानां च नामानि स्थापितानि षष्ठे परिशिष्टे ।

(७) टीकाकृता चर्चितानां वादानां वादिनां च नामानि निर्दिष्टानि सप्तमे परिशिष्टे ।

(८) दर्शनशास्त्रगोचरा मुख्यतया तु जैनपरिभाषाविषयाः टीकाकारनिर्दिष्टा निशिष्टाः शब्दाः सपृष्ठाङ्कं दर्शिता अष्टमे परिशिष्टे । तथा ये शब्दाः सनिर्वचनास्तेषां पार्श्वे कोष्ठके तट्टिप्पणाङ्कोऽपि दर्शितः ।

(९) समग्रे ग्रन्थे टीकोपयुक्ता देश–स्थल–रूढाचार–पदार्थसंज्ञासूचका ग्रन्थान्तरनिश्चयबोधकाश्च [illegible] शब्दाः सूचिता नवमे परिशिष्टे । तथा तेषु ये शब्दा विवेचितास्तेषां पार्श्वे कोष्ठके टिप्पणाङ्कोऽपि निक्षिप्तः ।

(१०) टीकाकारनिर्दिष्टस्थलेष्ववतरणेषु येषां स्थलानि अस्माभिरुपलब्धानि तानि नामग्राहं निर्दिष्टानि दशमे परिशिष्टे ।

(११) [illegible] टिप्पणानि [illegible] टिप्पणानि च सपृष्ठाङ्कं निर्दिश्यन्ते एकादशे परिशिष्टे ।

(१२) [illegible] उपयुक्तानां ग्रन्थानां ग्रन्थकाराणां च नामानि सपृष्ठाङ्कं सटिप्पणाङ्कं च निर्दिश्यन्ते द्वादशे परिशिष्टे ।

(१३) [illegible] ग्रन्थानां मुद्रणस्थानानि [illegible] निर्देशो मुद्रणसमयादिकं च निर्दिष्टं त्रयोदशे परिशिष्टे ।

[illegible] श्रीचतुरविजय–पुण्यविजयनामभ्यां मुनि- [illegible]

सुखलालः
बेचरदासश्च ।

सन्मति-प्रकरणम् ।

पञ्चमो विभागः ।

तृतीयः काण्डः ।

[सामान्यविशेषयोरन्योन्यानुविद्धस्वरूपत्वप्रदर्शनम्]

एवं दर्शन-ज्ञानात्मनोः परस्पराविनिर्भागरूपतां प्रतिपाद्य इदानीं सामान्य-विशेषयोरन्योन्यानुविद्धं स्वरूपमुपदर्शयन्नाह—

सामण्णम्मि विसेसो विसेसपक्खे य वयणविणिवेसो ।
दव्वपरिणाममण्णं दाएइ तयं च णियमेइ ॥ १ ॥ ५

सामान्ये 'अस्ति' इत्येतस्मिन्, विशेषो द्रव्यमित्ययम्; तथा विशेषपक्षे च घटादौ, 'अस्ति' इत्येतस्य वचनस्य—नाम-नामवतोरभेदात्—सत्तासामान्यस्य, विनिवेशः प्रदर्शनम्, द्रव्यपरिणतिमन्यां सत्ताख्यस्य द्रव्यस्य पृथिव्याख्यां परिणतिमन्यां सत्तारूपापरित्यागेनैव मृदां दर्शयति विशेषाभावे सामान्यस्याप्यन्यथाभावप्रसक्तेः—यद् यदात्मकं तत् तदभावे न भवति, घटाद्यनन्तविशेषाभावे मृद्वत् विशेषात्मकं च सामान्यमिति तदभावे तस्याप्यभावः । तथा,१० तकं च विशेषम्, द्वितीयपक्षे सामान्यात्मनि नियमयति विशेषः सामान्यात्मक एव तदभावे तस्याप्यभावप्रसङ्गात् यतः सामान्यात्मकस्य विशेषस्य सामान्याभावे घटादेरिव मृदभावे न भावो युक्तः ॥ १ ॥

[सामान्यविशेषयोरेकान्तभेदं वदतो दोषापत्तिप्रकटनम्]

न च विशेषाद् व्यतिरिक्तं सामान्यमेकान्ततः, तस्माद् वा विशेषा नियमतो भिन्ना इत्यभ्यु-१५ पगन्तव्यम् अध्यक्षादिप्रमाणविरोधात् इत्याह—

एगंतणिव्विसेसं एयंतविसेसियं च वयमाणो ।
दव्वस्स पज्जवे, पज्जवाहि दवियं णियत्तेइ ॥ २ ॥

एकान्तेन निर्गता विशेषा यस्मात् सामान्यात् तद् विशेषविकलं सामान्यं वदन् द्रव्यस्य पर्यायान् ऋज्वादीन् निवर्तयति ऋजु-वक्रतापर्यायात्मि(त्म)काङ्गुल्यादिद्रव्यस्य२०

---

१ श्रीहरिभद्रेण ईदृशमङ्गुल्युदाहरणमित्थं दर्शितं धर्मसंग्रहण्याम्—

"दीसइ पयक्खं चिय एगं वत्थुम्मि उजुए होंतं । अंगुलिदव्वम्मि परं भावेतव्वं इदेवेण ॥
वक्कत्तमंगुलीओ करेंति अभिन्नं ति तीए ओभासो । भिन्नं पि अवत्थंतरभावे ततो नियत्तीओ ॥
तं चिय वक्कं पडपत्तंतरे वि तं मुझुदिलो हंदि । एगंतेणऽवत्तो भिन्नेण इमी वि तह चेव" ॥
—गा० १४८-१५० पृ० १५१-१५२ ।

२ "से नूणं भंते ! अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ?"–[भगवतीसू० श० १ उ० ३ सू० ३२] इत्यादि सूत्रे विवृण्वन् श्रीअभयदेवसूरिरेतमङ्गुलिदृष्टान्तं दर्शितवान् ।

अध्यक्षादिप्रमाणप्रतीयमानस्य विनिवृत्तिप्रसक्तेरध्यक्षादिप्रमाणबाधापत्तिः। तथा, एक
सामान्यरहितं वदन् पर्यायेभ्यो विशेषेभ्यो द्रव्यं निवर्तयति, एवं चाङ्गुल्यादि
रिक्तऋजु-वक्रतादिविशेषस्य प्रत्यक्षाद्यवगतस्य निवृत्तिप्रसक्तिः। न चाऽबाधितप्रमाणा
तथाभूतस्य तस्य निवृत्तिर्युक्ता, सर्वभावनिवृत्तिप्रसक्तेः अन्यभावाभ्युपगमस्यापि तनि
५ तत्प्रतीतस्याप्यभावे सर्वव्यवहाराभाव इति प्रतिपादितम्।

अत्राह–'सामण्णम्मि'[1] इत्यादिकाण्डं नाऽऽरब्धव्यम् उक्तार्थत्वात् यतो
वस्तु अनेकान्तात्मकं प्रतिपाद्यते 'एगदवियम्मि'[2] [प्र० का० गा० ३१] इत्यादि
समूहसिद्ध'[3]– [प्र० का० गा० २७] इत्यादिना च तस्य प्रतिपादितत्वात्। तथा,
ट्ठिइ-भंगा हुंदि दवियलक्खणं एयं'[4] [प्र० का० गा० १२] इत्यनेन लक्षणद्वारेण
१० अनेकान्तात्मकत्वं प्रदर्शितमेव। अथ प्रमाणविषयव्याख्यानिरूपणार्थमिदं प्रस्तूयते, तदपि
'सवियप्प–णिव्वियप्पं' [प्र० का० गा० ३५] इत्यादिना तस्यापि निरूपितत्वात्
वस्तुत्वात् तन्निरूपणे तस्यापि निरूपितत्वान्न तन्निरूपणार्थमप्येतत्पुनरुक्तम्, एवमेव
प्रमेयप्राधान्येन तद्ग्राहकस्य प्रमाणस्यापि निरूपणमित्येतत्प्रदर्शनद्वारेण तत्प्रतिपादकया
प्राग् विहितः, इह त्वविद्यमानप्रमेयस्य प्रमाणस्य प्रमाणत्वासंभवात् प्रमाणनिरूपणद्वा
१५ निरूपणमिति प्रदर्शनद्वारेणैतद्व्याख्यायतार इत्यदोषः[5]। यद्वा अनेकान्तपक्षोक्तदोषपरिहा
व्यवस्थाप्यत इति न कश्चिद् दोषः 'सामण्णम्मि' इत्यादि सूत्रसंदर्भविरचने ॥ २ ॥

[आप्तवचनस्यानेकान्तात्मकवस्तुबोधकत्वेन स्वरूपकथनम्]

सामान्य-विशेषानेकान्तात्मकवस्तुप्रतिपादकं वचनमाप्तस्य, इतरदितरस्येत्येतदेव द

पच्चुप्पन्नं भावं विगय-भविस्सेहिं जं समण्णेइ।
२० एयं पडुच्चवयणं दव्वंतरणिस्सियं जं च ॥ ३ ॥

प्रत्युत्पन्नं भावं–वस्तुनो वर्तमानपरिणामम् विगत-भविष्यद्भ्यां पर्याया
समानरूपतया नयति प्रतिपादयति वचः तत् प्रतीत्यवचनं समीक्षितार्थवचनं स
मित्यर्थः, अन्यथानाप्तवचनम्।

ननु वर्तमानपर्यायस्य प्रागपि सद्भावे कारकव्यापारवैफल्यम् क्रिया-गुण-व्यपदे
२५ प्रागप्युपलम्भप्रसङ्गश्च। उत्तरकालं च सद्भावे विनाशहेतुव्यापारवैयर्थ्यम् उपलब्ध्यादि
ततो यद् यदैवोपलम्भादिकार्यकृत् तत् तदैव [illegible] प्राक् न पश्चात् अर्थक्रियालक्षणसत्त्ववि
मोऽभावात्, असदेतत्, तस्य प्रागसत्त्वेऽनुपलम्भोऽप्यपयोगात्। न चाप्यादिद्रव्यं विशाला
त्वतो द्रव्यम् तस्य निष्पन्नत्वात्। न च निष्पन्नस्यैव पुनर्निष्पत्तिः अनवस्थाप्रसङ्गात्।
विद्यमान एव ज्ञानादिकार्योत्पत्तिः 'तत्र' इति संबन्धाभावतो व्यपदेशाभावप्रसङ्गात्,
३० संबन्धप्रकल्पनायां तस्य सर्वत्राविशेषात् नद्वद् आकाशादावपि तत् स्यात्। अथाप्यात्रि
तेनाऽन्यत्रैवोत्पद्यत इति नाऽन्यत्रोत्पत्तिः कार्यस्य प्रयत्नवत्युपपत्ति. किञ्चाऽऽसदूस्य पूर्वम
पश्चादपि भविष्यति तत्सर्वानन्यापि [illegible]. अन्यथा पूर्वोत्तरावस्थयोः [illegible]
प्रसंग्। न [illegible] भ्रान्तः, बाधकाभावे भ्रान्तताऽयोगः। न चार्थक्रियाविरोधा

१ पृ० [illegible] गा० ३। २ पृ० [illegible] गा० ३१। ३ पृ० [illegible] गा० २७। ४ पृ० [illegible] गा० [illegible]
५ पृ० [illegible] गा० [illegible]। ६ पृ० [illegible] गा० [illegible]।

बाधकः, अनित्यत्वे एव तस्य बाधकत्वेन प्रतिपादनात्। न चोत्पाद-विनाशयोरपि तत्र प्रतिपत्तावेकान्ततो नित्यत्वमेव, परिणामनित्यतया तस्य नित्यत्वात्, अन्यथा खरविषाणवत् तस्याऽभावप्रसङ्गात्। न चैवं तस्य विकारित्वप्रसङ्गो दोषाय, अभीष्टत्वात्। न च नित्यत्वविरोधस्तथैव तत्स्वरूपप्रतीतेः। न च तस्य तथात्वप्रतिपत्तिर्भ्रान्तिः, बाधकाभावादित्युक्तत्वात्। अथ ज्ञानपर्यायादात्मनो व्यतिरेके भेदेनोपलम्भः स्यात् अव्यतिरेके पर्यायमात्रम् द्रव्यमात्रं वा भवेत् व्यतिरेकाव्यतिरेकपक्षस्तु विरोधाघ्रातः उभयपक्षस्यान्योऽन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकनिषेधेनाऽपरविधानादसंगतः, असदेतत्, व्यतिरेकाऽव्यतिरेकपक्षस्याऽभ्युपगमात्। न च व्यतिरेकपक्षभावी तद्व्यतिरेकेणोपलब्धिप्रसङ्गो दोषः, एकज्ञानव्यतिरेकेण ज्ञानान्तरेऽपि तस्य प्रतीतेर्व्यतिरेकोपलम्भस्य सद्भावात्, अव्यतिरेकोऽपि, ज्ञानात्मकत्वेन तस्य प्रतीतेः। न च व्यतिरेकाऽव्यतिरेकयोरन्योऽन्यपरिहारेणावस्थानाद् विरोधः अबाधितप्रमाणविषयीकृते वस्तुतत्त्वे विरोधाऽसंभवात्, अन्यथा संवेदनस्यैकानेकरूपस्य वैशेषिकेण, ग्राह्य-ग्राहकसंवित्तिरूपस्य बुद्ध्यात्मनश्चैकानेकस्वभावस्य सौगतेन कथं प्रतिपादनमुपपत्तिमद् भवेत् यदि प्रमाणप्रतिपन्ने वस्तुतत्त्वे विरोधः संगच्छेतेत्यादि पूर्वमेव प्रतिपादितम्। वर्तमानपर्यायस्यान्वयिद्रव्यद्वारेण त्रिकालास्तित्वप्रतिपादकं प्रतीत्यवचनमिति स्थितम्।

परमाण्वारम्भकद्रव्यात् कार्यद्रव्यं द्व्यणुकादि द्रव्यान्तरं वैशेषिकाभिप्रायतः तेन निःसृतं संबद्धं कारणं परमाण्वादि यत् प्रतिपादयति तदपि प्रतीत्यवचनम्। तथाहि—द्व्यणुकरूपतया परमाणवः प्रादुर्भूता द्व्यणुकतया प्रच्युताः परमाणुरूपतया अविचलितस्वरूपा अभ्युपगन्तव्याः अन्यथा तद्रूपतयाऽनुत्पादे प्राक्तनरूपताऽपगमो न स्यात् परमाण्ववस्थायाम्, प्राक्तनरूपापगमे वा नोत्तररूपतयोत्पत्तिस्तदवस्थायाम्। परमाणुरूपतयाऽपि विनाशोत्पादाभ्युपगमे पूर्वोत्तरपर्याययोर्निराधारविगम-प्रादुर्भावप्रसक्तिः। न च तदवस्थयोरेवाऽऽधारत्वम्, तयोरन्यदाभावप्रसङ्गात्। न च पूर्वोत्तरकार्यद्रव्यविनाश-प्रादुर्भावयोः कारणस्याविनाश-प्रादुर्भावौ, तथात्वे चात्मनो हिमवद्-विन्ध्ययोरिव भेदप्रसक्तेः। न च कारणाभिन्नस्य कार्यद्रव्यस्योत्पत्तेर्भावेऽपि दोषः, तयोर्भिन्नत्वे कुण्ड-बदरवत् पृथगुपलब्धिप्रसक्तेः। अयुतसिद्धावपि कार्योत्पत्तौ कारणस्याऽप्युत्पत्त्यापत्तिः। [illegible] सा च कार्योत्पत्तौ कारण- [illegible] अयुतसिद्धिश्च समवायसिद्धिः, [illegible] न्यायमवयवप्रतिभासमन्तरेणा- ध्यक्षप्रतिपत्तावपरसमवायाप्रतीतेः—'इह तन्तुषु पटः' इत्यत्रापि प्रत्यये 'इह तन्तुषु' इति प्रतिपत्तिस्तन्त्वालम्बना, 'पटः' इति प्रतिपत्तिः पटालम्बना संवेद्यत इति नापरः समवायप्रतिभासः। न च 'इह तन्तुषु पटः' इति लौकिकी प्रतिपत्तिः, किन्तु 'पटे तन्तवः' इति। न चान्यथाभूतप्रत्ययादन्यथाभूतार्थव्यवस्था। न चानुमानादपि समवायप्रसिद्धिः, प्रत्यक्षाभावे तत्पूर्वकस्य तस्य तत्राऽप्रवृत्तेः। अनुमानपूर्वकस्य तु तस्यानवस्थादिदोषाघ्रातत्वात् तत्राप्रवृत्तिरित्यसकृत् प्रतिपादितं न पुनरुच्यते इति व्यवस्थितमेतत् तथाभूतवस्तुप्रतिपादकमेवाऽऽप्तवचनम् एकान्तप्रतिपादकं तु नाप्तवचनम्।

अथवा एकद्रव्यादन्यद् द्रव्यं द्रव्यान्तरं तस्मिन् निःसृतं संबद्धं यत् तदपि प्रतीत्यवचनम्। यथा—दीर्घतरं मध्यमाङ्गुलिद्रव्यमपेक्ष्य ह्रस्वतरमङ्गुष्ठद्रव्यमिति वचः। ह्रस्व-दीर्घादिकस्तु स्वधर्म एव द्रव्यान्तरविशेषाभिव्यङ्ग्यः पितेव पुत्रादिना।

यद्वा गोत्वसदृशपरिणतिगुणाद्बाहुलेयद्रव्यात् तत्सदृशपरिणतिगुणैः शाबलेयादि द्रव्यान्तरं तस्मिन् निःश्रितं संबद्धं वाचकत्वेन 'गौः' इति यद् वचनं तदपि प्रतीत्यवचनम्। न पुनः केवल-तिर्यक्सामान्य-विशेष-तदुभयादिप्रतिपादकम् असद्भूतार्थप्रतिपादकत्वात् उन्मत्तवाक्यवत्॥ ३॥

[आप्तवचने समुपतिष्ठमानाया एकान्तपक्षाभिधाया आशङ्काया अनेकान्तपक्षाश्रयणेन निराकरणम्]

ननु प्रादुर्भावपर्यायस्य [illegible] सर्वे [illegible] कारणापत्तेः—अन्यथा तद्रूपतया तदोत्पत्त्यसम्भवात्-वैफल्यदोषात् [illegible] तथाभूतार्थप्रतिपादकं वचनमप्रतीत्यवचनमेवेत्याशङ्क्याऽऽह—

दव्वं जहा परिणयं तहेव अत्थि त्ति तम्मि समयम्मि ।
विगय-भविस्सेहि उ पज्जएहिं भयणा विभयणा वा ॥ ४ ॥

द्रव्यं चेतनाचेतनम्, यथा तदाकारार्थग्रहणरूपतया, घटादिरूपतया वा परिणतं वर्तमानसमये तथैव अस्ति । विगत-भविष्यद्भिस्तु पर्यायैर्भजना कथंचित् [illegible], ५ विभजना [illegible] नानात्वं कथंचित्, 'वा' शब्दस्य कथंचिदर्थत्वात् । ततः [illegible] विगत-भविष्यद्भ्यां न सर्वथैकत्वमिति कथं तत्प्रतिपादकवचनस्याप्रतीत्यवचनतेति भावः ॥ ४ ॥

[संभवद्भिः पर्यायैर्घटादेर्वस्तुनः अस्तित्व-नास्तित्वप्ररूपणम्]

ननु घटादेरर्थस्य कैः पर्यायैरस्तित्वम् नास्तित्वं वा ? इत्याह—

परपज्जवेहिं असरिसगमेहिं णियमेण णियमयि नत्थि ।
१० सरिसेहिं पि वंजणओ अत्थि ण पुणऽत्थपज्जाए ॥ ५ ॥

[illegible] परपर्यायास्तैर्विसदृशगमैर्विजातीय[illegible] नियमेन नित्यं सर्वदा नास्ति तद् द्रव्यम्, तैरपि तदा तस्य [illegible] । सदृशैस्तु [illegible] सामान्यधर्मैः सद् द्रव्य पृथिवीत्वादिभिः [illegible] सामान्य [illegible] । सामान्यमात्रस्य [illegible]
१५ [illegible] सामान्यमात्रस्य च [illegible] सामान्यप्रतिपादकद्वारेण लक्षणया [illegible] विशेषाणां [illegible] उभयदोषप्रसङ्गात् । तत्र [illegible] इति [illegible] । न पुनस्तैः अर्थ-
२० [illegible] तद् अस्ति, [illegible] पर्याया [illegible] सदृशैरेवास्ति । सदृशैस्तु [illegible] ॥ ५ ॥

[[illegible]]

२५ [illegible] —

[illegible] ।
[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

३० [illegible]

[illegible]

स्यादेतत् पुद्गलद्रव्यस्य आरम्भकानेकपुद्गलद्रव्यापेक्षया अनेकान्तरूपता युक्ता, प्रत्युत्पन्ने त्वात्मद्रव्यपर्याये कथमनेकान्तरूपता? न, आत्मपर्यायस्यापि ज्ञानादेस्तत्सहकारिपर्यायापेक्षयाऽनेकान्तरूपता पुद्गलवन्न विरुध्यते। तथा द्रव्य-कषाय-योगोपयोग-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्यप्रभेदात्मकत्वादात्मनः पुद्गलवदनेकान्तरूपता आर्षे प्रतिपादितैव—

[1]"कइविहे णं भंते! आया पण्णत्ते? ५

गोयमा! अट्ठविहे। तं जहा-दविए आया" [भगवतीसू० शत० १२, उ० १०] इत्यादि ॥६॥

[आत्मनोऽनेकान्तात्मकत्वस्य बुद्धिगम्यतया प्रदर्शनम्]

इतश्चानेकान्तात्मकता आत्मनः प्रतिपत्तव्येत्याह—

कोवं उप्पायंतो पुरिसो जीवस्स कारओ होइ।
तत्तो [2]विभएयव्वो परम्मि सयमेव भइयव्वो ॥७॥ १०

कोपपरिणतिमुपनयन् पुरुषो जीवस्य परभवप्रादुर्भावे निर्वर्तको भवति, तन्निमित्तस्य कर्मण उपादानात्। कोपपरिणाममापद्यमानश्च पुरुषस्ततः परभवजीवाद् विभजनीयो भिन्नो व्यवस्थापनीयः, कार्य-कारणयोर्मृत्पिण्ड-घटवत् कथंचिद् भेदात्। अन्यथा कार्य-कारणभावाभावप्रसङ्गात्। न चासौ ततो भिन्न एव परस्मिन् भवे स्वयमेव पुरुषो भजनीयः आत्मरूपतया अभेदेन व्यवस्थाप्यत इति भावः घटाद्याकारपरिणतमृद्द्रव्यवत् कथंचिदभिन्न इत्यनेकान्तः। १५

यद्वा कोपपरिणतिमन्यस्मिन् जीवे उत्पादयन् पुरुषः कारको भवति। ततोऽसौ कोपकारकत्वेन विभजनीयः—कोपपरिणतियोग्ये जीवे कारकः, अन्यत्राकारक इति ॥७॥

[द्रव्य-गुणयोः कथंचिदभेदमनिच्छतां केषांचित् तयोर्भेदविषयाऽऽशङ्का]

द्रव्यं गुणादिभ्योऽनन्यत् तेऽपि द्रव्यादनन्य इत्येतदनेकान्तमनुष्यमाणा आहुः—

[3]रूव-रस-गंध-फासा असमाणग्गहण-लक्खणा जम्हा। २०
तम्हा दव्वाणुगया [4]गुण त्ति ते केइ इच्छंति ॥८॥

---

१ "कइविहा णं भंते! आया पण्णत्ता? गोयमा! अट्ठविहा आया पण्णत्ता। तं जहा-दवियाया कसायाया जोगाया उवओगाया णाणाया दंसणाया चरित्ताया वीरियाया" इत्यादि संपूर्णं सूत्रम्-भगवतीसू० पृ० ५८८ सू० ४६७।

२ विभइयव्वो गु० मू० विना। ३ रूप-रस-आ० हा० वि०।

४ 'गुण'शब्दस्य वैशेषिकादिदर्शनेषु प्रतिनियतार्थत्वेन प्रसिद्धत्वात् केषुचित् उत्तराध्ययन-तत्त्वार्थादिग्रन्थेषु च तस्य विशिष्टार्थत्वेन निर्देशात् भगवत्यादिषु आगमेषु गुण-पर्यायशब्दयोर्द्वयोरपि प्रयोगदर्शनात् जैनमते उपतिष्ठमानाम् 'किं गुणशब्दः पर्यायशब्दसमानार्थक एव उत भिन्नार्थकः' इति विप्रतिपत्तिं निराकर्तुकामेन श्रीसिद्धसेनदिवाकरेण गुणशब्दस्य पर्यायशब्दसमानार्थकत्वपरं स्वकीयं मतमाविष्कृतं मूलगाथायाम्।

परन्तु तयोर्द्वयोरपि शब्दयोरर्थमर्यादामवगन्तुमपरेषामपि अनेकेषामाचार्याणां तद्विषयाणि विविधानि मतानि परिज्ञातव्यानि सन्ति। तानि चेत्थम्—

उत्तराध्ययनसूत्रे गुण-पर्यायशब्दयोः पृथक् पृथग् निर्देशः लक्षणं चेत्थं निरूपितमस्ति। तथाहि—

"गुणाणमासओ दव्वं एगदव्वस्सिआ गुणा। लक्खणं पज्जवाणं तु उभओअस्सिआ भवे ॥
एगत्तं च पुहत्तं च संखा संठाणमेव य। संजोगा य विभागा य पज्जवाणं तु लक्खणं ॥
गुणानां तु रूपादीनामतिप्रतीतत्वाल्लक्षणं नोक्तमिति"—अ० २८ गा० ६ तथा १३।

श्रीमदुमास्वातिना सूत्रे भाष्ये च पृथक् पृथग् प्रयुक्तौ लक्षितौ च गुण-पर्यायशब्दौ तयोर्भिन्नार्थत्वपरं स्वीयं मन्तव्यं सूचयतः। तथाहि—

"गुण-पर्यायवद् द्रव्यम्"—तत्त्वार्थ० ५, ३७।

"सर्वं नित्यं द्रव्य-गुण-पर्यायावरोधात्"–१, ३५ तत्त्वार्थ० भा०। "गुणान् लक्षणतो वक्ष्यामः। भावान्तरं संज्ञान्तरं च पर्यायः। तदुभयं यत्र विद्यते तद् द्रव्यम्"–५, ३७ तत्त्वार्थ० भा०।

श्रीकुन्दकुन्देन पृथक्तया प्रयुक्त-लक्षितौ अमृतचन्द्रेण च भिन्नार्थतया स्पष्टमेव व्याख्यातौ गुण-पर्यायशब्दौ विभिन्नार्थत्वपरमेव तदीयं तात्पर्यं ज्ञापयतः। तद्यथा—

"अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि। तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया" ॥ १ ॥
—प्रवचन० पृ० ११९।

"लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं च हवदि विण्णादं। ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तामुत्ता गुणा णेया" ॥ ३८ ॥
प्रवचन० पृ० १८२।

"दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि। अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा" ॥ १३ ॥—
पचास्ति० पृ० ३१।

अस्य गाथात्रयस्य अमृतचन्द्रीया व्याख्यापि अत्रानुसंधेया।

श्रीराजमल्लेन [illegible] अमृतचन्द्रवत् तौ द्वावपि शब्दौ भिन्नार्थतया स्पष्टमेव परिभाषितौ। यथा—

"द्रव्याश्रया गुणाः स्युर्विशेषमात्रास्तु निर्विशेषाश्च। करतलगतं यदेतैर्व्यक्तमिवालक्ष्यते वस्तु" ॥ १०४ ॥

"क्रमवर्तिनो ह्यनित्या अथ च व्यतिरेकिणश्च पर्यायाः। उत्पाद-व्ययरूपा अपि च ध्रौव्यात्मकाः कथंचित्" ॥ १६५ ॥
—पञ्चाध्या० पृ० १७, ५४।

पूज्यपादेन तु अन्वयित्व-व्यतिरेकित्वरूपेण गुण-पर्याययोः स्पष्टमेव भेदं प्रतिपाद्य तदाधारयोर्द्वयोः शब्दयोर्विभिन्नार्थत्वं तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यायां प्रदर्शितम्। तथाहि—

"के गुणाः ? के पर्यायाः ? अन्वयिनो गुणाः व्यतिरेकिणः पर्यायाः। उभयैरुपेतं द्रव्यमिति। उक्तं च—

गुण इदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो। तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं ॥

ततः सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणाः, पुद्गलादीनां च रूपादयः। तेषां विकारा विशेषात्मना भिद्यमानाः पर्यायाः। घटज्ञानम् पटज्ञानम् क्रोधः मानः गन्धः वर्णः तीव्रः मन्द इत्येवमादयः"—५, ३८ सर्वार्थसिद्धिः पृ० १०९।

श्रीमदकलङ्केन गुण-पर्याययोः द्वयोरपि शब्दयोरेकार्थत्वम् विभिन्नार्थत्वं च द्वयमपि तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यायां समर्थितम्। तद्यथा—

"गुणा एव पर्याया इति वा निर्देशः। अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्याणि च (?) पर्यायाः न तेभ्योऽन्ये गुणाः सन्ति ततो गुणा एव पर्याया इति [illegible] सामानाधिकरण्ये सति गुण-पर्यायवदिति निर्देशो युज्यते"—५, ३७ तत्त्वार्थराज० पृ० २४२।

"नित्यं द्रव्य[illegible] ते गुणा इति। पर्यायाः पुनः [illegible] तेषां [illegible] तेन [illegible] गुणा [illegible] ज्ञान-दर्शनादयश्च पुद्गलस्य [illegible]। पर्यायाः पुनः [illegible]"—५, ३० तत्त्वार्थश्लोक० भा० ४ पृ० २०० [illegible]

[illegible] अनुगता। तथाहि—

"[illegible] × × × [illegible]"—५, ३८ [illegible] पृ० ४३८।

[illegible]

[illegible]

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः[1] असमानग्रहण-लक्षणा यस्मात् ततो द्रव्याश्रिता गुणा इति केचन वैशेषिकोपाः, स्वयूथ्या वा सिद्धान्तानभिज्ञा अभ्युपगच्छन्ति । तथाहि—गुणा द्रव्याद् भिन्नाः, भिन्नप्रमाणग्राह्यत्वात् भिन्नलक्षणत्वाच्च, स्तम्भात् कुम्भवत् । न चासिद्धो हेतुः, द्रव्यस्य 'यमहमद्राक्षं तमेव स्पृशामि' इत्यनुसंधानाख्यप्रमाणग्राह्यत्वात् रूपादीनां च प्रतिनियतेन्द्रिय-प्रभवप्रत्ययग्राह्यत्वात् 'दर्शनं स्पार्शनं च द्रव्यम्' इत्याद्यभिधानादसमानग्रहणता द्रव्य-गुणयोः[2] सिद्धा । तथा, विभिन्नलक्षणत्वमपि—

"क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम्" [वैशेषिकसू० १-१-१५] "द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोग-विभागेष्वकारणमनपेक्षः" [वैशेषिकसू० १-१-१६] इति वचनात् सिद्धम् ॥ ८ ॥

श्रीसिद्धसेनसूरिणाऽपि एकार्थत्वम् भिन्नार्थत्वं च द्वयमपि नयभेदेन व्यवस्थाप्य अकलङ्कीय एव पन्थास्तत्त्वार्थभाष्य-वृत्तौ समनुसृतः । तद् यथा—

"गुणाः सहविशेषाः त एव क्रमेण सह च भवन्तः सर्वतोमुखत्वाद् भेदाः पर्यायास्तान् गुणान् पिण्डघटकपालादीन् रूपादींश्च ××× व्यवहारनयसमाश्रयणेन तु गुणाः पर्याया इति वा भेदेन व्यवहारः प्रवचने । युगपदवस्थायिनो गुणा रूपादयः, अयुगपदवस्थायिनः पर्यायाः । वस्तुतः पर्याया गुणा इति ऐकात्म्यम्"—५, ३७ तत्त्वार्थ० व्या० पृ० ४२८ ।

उभयोर्द्वयोरपि शब्दयोरेकार्थत्वं इति मन्यमानेनापि वादिदेवसूरिणा प्राक्तनतर्कग्रन्थेषु तयोर्विभिन्नार्थत्वेन प्रयोगपरिपाटिं पश्यता स्वीये प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारग्रन्थे पर्यायशब्दस्य अर्थं संकोच्य विभिन्नार्थत्वं तयोर्द्वयोः शब्दयोर्व्यावर्णितम्, उपपादितं च स्याद्वादरत्नाकरे । तथैवम्—

"विशेषोऽपि द्विरूपः—गुणः पर्यायश्चेति ॥ ६ ॥

गुणः सहभावी धर्मः यथा आत्मनि विज्ञानव्यक्ति-शक्त्यादिरिति ॥ ७ ॥

पर्यायस्तु क्रमभावी यथा तत्रैव सुख-दुःखादिरिति ॥ ८ ॥"—परि० ५ पृ० ७३५ ।

श्रीमता हरिभद्रेण तु प्रस्तुते विषये सिद्धसेनदिवाकरीय एव पन्था अनुसृत' प्रतिभासते, स एव च मार्गं उपाध्याय-यशोविजयेन अनुधावितः उपपादितश्च—

"अन्वयो व्यतिरेकश्च द्रव्य-पर्यायसंज्ञितौ । अन्योन्यव्याप्तितो भेदाभेदवृत्त्यैव वस्तु तौ" ॥ २१ ॥

—शास्त्रवा० स्तब० ७ पृ० प्र० २६१ ।

"अन्वयो व्यतिरेकश्चेत्येतावंशौ द्रव्य-पर्यायसंज्ञितौ—द्रव्यं पर्यायश्चेति द्रव्य-पर्यायपदवाच्यौ । एतेन 'द्रव्यं गुणाः पर्यायाश्च' इति विभागः केषांचिद् अनभिज्ञस्वयूथ्यानाम् परयूथ्यानां वा निरस्तः, विभिन्ननयप्राप्ताभ्यां द्रव्य-पर्यायत्वाभ्यामेव विभागात् । यदि च गुणोऽप्यतिरिक्तः स्यात्, तदा तदर्थं द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकवद् गुणार्थिकनयमपि भगवानुपादेक्ष्यत्, न चैवमस्ति; रूप-रस-गन्ध-स्पर्शानामर्हता तेषु तेषु सूत्रेषु "वण्णपज्जवेहिं" इत्यादिना पर्यायसंज्ञयैव निरूपणात् । गुण एव तत्र पर्यायशब्देन उक्त इति चेत्, मन्वेवं गुण-पर्यायशब्दयोरेकार्थत्वेऽपि पर्यायशब्देनैव भगवतो देशना इति न गुणशब्देन पर्यायस्य तदतिरिक्तस्य वा गुणस्य विभागोचितम् । 'एकगुणकालः' 'दशगुणकालः' इत्यादौ गुणशब्देनापि भगवतो देशना अस्त्येवेति चेत्, अस्त्येव संख्यानवाचकधर्मवाचकगुणशब्देन, न तु गुणार्थिकनयप्रतिपादनाभिप्रायेण" इत्यादि—शास्त्रवा० स्याद्वादक० पृ० प्र० २६१ ।

१ रूप-रसादीनामसमानग्रहण-लक्षणता वैशेषिकैरित्थं वर्णिताऽस्ति—"रूपं चक्षुर्ग्राह्यम्" । × "रसो रसनग्राह्यः" । "गन्धो घ्राणग्राह्यः" । × "स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यः" ।—प्रशस्त० कं० पृ० १०४–१०५–१०६ ।

२ एतद् वाक्यमेव श्रीयशोविजयोपाध्यायः स्वीये गूर्जरभाषानिबद्धे रासके द्रव्यगुणपर्यायरासे इत्थमनूदितवान्—

"शक्तिरूप गुण कोइक भाखइ ते नहीं मारगि निरतई रे. जिन०" । "कोइक दिगंबरानुसारी शक्तिरूप गुण भाखइ छइ, जे माटइं ते एम कहइ छइ जे जिम द्रव्यपर्यायनुं कारण द्रव्य तिम गुणपर्यायनुं कारण गुण" इत्यादि—ढा० २ दो० १० ।

३ मुद्रिते वैशेषिकदर्शने तु एवं पाठो दृश्यते—

"क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्" । "द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्" ।

[द्रव्य–गुणयोरेकान्तभेदाशङ्कां निराकर्तुं गुणशब्दस्यार्थपरीक्षा]

एतत्परिहारायाह–

दूरे ता अण्णत्तं गुणसद्दे चेव ताव पारिच्छं ।
किं पज्जवाहिओ होज्ज पज्जवे चेव गुणसण्णा ॥ ९ ॥

५ दूरे तावद् गुण–गुणिनोरेकान्तेनान्यत्वम्—असंभावनीयमिति यावत्—गुणात्मकद्रव्यप्रत्ययबाधितत्वाद् एकान्तगुणगुणिभेदस्य । न च समवायनिमित्तोऽयमभेदप्रत्ययः, तस्य निषिद्धत्वात् । न चैकत्वप्रत्ययस्य प्रागुपन्यस्तानुमानबाधा, एकत्वप्रत्ययाध्यक्षबाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेनैकशाखाप्रभवत्वानुमानस्येव तस्य कालात्ययापदिष्टत्वात् । ततो गुण–गुणिनोरेकान्तान्यत्वस्यासंभवाद् गुणशब्दे एव तावत् पारीक्ष्यमस्ति–किं पर्यायादधिके गुणशब्दः ? उत पर्याय एव
१० प्रयुक्त इति ? अभिप्रायश्च न पर्यायादन्यो गुणः, पर्यायश्च कथंचिद्द्रव्यात्मक इति विकल्पः कृतः ॥ ९ ॥

[गुणस्य पर्यायाद् भेदे तृतीयस्य गुणार्थिकनयस्यापि वचनीयत्वप्रसञ्जनम्]

यदि पर्यायादन्यो गुणः स्यात् पर्यायार्थिकवद् गुणार्थिकोऽपि नयो वचनीयः स्यादित्याह–

दो उण णया भगवया दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठिया नियया ।
एत्तो य गुणविसेसे गुणट्ठियणओ वि जुज्जंतो ॥ १० ॥

१५ द्वावेव मूलनयौ भगवता द्रव्यार्थिक–पर्यायार्थिकौ नियमितौ, इतश्च पर्यायादधिके गुणविशेषे ग्राह्ये सति तद्ग्राहकगुणास्तिकनयोऽपि नियमितुं युज्यमानः स्यात् अन्यथा अव्यापकत्वं नयानां भवेत् अर्हतो वा तदपरिज्ञानं प्रसज्येत ॥ १० ॥

[तृतीयस्य गुणार्थिकनयस्य भगवदनुक्तत्वोपपादनम्]

न च भगवताऽसावुक्त इत्याह–

२० जं च पुण अरिहया तेसु तेसु सुत्तेसु गोयमाईणं ।
पज्जवसण्णा णियया वागरिया तेण पज्जाया ॥ ११ ॥

---

१ अत्र टीकानुरोधेन 'पज्जवाहिए' इति पाठः संभाव्यते अथवा सप्तम्यर्थे प्रथमा समर्थनीया । २ पृ० १०९ पं० १० । ३ पृ० ६११ पं० ३ ।

४ 'गुण–पर्याययोर्विभिन्नत्वे पर्यायप्रतिपादकपर्यायार्थिकवद् गुणप्रतिपादको गुणार्थिकोऽपि स्वतन्त्रो नयः कथमागमे नोक्तः' इत्याशङ्काया प्रेरितेन दिवाकरेण तयोर्द्वयोः शब्दयोरेकार्थत्वं वर्णितं परन्तु तयोर्विभिन्नार्थत्वं मन्यमानाभ्यामकलङ्क–विद्यानन्दिभ्यां सा शङ्का प्रकारान्तरेणैव अपाकृता, तदपाकरणयुक्तिरपि तयोर्द्वयोर्विभिद्यते, अकलङ्कीया युक्तिर्वस्तु-स्थितिस्पर्शिनी विद्यानन्दीया च तर्कानुगामिनी इति द्वयोर्भेदः प्रतिभाति । तद्यथा–

"द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिक इति द्वावेव मूलनयौ । यदि गुणोऽपि कश्चित् स्यात् तद्विषयेण मूलनयेन तृतीयेन भवितव्यम् न चास्ति असौ इत्यतो गुणाभावाद् गुण–पर्यायवदिति निर्देशो न युज्यते, तन्न; किं कारणम् ? अर्हत्प्रवचनहृदयादिषु गुणोपदेशात् । उक्तं हि अर्हत्प्रवचने–'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' इति । अन्यत्र चोक्तम्–

गुण इदि दव्वविहाणं दव्वविकारो य पज्जवो भणिदो । तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवदि णिच्चं ॥

यदि गुणोऽपि विद्यते ननु चोक्तं तद्विषयस्तृतीयो मूलनयः प्राप्नोति, नैष दोषः; द्रव्यस्य द्वावात्मानौ सामान्यम् विशेषश्चेति । तत्र सामान्यमुत्सर्गोऽन्वयः गुण इत्यनर्थान्तरम् । विशेषो भेदः पर्याय इति पर्यायशब्दः । तत्र सामान्यविषयो नयो द्रव्यार्थिकः, विशेषविषयः पर्यायार्थिकः । तदुभयं समुदितमयुतसिद्धरूपं द्रव्यमित्युच्यते न तद्विषयस्तृतीयो नयो भवितुमर्हति विकलादेशत्वान्नयानाम् तत्समुदयोऽपि प्रमाणगोचरः सकलादेशत्वात् प्रमाणस्य" इत्यादि–

५.३७ तत्त्वार्थराजवा० वा० २ पृ० २४३ ।

"गुणवद् द्रव्यमित्युक्तं सहानेकान्तसिद्धये । तथा पर्यायवद् द्रव्यं क्रमानेकान्तवित्तये" ॥ २ ॥

–तत्त्वार्थश्लो० वा० पृ० ४३८ ।

५ [illegible] च [illegible] समर्थनीयम् ।

यतः पुनर्भगवता तस्मिंस्तस्मिन् सूत्रे "वण्णपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं" [भगवतीसू० शत० १४, उ० ४ सू० ५१२] इत्यादिना पर्यायसंज्ञा नियमिता वर्णादिषु गौतमादिभ्यः व्याकृतास्ततः पर्याया एव वर्णादयो न गुणा इत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

[तुल्यार्थत्वाद् आगमाच पर्यायशब्देन गुणसंज्ञाभिधानमिति कथनम्]

अथ तत्र गुण एव पर्यायशब्देनोक्तः तुल्यार्थत्वात् आगमाच— ५

"य एव पर्यायः स एव गुणः" [ ] इत्यादिकात् । एतदेवाह—

परिगमणं पज्जाओ अणेगकरणं गुण त्ति तुल्लत्था ।

तह वि ण 'गुण' त्ति भण्णइ पज्जवणयदेसणा जम्हा ॥ १२ ॥

परि समन्तात् सहभाविभिः क्रमभाविभिश्च भेदैर्वस्तुनः परिणतस्य गमनं परिच्छेदो यः स पर्यायः विषय-विषयिणोरभेदात्। अनेकरूपतया वस्तुनः करणं-करोतेर्ज्ञानार्थत्वात्-ज्ञानम्- १० विषय विषयिणोरभेदादेव-गुणः इति तुल्यार्थौ गुण-पर्यायशब्दौ, तथापि न 'गुणार्थिकः' इत्यभिहितस्तीर्थकृता पर्यायनयद्वारेणैव देशना यस्मात् कृता भगवतेति ॥ १२ ॥

[भगवतो गुणद्वारेणापि देशनादर्शनात् गुणाभाव इति पूर्वपक्षः]

गुणद्वारेणापि देशनायां भगवतः प्रवृत्तिरुपलभ्यते इति न गुणाभाव इत्याह—

जंपन्ति अत्थि समये एगगुणो दसगुणो अणंतगुणो । १५

रूवाई परिणामो भण्णइ तम्हा गुणविसेसो ॥ १३ ॥

जल्पन्ति द्रव्य-गुणान्यत्ववादिनः-विद्यते एव सिद्धान्ते "एगगुणकालए दुगुणकालए" [भगवतीसू० शत० ५, उ० ७ सू० २१७] इत्यादि रूपादौ व्यपदेशस्तस्माद् रूपादिर्गुण-विशेष एवेत्यस्ति गुणार्थिको नयः उपदिष्टश्च भगवतेति ॥ १३ ॥

[उक्तस्य पूर्वपक्षस्य सिद्धान्तवादिना निराकरणम्] २०

अत्राह सिद्धान्तवादी—

गुणसद्दमंतरेणावि तं तु पज्जवविसेससंखाणं ।

सिज्झइ णवरं संखाणसत्थधम्मो 'तइगुणो' त्ति ॥ १४ ॥

रूपाद्यभिधायिगुणशब्दव्यतिरेकेणापि 'एकगुणकालः' इत्यादिकं पर्यायविशेषसंख्या-यावचकं वचः सिध्यति न पुनर्गुणास्तिकनयप्रतिपादकत्वेन, यतः संख्यानं गणितशास्त्रधर्मः- २५ 'अयं तावद्गुण इति एतावताऽधिको न्यूनो वा भावः' इति गणितशास्त्रधर्मत्वादस्येत्यर्थः ॥ १४ ॥

[सिद्धान्तिना स्वोक्तस्यार्थस्य दृढीकरणम्]

दृष्टान्तद्वारेणानुमेयार्थं दृढीकर्तुमाह—

जह दससु दसगुणम्मि य एगम्मि दसत्तणं समं चेव ।

अहियम्मि वि गुणसद्दे तहेय एयं पि दट्ठव्वं ॥ १५ ॥ ३०

---

१ जीवाजीवाभि० प्रति० ३ सू० ७८ पृ० ३८ प्र० । जम्बूद्वीपप्र० वक्ष० २ सू० ३६ पृ० १६४ द्वि० ।
२ भगवतीसू० पृ० ६४० प्र० ।
३ मलयगिरीयायां धर्मसंग्रहणिटीकायां शाकटायननाम्ना पर्यायलक्षणमित्थमुपन्यस्तं वर्तते—
"यदाह शाकटायनः-क्रमेण पदार्थानां क्रियाभिसंबन्ध पर्याय इति"—पृ० १४८ प्र० पं० १२ ।
४ भगवतीसू० पृ० २३५ प्र० । ५ "संखाणे × × × गुणनिद्दिए" । "संखाणे त्ति गणितशब्दे गुणनिद्दिए प्र[योगः]"—[भगवतीसू० श० २ उ० १ सू० ९० पृ० ११२ द्वि० तथा पृ० ११४ प्र०] इत्येवं गणितार्थवाचक 'संखाण'-शब्दः भगवत्यादिग्रन्थेषु विद्यते । ६ नास्त्यस्य व्य-भां० मां० ।
 ६१ स० प्र०

यथा दशसु द्रव्येषु एकस्मिन् वा द्रव्ये दशगुणिते दशशब्दातिरेकेऽपि दशत्वं सममेव तथैव एतदपि न भिद्यते–'परमाणुरेकगुणकृष्णादिः' इति। एकादिशब्दाभिधेये गुण-पर्यायशब्दयोर्भेदः यस्तु पुनस्तयोस्तुल्यमिति भावः। न च गुणानां पर्यायत्वे वाचकमुख्यसूत्रम्–"गुण-पर्यायवद् द्रव्यम्" [तत्त्वार्थ० अ० ५, सू० ३७] इति विरुध्यते, युगपदयुगपद्भावि-पर्यायविशेषप्रतिपादनार्थत्वात् तस्य। न चैवमपि मतुप्प्रयोगाद् द्रव्यविभिन्नपर्यायसिद्धिः, नित्य-योगेऽत्र मतुब्विधानात् द्रव्य-पर्याययोस्तादात्म्यात् सदाऽविनिर्भागवर्तित्वात्, अन्यथा प्रमाण-बाधोपपत्तेः। संज्ञा-संख्या-स्वलक्षणाऽर्थक्रियाभेदाद् वा कथंचित् तयोरभेदेऽपि भेदसिद्धेर्न मतु-बनुपपत्तिः॥ १५॥

[भेदस्य निरासेनाभेदस्य फलितत्वेऽप्येकान्तिना तस्य दार्ढ्याय सोपनयमुदाहरणम्]

एवं द्रव्य-पर्याययोर्भेदैकान्तप्रतिषेधे अभेदैकान्तवाद्याह–

एयंतपक्खवाओ जो उण दव्व-गुण-जाइभेयम्मि।
अह पुव्वपडिकुट्ठो उआहरणमित्तमेयं तु॥ १६॥
पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय-भाऊणं एगपुरिससंबंधो।
ण य सो एगस्स पिय त्ति सेसयाणं पिया होइ॥ १७॥
जह संबन्धविसिट्ठो सो पुरिसो पुरिसभावणिरइसओ।
तह दव्वमिंदियगयं रूवाइविसेसणं लहइ॥ १८॥

एकान्तपक्षनिराकरणपरवादो यः पुनर्द्रव्य-गुण-क्रियाभेदेषु स यद्यपि पूर्वमेव प्रतिक्षिप्तः भेदैकान्तग्राहकप्रमाणाभावात्, अभेदग्राहकस्य च 'सर्वमेकं सदविशेषात्' [illegible] इति प्रदर्शितत्वात्।

तथापि [illegible] दार्ढ्यार्थमुदाहरणमात्रमभिधीयते–

पितृ-पुत्र-नप्तृ-भागिनेय-भ्रातृभिरेकस्य पुरुषस्य संबन्धलेशमात्रेण एव पिताऽयम् [illegible]। न [illegible] पिता–पुत्रसंबन्धतः–इति शेषाणामपि पिता भवति।

यथा [illegible]संबन्धविशिष्टः पित्रादिव्यपदेशमभिलषति पुरुषस्तथा [illegible] [illegible] तथा द्रव्यमपि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कथंचिद् भेदाभेदरूपो द्रव्य-गुण [illegible] इति॥ १६। १७। १८॥

[[illegible] भेदाभेदः [illegible] [illegible]]

[illegible] –

[illegible] [illegible] [illegible] तं दव्वं।
[illegible] [illegible] वा होइ [illegible] पुरिसो॥ १९॥

[illegible]

यदि नाम आम्रादिद्रव्यमेव रसनसंबन्धात् 'रसः' इति व्यपदेशमात्रमासादयेत् द्विगुणमधुरं रसतः कुतो भवेत् तथा नयनसंबन्धात् यदि नाम 'कृष्णम्' इति भवेत् अनन्तगुणकृष्णं तत् कुतः स्यात् वैषम्यभेदावगतेर्नयनादिसंबन्धमात्रादसंभवात् । तथा, पुत्रादिसंबन्धद्वारेण पित्रादिरेव पुरुषो भवेत् न स्वल्पो महान् वेति युक्तः । विशेषप्रतिपत्तेरुपचरितत्वे मिथ्यात्वे वा सामान्यप्रतिपत्तावपि तथाप्रसक्तेरिति भावः ॥ १९ ॥ ५

[अभेदैकान्तवादिन आशङ्का]

अत्राहाभेदैकान्तवादी—

भण्णइ संबंधवसा जइ संबंधित्तणं अणुमयं ते ।
णणु संबंधविसेसे संबंधिविसेसणं सिद्धं ॥ २० ॥

संबन्धसामान्यवशाद् यदि संबन्धित्वसामान्यम् अनुमतं तव, ननु संबन्ध- १०
विशेषद्वारेण तथैव संबन्धिविशेषोऽपि किं नाभ्युपगम्यते ? ॥ २० ॥

[सिद्धान्तवादिनाऽऽशङ्कानिरसनम्]

सिद्धान्तवाद्याह—

जुज्जइ संबंधवसा संबंधिविसेसणं ण उण एयं ।
णयणाइविसेसगओ रूवाइविसेसपरिणामो ॥ २१ ॥ १५

संबन्धविशेषवशाद् युज्यते संबन्धिविशेषः यथा दण्डादिसंबन्धिविशेषजनितसंबन्धविशेषसमासादितसंबन्धिविशेषोऽवगतः । द्रव्याद्वैतवादिनस्तु न संबन्धिविशेषः नापि संबन्धविशेषः संगच्छत इति कुतो रसनादिविशेषसंबन्धजनितो रसादिविशेषपरिणामः ? ॥ २१ ॥

[अनेकान्तवादे अनन्त-द्विगुणादिवैषम्यपरिणतिः कथं घटते इत्याशङ्का तन्निरासश्च]

नन्वनेकान्तवादिनोऽपि रूप-रसादेरनन्त-द्विगुणादिवैषम्यपरिणतिः कथमुपपन्ना ? इत्याह— २०

भण्णइ विसमपरिणयं कह एयं होहिइ त्ति उवणीयं ।
तं होइ परणिमित्तं ण व त्ति एत्थऽत्थि एगंतो ॥ २२ ॥

शीतोष्णस्पर्शयोरेकत्रैकदा विरोधात् भण्यते 'एकत्र आम्रफलादौ विषमपरिणतिः कथं भवति' इति परेण प्रेरिते उपनीतं प्रदर्शितमनेन—तद् भवति परनिमित्तम्—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानां सहकारिणां वैचित्र्यात् कार्यमपि वैचित्र्यमासादयति—तद् आम्रादि वस्तु २५ विषमरूपतया परनिमित्तं भवति, न वा 'परनिमित्तमेव' इत्यत्राप्येकान्तोऽस्ति, स्वरूपस्यापि कथंचिन्निमित्तत्वात् । तन्न द्रव्याद्वैतैकान्तः संभवी ॥ २२ ॥

[प्रागुक्तस्य लक्षणस्य बाधाद् भेदैकान्तवादिना द्रव्य-गुणयोर्लक्षणान्तराभिधानम्
अभेदैकान्तवादिना च विकल्प्य तद्दूषणम्]

द्रव्य-गुणयोर्भेदैकान्तवादिना प्राक् प्रदर्शिततल्लक्षणस्यैकत्वप्रतिपत्त्यध्यक्षबाधितत्वाद् लक्ष- ३०
णान्तरं वक्तव्यम् तदाह—

दव्वस्स ठिई जम्म-विगमा य गुणलक्खणं ति वत्तव्वं ।
एयं सइ केवलिणो जुज्जइ तं णो उ दवियस्स ॥ २३ ॥

---

१ भवाद् भेदै-वा० बा० भां० मां० । २ न धाय-वा० बा० भां० मां० । ३ एवमव्वं च दव्वस्स पु० भा० हा० वि० ।

द्रव्यस्य लक्षणं स्थितिः जन्म-विगमौ लक्षणं गुणानाम्, एवं सति केवलिनो [illegible] गुणवत् [illegible]—तत्र किल केवलात्मना स्थिते एव चेतनाचेतनरूपा भवे [illegible] लक्ष्यन्ते, [illegible] च भवन्ति । न तु द्रव्यस्याऽऽधारेऽलक्षणमिदं युज्यते, न हि [illegible] जायन्ते [illegible] गन्धादिवत् । अथवा केवलिनोऽपि [illegible] युज्यते । न चापि द्रव्यस्य अचेतनस्य गुण-गुणिनोरत्यन्तभेदे असत्त्वापत्तेः—[illegible] [illegible] ॥ २३ ॥

दव्वत्थंतरभूया मुत्ताऽमुत्ता य ते गुणा होज्ज ।
जइ मुत्ता परमाणू णत्थि अमुत्तेसु अग्गहणं ॥ २४ ॥

[illegible] द्रव्यादर्थान्तरभूतगुणा मूर्ताः, अमूर्ता वा भवेयुः ? यदि मूर्ताः परमाणवो न तर्हि परमाणवो भवन्ति, मूर्तिमद्गुणाधारत्वात् [illegible] । अथ अमूर्ताः, अग्रहणं तेषाम् अमूर्तत्वात् आकाशवत् । ततो द्रव्य-गुणयोः कथंचित् [illegible] । तथाहि—द्रव्य-गुणयोः कथंचित् भेदः [illegible], कथंचिदभेदोऽपि [illegible] ॥ २४ ॥

[[illegible]]

[illegible] ॥ २५ ॥

[illegible]

[[illegible]]

[illegible] ॥ २६ ॥

[illegible]

[[illegible]]

[illegible]

[illegible]

श्चाऽनेकान्तश्च' इत्येवं ज्ञापनीयः । एवं च भजनाऽनेकान्तः संभवति, नियमश्च एकान्तश्च सिद्धान्तस्य "रयणप्पभा सिआ सासया सियाऽसासया" [जीवाजीवाभि० प्रतिप० ३ उ० १ सू० ७८] इत्येवमनेकान्तप्रतिपादकस्य "दव्वट्ठयाए सासया, पज्जवट्ठयाए असासया" [　　　] इत्येवं चैकान्ताभिधायकाविरोधेन ।

न चैवमव्यापकोऽनेकान्तवादः, 'स्यात्'पदसंसूचितानेकान्तगर्भस्यैकान्तस्य तत्त्वात् अनेकान्त- ५
स्यापि 'स्यात्'कारलाञ्छनेऽनेकान्तगर्भस्य अनेकान्तस्वभावत्वात् । न चानवस्था, अन्यनिरपेक्षस्वस्वरूपत एव तेषां व्यवस्थोपपत्तेः यद्वा स्वरूपत एवानेकान्तस्यैकान्तप्रतिषेधेनानेकान्तरूपत्वात् 'स्यादेकान्तः' 'स्यादनेकान्तः' इति कथं नानेकान्तेऽनेकान्तोऽपि । अनेकान्तात्मकवस्तुव्यवस्थापकस्य तद्व्यवस्थापकत्वं स्वयमनेकान्तात्मकत्वमन्तरेणाऽनेकान्तस्याऽनुपपन्नमिति न तथाऽव्यापकत्वादिदोष इत्यसकृदावेदितमेव ॥ २७ ॥　　१०

[षड् जीवनिकायास्तद्घाते च धर्म इत्यत्राप्यनेकान्तव्यवस्थापनम्]

अन्यनेकान्तस्य व्यापकत्वे 'षट् जीवनिकायाः' 'तद्घाते वा धर्मः' इत्यत्राप्यनेकान्त एव स्यादित्याशयाऽऽह—

णियमेण सद्दहंतो छक्काए भावओ न सद्दहइ ।
हंदी अपज्जवेसु वि सद्दहणा होइ अविभत्ता ॥ २८ ॥　　१५

नियमेनाऽवधारणेन 'षडेवैते जीवाः कायाश्च' इत्येवं श्रद्दधानः षट्कायान् भावतः परमार्थतो न श्रद्धत्ते जीवत्वाद्यपेक्षया तेषामेकत्वात् कायानामपि पुद्गलत्वेनैकत्वात् जीव-पुद्गलप्रदेशानां परस्परमविनिर्भागवृत्तित्वाच्च जीवप्रदेशानां स्याद् अजीवत्वम् प्रत्येकं प्राधान्यविवक्षया स्याद् अनिर्वाच्यत्वम् सूत्रविहितन्यायेन प्रवृत्तस्याऽप्रमत्तस्य 'हिंसाऽप्यहिंसा' इति 'तद्घाते स्याद्धर्मः' इति । न भावसम्यग्दृष्टिरसौ स्यात्, द्रव्यसम्यग्दृष्टिस्तु स्यात् 'भगवतैवमुक्तम्' इति जिनवचनरुचि- २०

---

१ "इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं सासया ? असासया ?
गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ।
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–सिय सासया सिय असासया ?
गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति–तं चेव जाव सिय असासया । एवं जाव अधेसत्तमा"—जीवाजीवाभि० पृ० ९८ प्र० पं० ११—१४ ।

२ "अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नयसाधनः । अनेकान्तः प्रमाणात् ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्" ॥ —समन्तभ० बृ० स्वयंभूस्तो० अर० श्लो० १८ ।

"अनेकान्ते तदभावादव्याप्तिरिति चेत्, न; तत्रापि तदुपपत्तेः । ६ । स्यादेतत् अनेकान्ते सा विधि-प्रतिषेधकल्पना नास्ति । यदि स्यात् यदाऽनेकान्तो न भवति तदैकान्तदोषानुषङ्गो भवेत् अनवस्थाप्रसङ्गश्च । ततस्तत्रानेकान्तत्वमेव इति सा सप्तभङ्गी व्याप्तिमती न भवतीति, तन्न; किं कारणम् ? तत्रापि तदुपपत्तेः 'स्याद् एकान्तः' 'स्याद् अनेकान्तः' 'स्याद् उभयः' 'स्याद् अवक्तव्यः' 'स्याद् एकान्तश्च अवक्तव्यश्च' 'स्याद् अनेकान्तश्च अवक्तव्यश्च' 'स्याद् एकान्तश्च अनेकान्तश्च अवक्तव्यश्च' इति । तत् कथमिति चेत् ? उच्यते—प्रमाण-नयार्पणाभेदादेकान्तो द्विविधः—सम्यगेकान्तः मिथ्यैकान्त इति । अनेकान्तो द्विविधः सम्यगनेकान्तः मिथ्यानेकान्त इति । तत्र सम्यगेकान्तो हेतुविशेषसामर्थ्यापेक्षः प्रमाणप्ररूपितार्थैकदेशादेशः, एकान्तावधारणेन अन्याशेषनिराकरणप्रवणप्रणिधिर्मिथ्यैकान्तः । एकत्र सप्रतिपक्षानेकधर्मस्वरूपनिरूपणो युक्त्यागमाभ्यामविरुद्धः सम्यगनेकान्तः, तदतत्स्वभाववस्तुशून्यं परिकल्पितानेकात्मकं केवलं वाग्विज्ञानं मिथ्यानेकान्तः । तत्र सम्यगेकान्तो नय उच्यते, सम्यगनेकान्तः प्रमाणम् । नयार्पणादेकान्तो भवति एकनिश्चयप्रवणत्वात् । प्रमाणार्पणादनेकान्तो भवति अनेकनिश्चयाधिकरणत्वात् । यद् यदि अनेकान्तोऽनेकान्त एव स्यात् नैकान्तो भवेत् एकान्ताभावात् तत्समूहात्मकस्य तस्याप्यभावः स्यात् शाखाद्यभावे वृक्षाद्यभाववत् तदविनाभाविविशेषनिराकरणादात्मलोपे सर्वलोपः स्यात् । एवमुत्तरे च भङ्गा योजयितव्याः"—तत्त्वार्थराजवा० १-६-६ पृ० २५-२६ । शास्त्रवा० स्या०क० पृ० २२१ द्वि० प० १—१० ।

३ "अनेकान्तो"—बृ० टि० । ४ "एकान्तोऽसीति"—बृ० टि० । ५ "वस्तु-" बृ० टि० । ६ कायेन्द्र–बृ० ।

स्वभावत्वात् । ततोऽपर्यायेष्वपि न विद्यन्ते अर्चि-र्मुर्मुरादयो विवक्षितपर्याया येषु पुद्गलेषु तेष्वपि अविभक्तश्रद्धानं यत् तदपि भावत एव भवेत्–'अर्चिष्मानयं भावो भूतो भावी वा' इति । तन्नाऽव्यापकोऽनेकान्तवादः ॥ २८ ॥

[गतिमत्यपि द्रव्ये अपेक्षाविशेषेण गत्यगती प्रदर्श्यानेकान्तस्य व्यापकत्वोपपादनम्]

नन्वनेकान्तस्य व्यापकत्वे 'गच्छति तिष्ठति' इत्यत्राऽप्यनेकान्तः स्यात्, तथाभ्युपगमे च तयोरभावप्रसक्तिरित्येतदेवाऽऽह–

गइपरिणयं गई चेव केइ णियमेण दवियमिच्छंति ।
तं पि य उड्ढगईयं तहा गई अन्नहा अगई ॥ २९ ॥

'गतिक्रियापरिणामवद् द्रव्यं गतिमदेव' इति केचिद् मन्यन्ते, तदपि गतिक्रियापरिणतं जीवद्रव्यं सर्वतो गमनाऽयोगाद् ऊर्ध्वादिप्रतिनियतदिग्गतिकं तैर्यादिभिरभ्युपगन्तव्यम्। एवं च तत् तथा प्रतिनियतदिग्गमनेनैव गतिमत्, अन्यथाऽपि गतिमत् स्यात् तदाऽभिप्रेतदेशप्राप्तिवद् अनभिप्रेतदेशप्राप्तिरपि तस्य भवेदित्यनुपलभ्यमानयुगपद्विरुद्धोभयदेशप्राप्तिप्रसक्तेरत्राप्यनेकान्तो नाऽव्यापकः । अभिप्रेतगतिरेव तत्राऽनभिप्रेताऽगतिरिति चेत्, न; अनभिप्रेतगत्यभावाभावे प्रतिनियतगतिभाव एव न भवेत् तत्सद्भावे वा तद्वत्त्योऽनेकान्तः ॥ २९ ॥

[दहनाद्यपेक्षाविशेषेणादहनत्वादिकं निरूप्यानेकान्तस्य व्यापकत्वसमर्थनम्]

स्यादेतत् 'दहनाद् दहनः, पचनात् पचनः' इत्यत्राप्यनेकान्ते दहनाद्यदहनादेर्विरुद्धरूपद्वयसंभवात् एकरूपाभावः स्यादित्यत्राह–

गुणणिव्वत्तियसण्णा एवं दहणादओ वि दट्ठव्वा ।
जं तु जहा पडिसिद्धं दव्वमदव्वं तहा होइ ॥ ३० ॥

गुणेन दहनादिना निर्वर्तितोत्पादिता संज्ञाऽभिधानं येषां तेऽपि दहन–पचनादय एवमेवाऽनेकान्तात्मका द्रष्टव्याः । तथाहि–दाहपरिणामयोग्यं तृणादिकं दहतीति दहनः तदपरिणतिस्वभावं [illegible]-वज्राऽऽद्यादिकं न दहतीति । तेन यद् द्रव्यं यथा दहनरूपतया प्रतिषिद्धं तद् अद्रव्यमदहनादिरूपम् तथा भजनाप्रकारेण स्याद् दहनः स्यान्नेति भवति ततो नाऽव्यापी अनेकान्तः ।

तथा, 'अदहनः' इत्यत्राप्यनेकान्तः । तथाहि–यद् उदकद्रव्यं यथा दहनरूपेण प्रतिषिद्धं-दहनो न भवतीति 'अदहनः' इति तदपि न सर्वथा अदहनद्रव्यं भवति, पृथिव्यादेरदहनरूपाद् व्यावृत्तत्वात्, अन्यथा दहनव्यतिरिक्तमूर्तत्वप्रसङ्ग इत्यनेकान्त एव अदहनमप्यावृत्तत्वं तद्द्रव्यत्वात् ॥ ३० ॥

[सर्वस्यापि वस्तुनः प्रतिनियतस्वरूपान्यथानुपपत्त्या स्वरूपास्तित्व–पररूपनास्तित्वाभ्युपगमेनानेकान्तात्मकत्वप्रदर्शनम्]

अथैवं तदन्यद्रव्यवद् जीवद्रव्यमजीवद्रव्यम् अजीवद्रव्यं च जीवद्रव्यं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह–

कुंभो ण जीवदविअं जीवो वि ण होइ कुंभदविअं ति ।
तम्हा दो वि अदविअं अण्णोण्णविसेसिआ होंति ॥ ३१ ॥

कुम्भो जीवद्रव्यं न भवतीति जीवोऽपि न भवति घटद्रव्यम् । तस्माद् द्वावपि अद्रव्यमन्योन्यविशेषितौ [illegible] ।

[illegible]

एतोऽयमभिप्रायः—जीवद्रव्यं कुम्भादेरजीवद्रव्याद् व्यावृत्तम् अव्यावृत्तं वा ? प्रथमपक्षे स्वरूपापेक्षया जीवो जीवद्रव्यम्, कुम्भाद्यजीवद्रव्यापेक्षया तु न जीवद्रव्यमित्युभयरूपत्वादनेकान्त एव । द्वितीयविकल्पे तु सर्वस्य सर्वात्मकतापत्तेः प्रतिनियतरूपाभावतस्तयोरभावः खरविषाणवत् । ततः सर्वमनेकान्तात्मकम्-अन्यथा प्रतिनियतरूपताऽनुपपत्तेः—इति व्यवस्थितम् ॥ ३१ ॥

[उत्पादपर्यायस्य प्रयोग-विस्रसाजन्यत्वेन द्वैविध्यकथनम्]

अत्र प्रागुक्तम्—'प्रत्युत्पन्नं पर्यायं विगतभविष्यद्भ्यां यत् समानयति वचनं तत् प्रतीत्यवचनम्' इति, तत्र पचनादिकोऽपि पर्यायः, स चाऽप्रयत्नानन्तरीयको वचनविशेषलक्षणः घटादिकस्तु प्रयत्नानन्तरीयक इति केचित् संप्रतिपन्नास्तन्निराकरणाय 'यद् यतोऽन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रतीयते तत् तत एवाऽभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा कार्यकारणभावाभावप्रसक्तिः' इत्याह—

उप्पाओ दुवियप्पो पओगजणिओ य वीससा चेव ।
तत्थ उ पओगजणिओ समुदयवायो अपरिसुद्धो ॥ ३२ ॥

द्विभेद उत्पादः—पुरुषेतरकारकव्यापारजन्यतया प्रत्यक्षाऽनुमानाभ्यां तथा तस्य प्रतीतेः । पुरुषव्यापारान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेऽपि शब्दविशेषस्य तदजन्यत्वे घटादेरपि तदजन्यताप्रसक्तेः विशेषाभावात् प्रत्यभिज्ञानादेश्च विशेषस्य प्रागेव निरस्तत्वात् तत्र प्रयोगेण यो जनित उत्पादः—मूर्तिमद्द्रव्यारब्धावयवत्वात्—स समुदायवादः, तथाभूताऽऽरब्धस्य समुदायात्मकत्वात् । तत एवाऽसावपरिशुद्धः, सावयवात्मकस्य तच्छब्दवाच्यत्वेन अभिप्रेतत्वात् ॥ ३२ ॥

[विस्रसाजन्यस्याप्युत्पादस्य द्वैविध्यवर्णनम्]

विस्रसाजनितोऽप्युत्पादो द्विविध इत्याह—

साभाविओ वि समुदयकओ व्व एगंतिओ (एगत्तिओ) व्व होज्जाहि ।
आगासाईआणं तिण्हं परपच्चओऽणियमा ॥ ३३ ॥

स्वाभाविकश्च द्विविध उत्पादः—एकः समुदयकृतः प्राक्प्रतिपादितावयवारब्धो घटादिवत् । अपरस्त्वैकत्विकोऽनुत्पादिताऽमूर्तिमद्द्रव्यावयवारब्ध आकाशादिवत् । आकाशादीनां च त्रयाणां द्रव्याणामवगाहकादिघटादिपरद्रव्यनिमित्तोऽवगाहनादिक्रियोत्पादोऽनियमाद् अनेकान्तात् भवेत्—अवगाहक-गन्तृ-स्थातृद्रव्यसन्निधानतोऽम्बर-धर्मा-ऽधर्मेष्ववगाहन-गति-स्थितिक्रियोत्पत्तिनिमित्तभावोत्पत्तिरित्यभिप्रायः ।

[आकाशादिद्रव्यत्रयस्य कथंचित् सावयवत्वसाधनम् सामयिकीनामाकाशादिसंज्ञानामुपपादनं च]

अन्यनारब्धाऽमूर्तिमद्द्रव्यावयवत्वे गगनादीनां निरवयवत्वप्रसक्तेरनेकान्तात्मकत्वव्याघातः, न; मूर्तिमद्द्रव्याऽनारब्धानामपि तेषां सावयवत्वात् । न च सावयवत्वमसिद्धम् प्रदेशव्यवहारस्याऽऽकाशे दर्शनात् । न च 'आकाशस्य प्रदेशाः' इति व्यवहारो मिथ्या, मिथ्यात्वनिमित्ताभावात् । न च संयोगस्याऽव्याप्यवृत्तित्वनिमित्तः सावयवत्वाध्यारोपो मिथ्यात्वकारणम् निरवयवेऽव्याप्यवृत्तिसंयोगाधारत्वस्याऽध्यारोपनिमित्तस्यैवाऽनुपपत्तेः । यदि च सावयवं नभो न भवेत् तदा श्रोत्राकाशसमवेतस्येव शब्दस्य ब्रह्मभाषितस्याऽप्युपलम्भोऽस्मदादि(दि)र्भवेत् निरवयवैकाकाशश्रोत्रसमवेतत्वात् । अथ धर्माधर्माभिसंस्कृतकर्णशष्कुल्यवरुद्धाकाशदेश एव श्रोत्रं तत्र च ब्रह्मभाषितस्याऽसमवायान्नास्मदादिभिः श्रवणम् । नन्वेवं सैव सावयवत्वप्रसक्तिः श्रोत्राकाशप्रदेशात् ब्रह्मशब्दाधाराकाशदेशस्यान्यत्वात् । यदि च सावयवमाकाशं न भवेत्, शब्दस्य नित्यत्वं सर्वगतत्वं च स्याद् आकाशैकगुणत्वात् तन्महत्त्ववत् । अथ क्वचिदेकदेशवृत्तिविशेषगुणत्वस्य शब्दे प्रमाणतः प्रसिद्धेनायं दोषः । नन्वेवमेकदेशवृत्तिविशेषगुणत्वाभ्युपगमे कथं न शब्दाधारस्याऽऽकाशस्य सावयवत्व-

१ पृ० १२८ गा० ३ । २ प्र० पृ० गा० ३२ । ३-शब्दवेश-भां० मां० । ४ प्रस्तुतचर्चेयम् क्वचित् क्वचिदपि प्रायेण शब्दशः प्रमेयकमलमार्तण्डे वर्तते-पृ० १६८ प्र० पं० १०— । ५-तः सि-भां० मां० ।

यद्वा देशादिविप्रकृष्टा उत्पत्ति-विनाश-स्थितिस्वभावा भिन्नाभिन्नकाला अर्थान्तरानर्थान्तररूपाः, द्रव्यत्वात्—द्रव्याव्यतिरिक्तत्वादित्यर्थः—अन्यथोत्पादादीनामभावप्रसक्तेः । तेभ्यो वा द्रव्यमर्थान्तरानर्थान्तरम्, द्रव्यत्वात् । प्रतिज्ञार्थैकदेशता च हेतोर्नाशङ्कनीया द्रव्यविशेषे साध्ये द्रव्यसामान्यस्य हेतुत्वेनोपन्यासात् ॥ ३५ ॥

५ [उक्तस्यार्थस्य प्रत्यक्षसिद्धेनोदाहरणेनोपोद्बलनम्]

अमेवार्थं प्रत्यक्षप्रतीतमुदाहरणमाह—

जो आउंचणकालो सो चेव पसारियस्स वि ण जुत्तो ।
तेसिं पुण पडिवत्ती–विगमे कालंतरं णत्थि ॥ ३६ ॥

य आकुञ्चनकालोऽङ्गुल्यादेर्द्रव्यस्य स एव तत्प्रसारणस्य न युक्तः भिन्नकालतया
१० आकुञ्चन-प्रसारणयोः प्रतीतेस्तयोर्भेदः, अन्यथा तयोः स्वरूपाभावापत्तेरित्युक्तम् तत्पर्यायाभिन्नत्वादङ्गुल्यादिद्रव्यस्यापि तथाविधत्वात् तदपि भिन्नमभ्युपगन्तव्यम् अन्यथा तदनुपलम्भात् अभिन्नं च तदवस्थयोरन्वयेन प्रत्यभिज्ञायमानत्वात् । तयोः पुनरुत्पाद-विनाशयोः—प्रतिपत्तिश्च प्रादुर्भावः, विगमश्च विगतिः—प्रतिपत्ति–विगमं तत्र कालान्तरं भिन्नकालत्वमङ्गुलिद्रव्यस्य च नास्ति ।
पूर्वसंयोगविनाशोत्तरसंयोगोत्पत्त्यङ्गुलिद्रव्यावस्थितीनामभिन्नकालता अभिन्नरूपता च प्रतीयते एक-
१५ [illegible] प्रतीतेः ।

अथवा 'कालान्तरं नास्ति' इत्यत्र 'अ'कारप्रश्लेषात् [illegible] प्रतिषेधद्वयेन [illegible] कालान्तरं कालभेद उत्पादादेर्द्रव्यस्य नास्तीति कथंचित् भेद इत्यर्थः—कथंचित् [illegible] । तेनोत्पत्ति-विनाश-स्थितीनां परस्परमैक्यपरित्यागाऽपरित्यागमनुभवतः [illegible] अतीताऽनागतकालयोः [illegible]
२० [illegible] उत्पादविनाशयोः [illegible] अन्यथा वर्तमानत्वम् [illegible] कथंचित् [illegible]
[illegible]
२५ [illegible] ॥ ३६ ॥

[illegible]

[उत्पादादित्रयं प्रत्येकं त्र्यात्मकवत् त्रैकालिकमप्यस्ति इति वदत एव यथार्थवक्तृत्वाभिधानम्]

यथोत्पाद-व्यय-स्थितीनां प्रत्येकमेकैकं रूपं त्र्यात्मकं तथा भूत-वर्तमान-भविष्यद्भिरप्येकैकं रूपं त्रिकालतामासादयतीत्येतदेवाह—

> उप्पज्जमाणकालं उप्पण्णं ति विगयं विगच्छंतं ।
> दवियं पण्णवयंतो तिकालविसयं विसेसेइ ॥ ३७ ॥ ५

उत्पद्यमानसमये एव किञ्चित् पटद्रव्यं तावदुत्पन्नम्—यद्येकतन्तुप्रवेशक्रियासमये तद् द्रव्यं तेन रूपेण नोत्पन्नं सर्वोत्तरस्यापि तथोत्पन्नमित्यत्यन्तानुत्पत्तिप्रसक्तिस्तस्य स्यात् । न चोत्पन्नांशेन तेनैव पुनस्तदुत्पद्यते तावन्मात्रपटादिद्रव्योत्पत्तिप्रसक्तेरुत्तरोत्तरक्रियाक्षणस्य तावन्मात्रफलोत्पादन एव प्रसरयाद् अपरस्य फलान्तरस्याऽनुत्पत्तिप्रसक्तेः । यदि च विद्यमाना एकतन्तुप्रवेशक्रिया न फलोत्पादिका, विनष्टा सुतरां न भवेत् असत्त्वात् अनुत्पत्त्यवस्थावत् न ह्यनुत्पन्नविनष्टयोरसत्त्वे १० कश्चिद् विशेषः । ततः प्रथमक्रियाक्षणः केनचिद् रूपेण द्रव्यमुत्पादयति, द्वितीयस्त्वसौ तदेव अंशान्तरेणोत्पादयति अन्यथा क्रियाक्षणान्तरस्य वैफल्यप्रसक्तेः । एकेनांशेनोत्पन्नं तद् उत्तरक्रिया- [illegible] ...यान्त्यतन्तु- [illegible] ...यत इत्युत्पद्य- [illegible] तथोत्पत्स्य- १५ मानमपि उत्पद्यमानमुत्पन्नं चेत्येवैकमुत्पादादिकालत्रयेण यथा त्रैकाल्यं प्रतिपद्यते तथा विगच्छ-दादिकालत्रयेणाप्युत्पादादिरेकैकः त्रैकाल्यं प्रतिपद्यते । तथाहि—यथा यद् यदैवोत्पद्यते तत् तदैवोत्पन्नम् उत्पत्स्यते च । यद् यदैवोत्पन्नं तत् तदैव उत्पद्यते उत्पत्स्यते च । यद् यदैवोत्पत्स्यते तत् तदैवोत्पद्यते उत्पन्नं च । तथा, तदेव तदैव यदुत्पद्यते तत् तदैव विगतं विगच्छद् विगमिष्यच्च । तथा, यदेव यदैवोत्पन्नं तदेव तदैव विगतं विगच्छद् विगमिष्यच्च । तथा, यदेव २० यदैवोत्पत्स्यते तदेव तदैव विगतं विगच्छद् विगमिष्यच्च । एवं विगमोऽपि त्रिकाल उत्पादादिना दर्शनीयः, तथा स्थित्याऽपि त्रिकाल एव सप्रपञ्चः प्रदर्शनीयः । एवं स्थितिरपि उत्पाद-विनाशाभ्यां सप्रपञ्चाभ्यामेकैकाभ्यां त्रिकाला प्रदर्शनीयेति द्रव्यमन्योन्यात्मकतयाभूतकालत्रयात्मकोत्पाद-विनाश-स्थित्यात्मकं प्रज्ञापयंस्त्रिकालविषयप्रादुर्भावधर्माधारतया तद् विशिनष्टि । अनेन प्रकारेण त्रिकालविषयं द्रव्यस्वरूपं प्रतिपादितं भवति; अन्यथा द्रव्यस्याभावात् तद्वचनस्य २५ मिथ्यात्वप्रसक्तिरिति भावः ॥ ३७ ॥

१-प्रसक्तिरुत्तरो-भां० विना । २-क्षान्तरवे—द्द० ।

३ "ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो । उप्पादो वि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण" ॥ ८ ॥

—प्रवचनसा० पृ० ११६ ।

"एतेन कालत्रयापेक्षयाऽपि त्रिलक्षणमुपदर्शितम् तस्य अन्वितेन रूपेण कालत्रयव्यापित्वात् अन्यथा क्षणिकवत् सर्वथाऽर्थक्रियाविरोधात् कूटस्थैकान्तवत् । ततो द्रव्यपर्यायात्मकं जीवादि वस्तु क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियान्यथानुपपत्तेरिति प्रमाणोपपन्नम् । तथा च स्थितिरेव स्थास्यति उत्पत्स्यते विनङ्क्ष्यति सामर्थ्यात् स्थिता उत्पन्ना विनष्टेति गम्यते । विनाश एव स्थास्यति उत्पत्स्यते विनङ्क्ष्यति स्थित उत्पन्नो विनष्ट इति च गम्यते । उत्पत्तिरेव उत्पत्स्यते विनङ्क्ष्यति स्थास्यतीति न कुतश्चिद् उपरमति सोत्पन्ना विनष्टा स्थितेति गम्यते । स्थित्याद्याश्रयस्य वस्तुनो अनाद्यनन्तत्वात् अनुपरमसिद्धेः स्थित्यादिपर्यायाणां कालत्रयापेक्षिणामनुपरमसिद्धिः अन्यथा तस्यातल्लक्षणत्वप्रसङ्गात् सत्त्वविरोधात् । एतेन जीवादि वस्तु तिष्ठति स्थितम् स्थास्यति, विनश्यति विनष्टम् विनङ्क्ष्यति, उत्पद्यते उत्पन्नम् उत्पत्स्यते चेति प्रदर्शितम् कथंचित् तदभिन्नस्थित्यादीनामन्यथा स्थास्यत्यादिव्यवस्थानुपपत्तेः"—अष्टस० पृ० ११३ पं० २-१० ।

४ अत्र 'तथा यदेव यदुत्पद्यते तत् तदैव' इति पाठः सम्यग् भाति ।" "यदैवोत्पद्यमानं तदैव विगतं विगच्छद् विगमिष्यच्च"—नयोप० पृ० ४३ द्वि० पं० ८ । ५-मन्यान्यात्म—वृ० भा० हा० वि० ।

[विभागजन्यमुत्पादमनिच्छतां केषांचिद् उत्पादार्थानभिज्ञत्वख्यापनम्]

मन्यर्थान्तरगमनलक्षणस्य विनाशस्यासंभवात् विभागजस्य चोत्पादस्य; तद्द्वयाभावे स्थितेरप्यभावात् तत् त्रैकाल्यं दूरोत्सारितमेवेति मन्यमानान् वादिनः प्रति तदभ्युपगमप्रदर्शनपूर्वकमाह—

दव्वंतरसंजोगाहि केचि दवियस्स बेंति उप्पायं ।
५ उप्पायत्थाऽकुसला विभागजायं ण इच्छंति ॥ ३८ ॥

समानजातीयद्रव्यान्तरादेव समवायिकारणात् तत्संयोगासमवायिकारण-निमित्तकारणादिसव्यपेक्षाद् अवयवि कार्यद्रव्यं भिन्नं कारणद्रव्येभ्य उत्पद्यत इति द्रव्यस्योत्पादं केचन ब्रुवते । ते चोत्पादार्थानभिज्ञा विभागजातं नेच्छन्ति ॥ ३८ ॥

[प्रतिवादिसंमतोत्पादप्रक्रियाकथनपूर्वकं सिद्धान्तसंमतस्य विभागजन्योत्पादस्य समर्थनम्]

१० कुतः पुनर्विभागजोत्पादानभ्युपगमवादिन उत्पादार्थानभिज्ञाः ? यतः—

अणु दुअणुएहिं दव्वे आरद्धे 'तिअणुयं' ति ववएसो ।
तत्तो य पुण विभत्तो अणु त्ति जाओ अणू होइ ॥ ३९ ॥

द्वाभ्यां परमाणुभ्यां कार्यद्रव्ये आरब्धे 'अणुः' इति व्यपदेशः परमाणुद्वयारब्धस्य द्व्यणुकस्याणुपरिमाणत्वात् । त्रिभिर्द्व्यणुकैश्चतुर्भिर्वाऽऽरब्धे 'त्र्यणुकम्' इति व्यपदेशः; १५ अन्यथोपलब्धिनिमित्तस्य महत्त्वस्याभावप्रसक्तेः ।

अत्र किल त्रिभिश्चतुर्भिर्वा प्रत्येकं परमाणुभिरारब्धमणुपरिमाणमेव कार्यमिति त्र्यादिपरमाणूनामारम्भकत्वे आरम्भवैयर्थ्यप्रसक्तिरिति द्वाभ्यां परमाणुभ्यां द्व्यणुकमारभ्यते । द्व्यणुकमपि न द्वाभ्यामणुभ्यामारभ्यते कारणविशेषपरिमाणतोऽनुपभोग्यत्वप्रसक्तेः यतो महत्त्वपरिमाणयुक्तं तद्

---

१ अणुमणुएहिं आरद्धव्वे तिअणुयं ति निद्देसो । तत्तो य पुण विभत्ते अणु त्ति जाओ अणू होइ ॥ गु० मु० मू० ।

[illegible] 'दुअणुएहिं' इति पदं 'दोहिं अणुएहिं' 'बहुएहिं दुअणुएहिं' [illegible] प्रतिभाति । अतो [illegible] विभागत्रयम्—दु-अणुएहिं दव्वे आरद्धे अणु त्ति ववएसो अर्थात् द्वाभ्यां परमाणुभ्यां कार्यद्रव्ये आरब्धे 'अणुः' इति व्यपदेशः । [illegible] दुअणुएहिं दव्वे आरद्धे तिअणुयं ति ववएसो अर्थात् [illegible]—त्रिभिर्द्व्यणुकैः चतुर्भिर्वा कार्यद्रव्ये आरब्धे 'त्र्यणुकम्' इति व्यपदेशः ।

२–एहिं आरद्धव्वे ति– मु० मू० । ३ अणुं होइ पु० भां० भां० ।

४ [illegible] × × × × × [illegible] × × ×—२-२-११ [illegible] पृ० ५०५–५०६ ।

५ [illegible] पृ० ३३–पं० ६–९ ।

६ [illegible] पृ० १०८ पं० १५ ।

७ [illegible] पृ० ११९–१२१ पृ० ८१९—८१० ।

उपलब्धियोग्यं स्यात् तथा चोपभोग्यं कारणबहुत्वमहत्त्वप्रचयजन्यं च महत्त्वम् । न च द्वि-त्रिपरमाण्वारब्धे कार्ये महत्त्वम्, तत्र महत्परिमाणाभावात् तेषामणुपरिमाणत्वात्, प्रचयोऽप्यवयवाभावान्न संभवति तेषाम् । नापि द्वाभ्यामणुभ्याम् कारणबहुत्वाभावात् न प्रचयोऽपि प्रशिथिलावयवसंयोगाभावात् । उपलभ्यते च समानपरिमाणैस्त्रिभिः पिण्डैरारब्धे कार्ये महत्त्वम् न द्वाभ्यामिति महत्परिमाणाभ्यां ताभ्यामेवारब्धे महत्त्वम् न त्रिभिरल्पपरिमाणैरारब्ध इति समानसंख्या-तुल्य-५
परिमाणाभ्यां तन्तुपिण्डाभ्यामारब्धे पटादिकार्ये प्रशिथिलावयवतन्तुसंयोगकृतं महत्त्वमुपलभ्यते न तद् इतरत्रेति ।

नन्वेवं यदि कार्यारम्भकाले 'द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते द्वे बहूनि वा समानजातीयानि' इत्यभ्युपगमः परित्यज्यताम् यतो न परमाणु-द्व्यणुकादीनामपरित्यक्तानन्तरकारणस्वभावानामनतिशयानां कार्यजननसमर्थानां च द्व्यणुक-त्र्यणुकादिकार्यनिर्वर्तकत्वम्; अन्यथा प्रागपि तत्कार्यप्रसङ्गात् । १०

अथ न तेषामजनकावस्थात्यागतो जनकस्वभावान्तरोत्पत्तौ कार्यजनकत्वं किन्तु पूर्वस्वभावव्यवस्थितानामेव संयोगलक्षणसहकारिशक्तिसद्भावात् तदा कार्यनिर्वर्तकत्वम् प्राक् तु तदभावान्न कार्योत्पत्तिः कारणानामविचलितस्वरूपत्वेऽपि न च संयोगेन तेषामनतिशयो व्यावर्त्यते अतिशयो वा कश्चिदुत्पाद्यते अभिन्नो भिन्नो वा संयोगस्यैवाऽतिशयत्वात् । न च कथमन्यः संयोगस्तेषामतिशय इति वाच्यम् अनन्यस्याप्यतिशयत्वायोगात् न हि स एव तस्यातिशय इत्युपलब्धम् तस्मात् तत्संयोगे १५
सति कार्यमुपलभ्यते तदभावे तु नोपलभ्यत इति संयोग एव कार्योत्पादने तेषामतिशय इति न तदुत्पत्तौ तेषां स्वभावान्तरोत्पत्तिः संयोगातिशयस्य तेभ्यो भिन्नत्वादिति । [illegible]
त्पत्तौ तेषां [illegible]
संयोगः तत्[illegible]
परसंयोगादि [illegible] अतिशयः तदुत्पत्तावपि पूर्वोक्तदोष २०
प्रसङ्गात् । किञ्च, महदणीयसामाऽणुसंयोगात् परमाणुषु क्रियोत्पत्तेः इत्यभ्युपगमात्-परमाणुसंयोगोत्पत्तावप्यपरोऽतिशयो वाच्यः तत्र च स एव दूषणम् । किञ्चासौ संयोगो द्व्यणुकादिनिर्वर्तक[illegible] परमाण्वाश्रितः उत तद्व्याश्रितः, आहोस्विद् अनाश्रित इति ? यद्याद्यः पक्षस्तदा न तदुत्पत्ताश्रय उत्पद्यते नवेति ? यद्युत्पद्यते तदा परमाणूनामपि कार्यत्वप्रसक्तिरनवस्था च । अथ नोत्पद्यते तदा संयोगस्तदाश्रितो न स्यात्, समवायस्याभावात्, तेषां च तं प्रत्यकारकत्वात् सहकारित्वं तु २५
तत्र तस्य प्रागभावानिवृत्तेरन्यगुणात्मकत्वम् । ततस्तेषां कार्यकारकता परिकल्पितानुपपन्नता; अन्यथा तदाश्रितत्वं संयोगस्य न स्यात् । अन्याश्रितत्वेऽपि पूर्वोक्तदोषप्रसङ्गः । अनाश्रितत्वपक्षे तु निर्गुणोत्पत्तिप्रसक्तिः । अथ संयोगो नोत्पद्यत इत्यभ्युपगमस्तदा वक्तव्यम्-किमसौ सन्, उताऽसन् ? यदि सन्तदा सक्रियत्वप्रसक्तिः—"सदकारणवन्नित्यम्" [वैशेषिकसू० ४-१-१] इति वचनोऽनभ्युपगमात् तथा चासौ गुणो न भवेत्-नित्यत्वेनाऽनाश्रितत्वात् अनाश्रितस्य च पारतन्त्र्यायोगात् ३०
अपरतन्त्रस्य चाऽगुणत्वात् । अथाऽसन्निति पक्षस्तदा कार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गः तदभावे द्व्यणुकादि[illegible] परिमाणोपेतकार्यद्रव्योत्पत्त्यभावात्, तथा च अणवोऽरब्धनामसत्त्वादिति संयोगैकत्वसंख्या-परिमाण-महत्त्व-परत्वाद्यनेकगुणानां तदोत्पत्तिरभ्युपेया कारणगुणपूर्वकप्रक्रमेण कार्योत्पत्त्यनभ्युपगमात् । इष्टमेवैतदिति चेत्, ननु तेषां क आश्रय इति वक्तव्यम्, न तावत् कार्यम् तदुत्पत्तेः प्राक् तस्याऽसत्त्वात्, सत्त्वे चोत्पत्तिविरोधात् न च प्रथमक्षणे निर्गुणमेव कार्यं गुणोत्पत्तेः [illegible] ३५

---

१ न च प्र—भां० मां० ।

२ किंच असौ संयोगो द्व्यणुकादिनिर्वर्तक [illegible]

३-पूर्वेण[illegible]—हि० भां० पु० वि० ।

वक्तव्यम् गुणसंबन्धवत् सत्तासंबन्धस्याप्याद्यक्षणे अभावतस्तत्सत्त्वासंभवात् । न चोत्पत्ति-सत्ता-
संबन्धयोरेककालतयाऽऽद्यक्षण एव सत्त्वम् तदा रूपादिगुणसमवायाभावतोऽनुपलम्भे ततस्तत्सत्ता-
संबन्धव्यवस्थापनाऽसंभवात् । न हि 'सत्' इत्युपलम्भमन्तरेण तदा तस्य सत्तासंबन्धः सत्त्वं वा
व्यवस्थापयितुं शक्यम् । न च महत्त्वादेर्गुणस्य द्रव्येण सहोत्पादे तद्द्रव्याधेयता तद्द्रव्यस्य वा तदा-
५ धारता अकारणस्याश्रयत्वायोगात् । न चैककालयोः कार्यकारणभावः सव्येतरगोविषाणयोरिव
भवत्पक्षे युक्तः । तत्र कार्यं तदाश्रयः । अथाऽणवस्तदाश्रयस्तर्हि कार्यद्रव्यस्यापि त एवाश्रयः इत्येका-
श्रयौ कार्य-गुणौ प्राप्तौ । तथाऽभ्युपगमेपि न तावद् युतसिद्धयोस्तयोः कुण्ड-बदरवद् आश्रयाऽऽ-
श्रयिभावः अकार्यकारणप्रसङ्गात् । नाऽयुतसिद्धयोः, अयुतसिद्ध्याऽऽश्रयाश्रयिभावविरोधात् ।
तथाहि—'अपृथक्सिद्धः' इत्यनेन भेदनिषेधः प्रतिपाद्यते समवायाभावे अन्यस्यार्थस्यात्रासंभवात्,
१० 'आधाराधेयभावः' इत्यनेन चैकत्वनिषेधः क्रियते इति कथमनयोरेकत्र सद्भावः ? अथ नात्राधारा-
धेयभावस्तर्हि तेषां सत्त्वम्, उत असत्त्वमिति वक्तव्यम् । यद्याद्यः पक्षस्तदा 'संयोगादिगुणात्मकाः
परमाणव एव तथाभूतं कार्यम्' इति जैनपक्ष एव समाश्रितः स्यात् । द्वितीयपक्षे तु सर्वानुप-
लब्धिप्रसक्तिः ।

यदि च परमाणवः स्वरूपापरित्यागतः कार्यद्रव्यमारभन्ते स्वात्मनोऽव्यतिरिक्तं तदा कार्य-
१५ द्रव्यानुत्पत्तिप्रसक्तिः । न हि कार्यद्रव्ये परमाणुस्वरूपापरित्यागे स्थूलत्वस्य सद्भावः तस्य तदभावा-
त्मकत्वात् । तस्मात् परमाणुरूपतापरित्यागेन मृद्द्रव्यं स्थूलकार्यस्वरूपमासादयतीति तद्रूपतापरि-
त्यागेन च पुनरपि परमाणुरूपतामनुभवतीति वलयवत् पुद्गलद्रव्यपरिणतेरादिरन्तो वा न विद्यते
इति न कार्यद्रव्यं कारणेभ्यो भिन्नम् । न चार्थान्तरभावगमनं विनाशोऽयुक्त इति तद्रूपपरित्यागो-
पादानात्मकस्थितिस्वभावस्य द्रव्यस्य त्रैकाल्यं नानुपपन्नम् । यथा च एकसंख्या-संयोग-महत्त्वाऽपर-
२० त्वादिपर्यायैः परमाणूनामुत्पत्तेः कार्यरूपाः परमाणवस्तथा बहुत्वसंख्या-विभागाऽल्पपरिमाण-
परत्वात्मकत्वेन प्रादुर्भावात् परमाणवः कार्यद्रव्यवत् तथोत्पन्नाश्चाभ्युपगन्तव्याः, कारणान्वय-
व्यतिरेकानुविधानोपलम्भस्य कार्यताव्यवस्थानिबन्धनस्यात्रापि सद्भावादिति अयमर्थः 'तत्तो य'
इत्यादिना गाथापश्चार्धेन प्रदर्शितः । **तस्माद् एकपरिमाणाद् द्रव्याद् विभक्तः** विभागात्म-
कत्वेनोत्पन्नः **अणुरिति अणुर्जातो भवति** एतदवस्थायाः प्राक् तदसत्त्वात्; सत्त्वे वा इदानी-
२५ मिव प्रागपि स्थूलरूपकार्याभावप्रसङ्गात् इदानीं वा तद्रूपता तद्रूपाविशेषात् प्राक्तनावस्थायामिव
स्यात् । एवं चतुर्विधकार्यद्रव्याभ्युपगमोऽसंगतः । न च य एव कार्यद्रव्यारम्भकाः परमाणवस्त एव
तद्द्रव्यविनाशोत्तरकालं स्वरूपेण व्यवस्थिताः कार्यद्रव्यप्रागभाव-प्रध्वंसाभावयोरेकत्वविरोधात् घट-
द्रव्यप्रागभाव-प्रध्वंसाभावमृत्पिण्ड-कपालवत् । न च प्रागभाव-प्रध्वंसाभावयोस्तुच्छरूपतया
मृत्पिण्ड-कपालरूपत्वमसिद्धम् तुच्छरूपस्याभावस्य प्रमाणाजनकत्वेन तेदविषयत्वतो व्यवस्थापयितु-
३० मशक्यत्वादिति प्रतिपादनात् । न च कपालसंयोगाद् घटद्रव्यमुपजायते तद्विभागाच्च विनश्यतीति
मृत्पिण्डस्य घटद्रव्यं प्रति समवायिकारणत्वमयुक्तमिति वक्तव्यम् अध्यक्षत एव मृत्पिण्डोपादानत्वेन
तस्य प्रतीतेः अत एव घटस्य कपालसमवायिकारणत्वानुमानमध्यक्षबाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्त-
त्वेन कालात्ययापदिष्टम् । न चाल्पपरिमाणतन्तुप्रभवं महत्परिमाणं पटकार्यमुपलब्धमिति घटादिक-
मपि तदल्पपरिमाणानेककारणप्रभवं कल्पयितुं युक्तम् विपर्ययेणापि कल्पनायाः प्रवृत्तिप्रसङ्गात्,
३५ अध्यक्षबाधस्तु तदितरत्रापि समानः । किञ्च, परमाणूनां सर्वदैकं रूपमभ्युपगच्छन्नभावमेव तेषाम-
भ्युपगच्छेत् अकारकत्वप्रसङ्गात्-तत्र प्रागभाव-प्रध्वंसाभावविकलत्वेनानाधेयातिशयत्वात् वियत्कु-
सुमवत् । तदभावे च कार्यद्रव्यस्याप्यभावः अहेतोस्तस्यासंभवात् । तदभावे च परापरत्वादिप्रत्यया-
देरयोगात् कालादेरप्यमूर्तद्रव्यस्याभाव इति सर्वाभावप्रसक्तिः ।

यदपि 'अर्थान्तरगमनलक्षणो विनाशोऽसंभवी परमाणुपर्यन्तस्याम् सर्वविनाशानाम्' इत्य-
४० भिधानम्, तदप्यसंगतम्, तथाभूतविनाशे प्रमाणाभावात् । तथाहि—न तावदध्यक्षं तत्प्रतिपादने

१-त्वा अभ्यु-भां० मां० । २ तद्वि-वा० बा० । ३ "तेषामारम्भकान्तो विनाशः" । "देवा शरीरेन्द्रि-
[illegible] विनाशो [illegible]"-प्रशस्त० कं० पृ० ५१ पं० १३-१३ ।

[illegible] आम्रफलो तत्र [illegible] । परमाणु- [illegible] । छिद्रघटे- मापाकनिक्षिप्तेन वा नैतानेकान्त इति चेत्, न, सर्वस्य पक्षीकृतत्वात् अवयविनि च छिद्रस्योत्पन्नत्वात् तस्य च निरवयवत्वापायवये तदुत्पत्तिः परमाणुषु तदसंभवात् । पाकान्यथानुपपत्त्या परमाणुपर्यन्तो विनाशः परिकल्प्यत इति चेत्, न, विशिष्टसामग्रीवशाद् विशिष्टवर्णस्य घटादेर्द्रव्यस्य कथंचिदविनाशेऽप्युत्पत्तिसंभवात् । परमाणुपर्यन्तविनाशाभ्युपगमे च तद्देशत्व-तत्संख्यात्व-तत्परिमाणत्वोपर्यवस्थापितकर्परोपपातप्रत्यक्षोपलभ्यत्वादीनि पच्यमाने घटे न स्युः । शून्यप्रविद्धघटेमानेकान्तश्च परिहृत एव । न च कपालार्थी घटं भिन्द्यादापरमाण्वन्ते विनाशे । ततः प्रतीतिविरुद्धस्यावाभ्युपगन्तव्य इति ॥ ३९ ॥

[प्रतिवादिमतमाक्षिप्य प्रतिवन्दीतया स्वेष्टस्य विभागजन्योत्पादस्य समर्थनम्]

प्रस्तुतमेवार्थं पक्षद्वारेणोपसंहरत्याचार्यः—

बहुयाण एगसद्दे जइ संजोगाहि होइ उप्पाओ ।
णणु एगविभागम्मि वि जुज्जइ बहुयाण उप्पाओ ॥ ४० ॥

द्व्यणुकादीनां सति संयोगे यद्येकस्य त्र्यणुकादेः कार्यद्रव्यस्योत्पादो भवति—अन्यथैकाभिधानप्रत्ययव्यवहारायोगात्, नहि बहुषु 'एको घट उत्पन्नः' इत्यादिव्यवहारो युक्तः—'ननु' इत्यक्षमायाम् । एकस्य कार्यद्रव्यस्य विनाशेऽपि युज्यत एव बहूनां समानजातीयानां तत्कार्यद्रव्यविनाशात्मकानां प्रभूततया विभक्तात्मनामुत्पाद इति । तथाहि-घटविनाशाद् बहूनि कपालानि उत्पन्नानीत्यनेकाभिधानप्रत्ययव्यवहारो युक्तः, अन्यथा तदसंभवात् । ततः प्रत्येकं त्र्यात्मकानि कालत्रयोत्पादाद्यो व्यवस्थिता इत्यनन्तपर्यायात्मकमेकं द्रव्यम् ॥ ४० ॥

[एकस्मिन्नपि समये प्रत्येकं द्रव्यमनन्तपर्यायात्मकं प्रागुक्तरीत्या सिध्यति इत्यभिधानम्]

भवत्वनन्ते काले भवत्यनन्तपर्यायात्मकमेकं द्रव्यम्, एकसमये तु कथं तत् तदात्मकमवसीयते? प्रदर्शितदिशा तदात्मकं तदवसीयत इत्याह—

एगसमयम्मि एगदवियस्स बहुया वि होंति उप्पाया ।
उप्पायसमा विगमा ठिईउ उस्सग्गओ णियमा ॥ ४१ ॥

एकस्मिन् समये एकद्रव्यस्य बहव उत्पादा भवन्ति, उत्पादसमानसंख्या विगमा अपि तस्यैव तदैवोत्पद्यन्ते विनाशमन्तरेणोत्पादस्यासंभवात् नहि पूर्वपर्यायाविनाशे उत्तरपर्यायः प्रादुर्भवितुमर्हति। प्रादुर्भावे वा सर्वस्य सर्वकार्यताप्रसक्तिः, तदकार्यत्वं वा कार्यान्तरस्येव स्यात्। स्थितिरपि सामान्यरूपतया तथैव नियता स्थितिरहितस्योत्पादस्याभावात् भावे वा शशशृङ्गादेरप्युत्पत्तिप्रसङ्गात् ॥ ४१ ॥

[एकस्मिन् द्रव्ये एकसमयेऽनन्तधर्मात्मकत्वस्य दृष्टान्तेन साधनम्]

एतदेव दृष्टान्तद्वारेण समर्थयन्नाह—

काय-मण-वयण-किरिया-रूवाइ-गईविसेसओ वावि ।
संजोयभेयओ जाणणा य दवियस्स उप्पाओ ॥ ४२ ॥

यदैवानन्तानन्तप्रदेशिकाहारआयपरिणतपुद्गलोपयोगोपजातरस-रुधिरादिपरिणतवशाविर्भूत-

---

१-दावापात-भां० मां० आ० । २-स्य च स्या-भां० मां० आ० ।

ननु 'तद्विभागप्रतिपादकः पक्षो यथार्थम् अर्हद्वचनत्वात् अनेकान्तात्मकवस्तुप्रतिपादकवचोवत्' इत्यनुमानात् तद्विभागप्रतिपत्तौ कथं न तस्यानुमानविषयता? न, एवमप्यागमादेव तद्विभागप्रतिपत्तेः—आगमव्यतिरेकेण प्रमाणान्तरस्य तत्प्रतिपत्तिनिबन्धनस्याभावात् । अर्हदागमस्य च प्रधानार्थसंवादनिबन्धनमप्रणीतत्वनिश्चयेऽनुमानतोऽतीन्द्रियार्थविषये प्रामाण्यं निश्चीयत इत्यभ्युपगम्यत एव । आगमनिरपेक्षस्य तु प्रमाणान्तरस्यासद्भावेस्तत्र प्रवृत्तिर्न विद्यत इत्येवापत्ताऽहेतुवादत्वमेत- ५
द्विषयागमस्योच्यत इति ॥ ४३ ॥

[आगमोक्तस्य वस्तुनो हेतुद्वारा वास्तविकत्वसाधनमेव हेतुवादस्य लक्षणमिति सूचनम्]

वचनव्यापारे केवलमपेक्ष्यायं क्रमः । यदा तु ज्ञान-दर्शन-चारित्रत्रितये यथावदनुष्ठानप्रवणः तद्विकलश्च पुरुषः प्रतीयते तदा अनुमानगम्योऽपि तद्विभागो भवति, यथा-भव्यः अभव्यो वाऽयं पुरुषः, सम्यग्ज्ञानादिपरिपूर्णाऽपरिपूर्णत्वाभ्याम्, लोकप्रसिद्धभव्याऽभव्यपुरुषवत् । अहेतुवादागमा- १०
वगते वा धर्मिणि भव्याऽभव्यस्वरूपे तद्वि(तद्वि)परीतनिर्णयफलो हेतुवादः प्रवर्तते । योऽयमागमे मत्यादिरभिहितः स तथैव, यथोक्तहेतुसद्भावात् इत्याह—

भविओ सम्मद्दंसण-णाण-चरित्तपडिवत्तिसंपन्नो ।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स ॥ ४४ ॥

भव्योऽयम्, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रप्रतिपत्तिसंपूर्णत्वात् उक्तपुरुषवत् । तत्परि- १५
पूर्णत्वादेव नियमात् संसारदुःखान्तं करिष्यति कर्मव्याधेरात्यन्तिकं विनाशमनुभविष्यति, तन्नि-
बन्धनमिथ्यात्वादिप्रतिपक्षाभ्याससात्मीभावात्, व्याधिनिदानप्रतिकूलाचरणप्रवृत्ततथाविधातुर-
वत् । यः पुनर्न तत्प्रतिपक्षाभ्याससात्म्यवान् नासौ दुःखान्तकृत् भविष्यति तन्निदानानुष्ठानप्रवृत्त-
तथाविधातुरवद् इति हेतुवादस्य लक्षणम् । हेतुवादश्च प्रायो दृष्टिवादः तस्य द्रव्यानुयोगत्वात्,
"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः" [तत्त्वार्थसू० १-१] इत्यादेरनुमानादिगम्यस्यार्थस्य तत्र २०
प्रतिपादनात् । यथा चात्रानुमानादिगम्यता तथा गन्धहस्तिप्रभृतिभिर्विक्रान्तमिति नेह प्रदर्श्यते
ग्रन्थविस्तरभयात् ॥ ४४ ॥

[जीवादितत्त्वं कथं प्रतिपादयन् सिद्धान्तस्य आराधकः कथं वा प्रतिपादयन् तस्य विराधक इत्यभिधानम्]

"जीवाऽजीवाऽऽस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्" [तत्त्वार्थसू० १-४] इत्युभयवादा- २५
गमप्रतिपाद्यान् भावांस्तथैवाऽसंकीर्णरूपान् प्रतिपादयन् सैद्धान्तिकः पुरुषः इतरस्तु तद्विरा-
धक इत्याह—

जो हेउवायपक्खम्मि हेउओ आगमे य आगमिओ ।
सो ससमयपण्णवओ सिद्धंतविराहओ अन्नो ॥ ४५ ॥

यो हेतुवादागमविषयमर्थं हेतुवादागमेन, तद्विपरीतागमविषयं चार्थमागममात्रेण प्रदर्श- ३०
यति वक्ता स स्वसिद्धान्तस्य द्वादशाङ्गस्य प्रतिपादनकुशलः, अन्यथा प्रतिपादयंश्च-तदर्थस्य
प्रतिपादयितुमशक्यत्वात् तत्प्रतिपादके वचस्यनाप्तादिदोषमुत्पादयन्-सिद्धान्तविराधको भवति
सर्वज्ञप्रणीतागमस्य निस्सारताप्रदर्शनात् तत्प्रत्यनीको भवतीति यावत् ।

तथाहि-पृथिव्यादेर्मनुष्यपर्यन्तस्य षड्विधजीवनिकायस्य जीवत्वमागमेन अनुमानादिना च प्रमा-
णेन सिद्धं तथैव प्रतिपादयन् स्वसमयप्रज्ञापकः, अन्यथा तद्विराधकः । यतः प्रस्फुटचेतने मनुष्य- ३५
काये चैतन्यलक्षणं जीवत्वं स्वसंवेदनाध्यक्षतः स्वात्मनि प्रतीयते, परत्र व्यापारेणानुमानेन ।

1 तत्तद्विपरीत—वा० बा० विना ।

वनस्पतिपर्यन्तेषु पृथिव्यादिषु स्थावरेषु अनुमानतश्चैतन्यप्रतिपत्तिः । तथाहि-वनस्पतयो[illegible]

---

१ "साम्प्रतं वनस्पतिजीवास्तित्वे लिङ्गमाह—से बेमि—इमं पि जाइधम्मयं एयं पि जाइधम्मयं; इमं पि वुड्ढिधम्मयं एयं पि वुड्ढिधम्मयं; इमं पि चित्तमंतयं एयं पि चित्तमन्तयं; इमं पि छिण्णं मिलाइ; एयं पि छिण्णं मिलाइ; इमं पि आहारगं [illegible] पि आहारगं; इमं पि अणिच्चयं एयं पि अणिच्चयं; इमं पि असासयं एयं पि असासयं; इमं पि चओवचइयं एयं पि [illegible] चइयं; इमं पि विपरिणामधम्मयं एयं पि विपरिणामधम्मयं"—आचारा० सू० अ० १ उ० ५ सू० ४६ पृ० ६५ ।

महाभारत-मनुस्मृत्योरपि वनस्पत्यादीनां सचेतनत्वमित्थं समर्थितं दृश्यते—

"भरद्वाज उवाच—

पञ्चभिर्यदि भूतैस्तु युक्ताः स्थावर-जङ्गमाः । स्थावराणां न दृश्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः ॥

अनूष्मणामचेष्टानां घनानां चैव तत्त्वतः । वृक्षाणां नोपलभ्यन्ते शरीरे पञ्च धातवः ॥

न शृण्वन्ति न पश्यन्ति न गन्ध-रसवेदिनः । न च स्पर्शं विजानन्ति ते कथं पाञ्चभौतिकाः ॥

अद्रवत्वादनग्नित्वादभूमित्वादवायुतः । आकाशस्याप्रमेयत्वाद् वृक्षाणां नास्ति भौतिकम् ॥

भृगुरुवाच—

घनानामपि वृक्षाणामाकाशोऽस्ति न संशयः । तेषां पुष्प-फलव्यक्तिर्नित्यं समुपपद्यते ॥

ऊष्मतो म्लायते वर्णं त्वक् फलं पुष्पमेव च । म्लायते शीर्यते चापि स्पर्शस्तेनात्र विद्यते ॥

वाय्वग्न्यशनिनिर्घोषैः फलं पुष्पं विशीर्यते । श्रोत्रेण गृह्यते शब्दस्तस्माच्छृण्वन्ति पादपाः ॥

वल्ली वेष्टयते वृक्षं सर्वतश्चैव गच्छति । न ह्यदृष्टेश्च मार्गोऽस्ति तस्मात् पश्यन्ति पादपाः ॥

पुण्यापुण्यैस्तथा गन्धैर्धूपैश्च विविधैरपि । अरोगाः पुष्पिताः सन्ति तस्माज्जिघ्रन्ति पादपाः ॥

पादैः सलिलपानाच्च व्याधीनां चापि दर्शनात् । व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विद्यते रसनं द्रुमे ॥

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोर्ध्वं जलमाददेत् । तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिबति पादपः ॥

सुख-दुःखयोश्च ग्रहणाच्छिन्नस्य च विरोहणात् । जीवं पश्यामि वृक्षाणामचैतन्यं न विद्यते ॥

तेन तज्जलमादत्तं जरयत्यग्निमारुतौ । आहारपरिणामाच्च स्नेहो वृद्धिश्च जायते" ॥—

महाभा० शान्ति० मो० प० अ० १८३ श्लो० १-१८ पृ० ११११ ।

"उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः । ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः । पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः । बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना । अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुख-दुःखसमन्विताः" ॥—

मनु० अ० १ श्लो० ४६-४९ पृ० १४-१५ ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

राभिर्विभप्रतिनियतकालायुष्कविशिष्टौषधप्रयोगसंपादितवृद्धि-हानि-क्षत-मांससंरोहण-प्र-
वृद्धिपद्भागविकारोत्पादनाशायथानियतविशिष्टशरीरजिग्धत्व-रूक्षत्व-विशिष्टदोहद-बाल-
द्धावस्था-प्रतिनियतविशिष्टरसवीर्यविपाक-प्रतिनियतप्रदेशाहारग्रहणादिमत्त्वान्यथानुपप-
तेरस्मीशरीरवत् इत्याद्यनुमाने भोप्यकृत्प्रभृतिभिर्विस्तरतः प्रतिपादितं तच्चैतन्यप्रसाधक-

---

वराहमिहिराचार्यप्रणीतायां बृहत्(वाराही)संहितायां वृक्षायुर्वेदविषय इत्थं वर्णितो वर्तते—

त्र तेषां रोगज्ञानमाह—

शीतवातातपै रोगो जायते पाण्डुपत्रता । अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रसस्रुतिः ॥ १४ ॥
चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् । विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥

ा च काश्यपः—

शाखाविटपपत्रैश्च छायया विहिताश्च ये । येऽपि पर्ण-फलैर्हीना वृक्षाः पत्रैश्च पाण्डुरैः ॥
शीतोष्णवर्षवातार्यैर्मूलैर्व्याधिभिरपि । शाखिनां तु भवेद् रोगो द्विपानां केसरेण च ॥
चिकित्सितेषु कर्तव्या ये च भूयः पुनर्नवाः । शोधयेत् प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत् ततः ॥
कर्दमेन विडङ्गेन घृतमिश्रेण लेपयेत् । क्षीरतोयेन सेकः स्यात् रोहणे सर्वशाखिनाम् ॥

च फलनाशचिकित्सितमाह—

फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः । शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पसमृद्धये ॥ १६ ॥

इतरवैप्रयोगमाह—

"अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम् । सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया [illegible] ॥ १७ ॥
सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः । वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा" ॥ १८ ॥

—बृहत्सं० वृक्षायुर्वेदाध्या० ५४ पृ० ७४६-७४७ ।

षड्भावविकारा इत्थमवगन्तव्याः—

षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः—जायते अस्ति विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते विनश्यतीति"—यास्कनि०
अं० ११ । एतदेव विकारषट्कपरिगणनं महाभाष्ये "भूवादयो धातवः" १-३-१ इति सूत्रे, वाक्यपदीये तृतीयकाण्डे
समुद्देशीयवदृत्तिकाण्डोऽव्याख्यायाम् (तृ० कां० पृ० ११) हेमचन्द्रशब्दानुशासने "क्रियार्थो धातुः" ३-३-३
च विद्यते ।

भाष्यकृता श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणेन वनस्पतिपर्यन्तेषु पृथिव्यादिषु स्थावरेषु अनुमानतश्चैतन्यसिद्ध्यर्थं
र्शितं—

जम्म-जरा-जीवण-मरण-रोहणा-ऽऽहार-दोहला-ऽऽमयओ । रोग-तिगिच्छाईहि य नारि [illegible] सचेयणा तरवो ॥
चेतनास्तरवः इति प्रतिज्ञा, जन्म-जरा-जीवन-मरण-क्षतसंरोहणा-ऽऽहार-दोहदा-ऽऽमय-चिकित्सादिसद्भावात्,
, नारीवत् इति दृष्टान्तः । × × × × ×

छिक्कपरोइया छिक्कमेत्तसंकोयओ कुलिंगो व्व । आसयसंचाराओ वियत्त ! वल्लीवियाणाई ॥
सम्माइयो य साव-प्पबोह-संकोयणाइओऽभिमया । बउलादओ य सद्दाइविसयकालोवलंभाओ ॥

चेतनाः स्पृष्टप्ररोदिकादयो वनस्पतयः स्पृष्टमात्रसंकोचात्, कुलिङ्ग-कीटादि-वत् । तथा, सचेतना वल्ल्यादयः
वृत्ति-वृक्ष-वरण्डकाद्याश्रयं प्रति संचरणात् । तथा, शम्यादयश्चेतनत्वेन अभिमताः स्वाप-प्रबोध-संकोचादिमत्त्वात्
द् । तथा, सचेतना बकुला-ऽशोक-कुरबक-विरहक-चम्पक-तिलकादयः शब्दादिविषयकालोपलम्भात्—शब्द-
प-रस-स्पर्शविषयाणां काले प्राप्ते उपभोगस्य यथासंख्यमुपलम्भादित्यर्थः. वक्ष्यमाणरीत्या । एवं पूर्वमपि रोहणादि-
प्यानी-बीजपूरकादयो वनस्पतिविशेषाः चर्चनीया इति ।

थ सामान्येन तरूणाम् पृथ्वीविशेषाणां च विद्रुमादीनां सचेतनत्वसाधनायाह—

मंसंकुरो [illegible] समाणजाइरूवंकुरोवलंभाओ । तरुगण-विद्रुम-लवणो-वलादओ सासयावत्था ॥
रुगणः तथा विद्रुम-लवणो-पलादयश्च स्वाश्रयावस्था. सजन्मस्थानगताः सन्तश्चेतनाः [illegible] पुरुषस्य च
नजातीयाङ्कुरोत्थानात्, अर्शोमांसाङ्कुरवत् । × × ×

यपोरुकस्य सचेतनत्वं साधयितुमाह—

भूमिक्खयसाभाविसंभवओ दद्दुरो व्व जलमुत्तं । अहवा मच्छो व

मित्यनुमानतस्तेषां चैतन्यमात्रं सिध्यति । साधारण-प्रत्येकशरीरत्वादिकंस्तु भेदः—

"गूढसिर-संधि-पव्वं समभंगमहीरगं च छिण्णरुहं । साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च प[illegible]
[जीवविचा० गा० १२

इत्याद्यागमप्रतिपाद्य एव ।

५ जीवलक्षणव्यतिरिक्तलक्षणास्त्वजीवा धर्माऽधर्माऽऽकाश-काल-पुद्गलभेदेन पञ्चविधा[illegible] पुद्गलास्तिकायव्यतिरिक्तानां सतो मूर्तिमद्द्रव्यसम्बन्धमन्तरेणात्मद्रव्यवदमूर्तत्वाद् अनुमान[illegible] सेयता । तथाहि—गति-स्थित्यवगाहलक्षणं पुद्गलास्तिकायादिकार्यं विशिष्टकारणप्रभवम्, वि[illegible]

[illegible]

[तत्त्वार्थसू० १-३३] इति श्रूयते ? न; स्थूलतस्तच्छ्रुतेः, अवान्तरभेदेन तु तेषामपरिमितत्व स्वकल्पनाशिल्पिघटितविकल्पानामनियतत्वात् तदुत्थप्रवादानामपि तत्संख्यापरिमाणत्वात् ॥ ४

[कं कं नयमाश्रित्य कस्कः समयः प्रस्थित इति प्रश्नस्य व्याकरणम्]

ननु कं नयमाश्रित्य कः परसमयः प्रवृत्तः ? को वा कस्य विषयः ? इत्याह—

५ जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं ।
सुद्धोअणतणअस्स उ परिसुद्धो पज्जवविअप्पो ॥ ४८ ॥

यत् कापिलं दर्शनं सांख्यमतम् एतद् द्रव्यास्तिकनयस्य वक्तव्यम् तदुत्थापितं चेति भावः-शौद्धोदनेस्तु परिशुद्धः पर्यायविशेष एव वक्तव्यः-परिशुद्धपर्या स्तिकनयविशेषविषयं तदुत्थापितं च सौगतमतमित्यभिप्रायः । मिथ्यात्वरूपनयप्रभवत्वाद् १० मिथ्यात्वं प्राक् प्रदर्शितमेव ॥ ४८ ॥

[द्रव्यास्तिक-पर्यायास्तिकोभयाश्रितस्यापि वैशेषिकसमयस्य कथं मिथ्यात्वमिति प्रश्नस्य प्रतिवचनम्]

ननु भवतु परस्परनिरपेक्षैकैकनयावलम्बिनोः साङ्ख्य-सौगतमतयोर्मिथ्यात्वम्, तु द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयद्वयावलम्बिनः कथं मिथ्यात्वम् ? इत्यत्राह—

१५ दोहि वि णएहि णीअं सत्थमुलूएण तह वि मिच्छत्तं ।
जं सविसअप्पहाणत्तणेण अण्णोण्णनिरवेक्खा ॥ ४९ ॥

द्वाभ्यामपि द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयाभ्यां प्रणीतं शास्त्रम् उलूकेन पेक्षा, द्रव्य-गुणादेः पदार्थरूपतया नित्यानित्यैकान्तरूपस्य तत्र प्रतिपादनात् ।

[कणादोक्तषट्पदार्थव्यवस्थाया उपन्यासः]

२० तथाहि—द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाख्याः षडेव पदार्थाः, न्यूनाऽधिकव्यतिरे [illegible] परस्परभिन्न[illegible]पदार्थव्यवस्थापकप्रमाणविषयत्वात्, [illegible] [illegible]। तत्र पृथिव्यप्-तेजो-वाय्वाकाश-काल-दिगात्म-मनांसि नवैव द्रव्याणि । 'पृथिवी तेजो वायुः' इत्येतत् चतुर्विधं नित्याऽनित्यभेदात् द्विप्रकारं द्रव्यम्, तत्र परमाणुरूपं [illegible] "सदकारणवन्नित्यम्" [वैशेषिकसू० ४-१-१] इति वचनात्, तदारब्धं तु द्व्यणुकादि कार्यद्र २५ व्यमनित्यम् । आकाशादिकं तु नित्यमेव, [illegible] । एतानि च द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात् द्रव्याणि [illegible] द्रव्यत्व[illegible]समवायः, [illegible] सामान्यम्, [illegible] [illegible] । तथाहि—पृथिव्यादीनि नव पदार्थानि इतरेभ्यो भिद्यन्ते 'द्रव्याणि' इति [illegible] द्रव्यत्वाभिसम्बन्धात्, यानि तु नैवम् न च तानि द्रव्यत्वाभिसम्बन्धीनि, [illegible], इति [illegible] पृथिव्यादीनि द्रव्याणि गुणादिभ्यो ३० भिद्यन्ते । [illegible] पृथिव्यादिभ्यो [illegible] [illegible] द्रव्यम् । [illegible] [illegible] द्रव्याणि । [illegible] द्रव्याणि, [illegible]

---

१ पृ० [illegible] । २ दोहिं वि णएहिं पु० [illegible] ।

[illegible] — [illegible] ।

[illegible]

[illegible]

परस्परव्यावृत्तगणवस्तरणयोगित्वात्, उभयाभिमतनन्दपदादिवत् । एवं रूपादयश्चतुर्विंशतिर्गुणाः।
उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि । पराऽपरभेदभिन्नं द्विविधं सामान्यमनुगतज्ञानकारणम् । नित्यद्र-
व्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषा अत्यन्तव्यावृत्तबुद्धिहेतवः । अयुतसिद्धानामाधार्याऽऽधारभूतानाम् 'इह'
इतिप्रत्ययहेतुर्यः संबन्धः स समवाय एको व्यापकश्च । अत्र च पदार्थषट्के द्रव्याणि गुणाश्च
केचिन्नित्या एव, केचित् त्वनित्या एव । कर्म अनित्यमेव । सामान्य-विशेष-समवायास्तु नित्या ५
एवेति पदार्थव्यवस्था। ततश्चैतद् यावत् तथापि मिथ्यात्वम्, तत्प्रदर्शितपदार्थषट्कस्य प्रमाण-
बाधितत्वात् ।

[कणादोक्तां तत्त्वव्यवस्थां निरसितुं पूर्वं द्रव्यपदार्थस्य खण्डनम्]

यत्तावच्चतुःसंख्यं पृथिव्यादिद्रव्यं परमाणुरूपं नित्यमुपवर्णितम्, तदसंगतम्, एकान्ताऽक्षणि-
कत्वे क्रम-यौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् तल्लक्षणं सत्त्वं ततो व्यावर्तते, ततश्च असत्त्वमेव तस्य ।१०
यदि च स्थूलकार्यद्रव्यकारणभूतानामणूनां तज्जनकैकस्वभावता तदा तत्कार्याणां सकृदेव सर्वेषामुत्प-
त्तिप्रसक्तिः अविकलकारणत्वात् । तथा च प्रयोगः—येऽविकलकारणास्ते सकृदेवोत्पद्यन्ते, यथा
समानोत्पाद्य यद्यपोऽङ्कुरादि, अविकलकारणाश्च परमाणुकार्यत्वेनाऽभिमता भावा इति स्वभावहेतुः ।
अविकलकारणस्याप्यनुत्पादे सर्वदाऽनुत्पत्तिप्रसक्तिः विशेषाभावात् इति विपर्यये बाधकं प्रमाणम् ।
स्यादेतत्, समवाय्यसमवायि-निमित्तभेदात् त्रिविधं कारणम्, यत्र हि कार्यं समवैति तत् समवा-१५
यिकारणम् यथा-द्व्यणुकस्य अणुद्वयम् । यच्च कार्यैकार्थसमवेतम् कार्यकारणैकार्थसमवेतं वा कार्य-
मुत्पादयति तद् असमवायि कारणम् यथा-पटावयविद्रव्यारम्भे तन्तुसंयोगः, पटसमवेतरूपाद्यारम्भे
पटोत्पादकतन्तुरूपादि च । शेषं तु उत्पादकं निमित्तकारणम् यथा—अदृष्टाऽऽकाशादि । तत्र संयो-
गादेरपेक्षणीयस्य असंनिधेरविकलकारणत्वमसिद्धम्, असदेतत्, संयोगादिनाऽनाधेयातिशयत्वात्

१-द्वातिंशु-मु० विना। २ पृ० ६५६ पं० ११।

३ प्रस्तुतमनेन सपूर्वपक्षं समग्रमपि वैशेषिकाभिमतद्रव्य-गुणादितत्त्वपरीक्षणवर्णनं अविकलतया तत्त्वसंग्रहपञ्जिकायां
वर्तते-पृ० १६५ का० ५४७—पृ० २७४ का० ८६६।

शेषं च क्वचित् क्वचित् शब्दसाम्येन क्वचिच्चार्थसाम्येनाऽपि महत्या अर्थसाम्यमहत्ती न्यायकुमुदचन्द्रोदये, प्रमेयकमलमा-
र्तण्डे स्याद्वादरत्नाकरे च वर्तते-लि० पृ० ११६ द्वि० पं० ३-पृ० १७४ द्वि० पं० १०। पृ० १५६ प्र० पं० ८-पृ० १८८
द्वि० पं० ११। पृ० ८३७ पं० २०-पृ० ९७० पं० १५।

४ "तत्र नित्यमणुरूपाणामसत्त्वमुपपादितम् । निःशेषवस्तुविषयक्षणभङ्गप्रसाधनात्" ॥
—तत्त्वसं० का० ५५१ पृ० १८१।

५ "नित्यत्वे सकलाः स्थूला भावेरन् सहैव हि । संयोगादि न चापेक्ष्यं तेषामस्त्यविशेषणः" ॥
—तत्त्वसं० का० ५५२ पृ० १८१।

६ बाधकं प्र-मु० आ० हा० वि०। "समग्रकारणस्याप्यनुत्पादे सर्वदैवानुत्पादप्रसङ्गो विशेषाभावादिति बाधकं
प्रमाणम्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १८६ पं० २०।

७ "ननु समवायि-असमवायि-निमित्तभेदात् त्रिविधं कारणं कार्यजन्मनि व्याप्रियते । यत्र हि कार्यं समवैति तद्
समवायि कारणम् यथा द्व्यणुकस्य अणुद्वयम् । यच्च कार्यैकार्थसमवेतं कार्यकारणैकार्थसमवेतं वा कार्यं समुत्पादयति तद्
असमवायि कारणम् यथा पटारम्भे तन्तुसंयोगः पटसमवेतरूपाद्यारम्भे पटोत्पादकतन्तुरूपादि च शेषं तु उत्पादकं
नैमित्तकारणम् यथा अदृष्टाकाशादि" इत्यादि—न्यायकुमुद० लि० पृ० ११८ प्र० पं० १२-द्वि० पं० १-२। प्रमेयक०
पृ० १५१ द्वि० पं० १५-।

८ "असमवेतं तु यद् यस्य कारणभावं प्रतिपद्यते तद् असमवायिकारणम् यथा अवयविद्रव्यारम्भेऽवयवसंयोग"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १८६ पं० २२।

९ "परिशेषं तु कारणं निमित्तकारणम् तद्यथा धर्मादय इत्यमेषां विभाग"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १८६ पं० २४।

रसविषयताप्रसक्तेः अविशेषात् । न चैवं अन्याकारस्य अन्यविषयत्वमस्यापन्नमिति तस्य गुणसंप्रसिद्धिः, यतः शुक्लादय एव श्यामादिरूपेण प्रतिभान्ति तज्ज्ञानस्य भ्रान्तत्वात् न पुनस्तद्व्यतिरिक्तस्य गुणिन-स्ततः सिद्धिर्भवेत् । यच्च 'कञ्चुकावच्छन्ने पुंसि 'पुमान्' इति ज्ञानमप्रत्यक्षम् अवयविविषयत्वात्तस्य' उक्तम्, तद् अप्रत्यक्षमेव न भवति; तत्प्रत्यक्षानुविद्धत्वात् प्रत्यक्षाकारत्वाच्च अपि [illegible] रूपादिर्महतिमात्र-

[illegible]

प्रत्यक्षेण ग्रहणे सति उत्तरकालं तद्गृह्यमाणेऽभिमन्यमानाम् 'वस्त्रम्' इति समुदायविषयं सांवृतं परमार्थतो निर्विषयमेव प्रत्ययमसंजानम् इत्यसिद्धमस्य प्रत्यक्षत्वम् । न चैतद् अनुमानम् पूर्वाप्रत्यक्षगृहीतवि-
१० षयत्वात् भ्रान्ति(लै)ङ्गिकत्वाच्च । तथात्र अभिभूतं किञ्चिद् रूपं विद्यते । न चाभिभूतशुक्लरूपस्य तदव-स्थायामभावे पीतवस्त्रावस्थायां पुनः शुक्लरूपानुपलब्धिः स्यादिति वक्तव्यम्, यतः अग्न्यादिसामग्री-प्रादुर्भूतभास्वररूपस्य लोहादेः पुनः श्यामादिरूपान्तरोत्पत्तियम् तथापि सामग्र्यन्तरात् शुक्लरूपो-त्पत्तेरविरोधात् । न च 'प्राक्तनमेवं रूपमभिभूतत्वात् तत्रानुपलब्धम् पश्चात् अभिभवाभावाद् उपलभ्यते' इत्यस्य प्रतिषेधेन 'रूपान्तरमेव प्राक्तनरूपविनाशेनोपजातमत्रोपलभ्यते' इति भवतोऽपि
१५ किं प्रमाणमिति वक्तव्यम्, अनुमानस्य सद्भावात् । तथाहि—यद् अपरित्यक्ताऽनभिभूतस्वभावं तन्न न परेणाऽभिभवः, यथा पूर्वावस्थायां तस्यैव अपरित्यक्ताऽनभिभूतस्वभावं चाभिभवावस्थायां रूपमिति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । परित्यक्ताऽनभिभूतस्वभावत्वाभ्युपगमेऽपि सिद्धमस्याऽन्यत्वम् स्वभाव-भेदस्य भावभेदलक्षणत्वात् अन्यथाऽतिप्रसङ्गात् ।

नैव च स्वतन्त्रेच्छामात्रभाविनः षष्ठ्यादिवचनभेदादेर्वास्तववस्तुगतभेदाऽव्यभिचारित्वम् येन ततो
२० गुण-गुणिनोर्भेदसिद्धिः स्यात् । तेन 'यद् यद्वत्यच्छिन्नम्' इत्यादिप्रयोगानुपपत्तिः । यदि तु वस्तुगत-भेदमन्तरेण षष्ठ्यादिवृत्तिर्न भवेत् 'स्वस्य भावः' 'षण्णां पदार्थानामस्तित्वम्', 'दाराः' 'सिकताः' इत्यादौ षष्ठ्यादेर्वृत्तिर्न स्यात् भावादेरत्र व्यतिरिक्तस्य तन्निबन्धनस्याभावात् । अथ सदुपलम्भकप्रमा-णविषयत्वं धर्मान्तरं षण्णामस्तित्वमिष्यत इति न हेतोर्व्यभिचारः, न, सप्तमपदार्थप्रसक्तेः षड्पदा-

---

१ "शुक्लादयस्तथा येषां इत्येवं चापि संभवेत् । तस्माद् भ्रान्तमिदं ज्ञानं कम्बुपीतादिबुद्धिवत्" ॥
—तत्त्वसं० का० ५६६ पृ० १९० ।

२ पृ० ६५८ पं० १५ ।

३ "कञ्चुकान्तर्गते पुंसि न ज्ञानं स्यानुमानिकम् । तद्धेतुसन्निवेशस्य कञ्चुकस्योपलम्भनात्" ॥
—तत्त्वसं० का० ५६७ पृ० १९० ।

४ "कषायकुङ्कुमादिभ्यो वस्त्रे रूपान्तरोदयः । पूर्वरूपविनाशे हि वासनः क्षणिकत्वतः" ॥
—तत्त्वसं० का० ५६८ पृ० १९१ ।

५ "नाप्येतदनुमानं पूर्वप्रत्यक्षगृहीतविषयत्वाल्लैङ्गिकत्वाच्च"— [illegible] प्र० पृ० [illegible] १० ।

६ "पुनर्जलादिसापेक्षात् तस्मादेवोपजायते । रूपाद् [illegible]
१९१ ।

प्राप्तत्वात्। किंच, यदि षण्णां पदार्थानामर्थक्रियासमर्थपदार्थस्वरूपं स्वतत्त्वं न स्यात् तदा शशशृङ्गरू-
पता तेषां भवेत् अर्थक्रियाऽसामर्थ्यात्, ततश्च कथं सदुपलम्भकप्रमाणगम्यता तेषाम्। अथ अर्थ-
क्रियासमर्थं रूपं तेषां विद्यते तदा ते तद्रूपा एव, भेदान्तरप्रतिक्षेपमात्रजिज्ञासायां 'तेषामस्तित्वम्'
इत्येवं यदि व्यपदेशं व्यतिरेकविभक्त्या समासादयन्ति तदा न कश्चिद् विरोधः। न हि तदव्यतिरिक्त-
५ मपि स्वरूपं बुद्ध्याऽपकृष्य ततो व्यतिरिक्तमिव अभिधीयमानं विरोधभाग् भवति, इच्छामात्रानुवि-
धायित्वाद् वाच उत्पाद्यकथाश्रयातिसुन्दरपदार्थवचनवत्।

भिन्नकर्तृकत्वाद्यनुमानमपि असंगतम्, यतो यदि अप्राप्तपटव्यपदेशेभ्यस्तन्तुभ्यः प्राक्तनावस्थेभ्यो
भेदः पटस्यात्र साध्यते तदा सिद्धसाध्यताप्रसक्तिः सर्वभावानां क्षणिकत्वेन तद्विलक्षणपटाख्यपदा-
र्थानुत्पादेऽपि प्रतिक्षणं भिन्नत्वात्। अथ पटावस्थायां ये तन्तवस्तेभ्यः पटस्य भेदः साध्यस्तदा हेतू-
१० नामसिद्धता न हि तदवस्थाभावितन्तुभ्यः पटस्य भेदाप्रसिद्धौ भिन्नकर्तृकत्वादयो धर्माः सिद्धि-
मासादयन्ति। न च तत्सिद्धिः इदानीमेव तत्सिद्धये साधनस्योपन्यासात्। न च 'तन्तवः' 'पटः'
इति च संज्ञाभेदात् पदार्थानां भेदसिद्धिः, संज्ञान्तरस्य प्रयोजनान्तरवशेनापि संकेतनात्। तथाहि-
दोषिकर्तृकास्तन्तवः शीतापनोदाद्यर्थाऽसमर्थाः तन्तुशब्दसमावेशभाजः, कुविन्दकर्तृका विशिष्टा-
वस्थाभाजः प्रावरणाद्यर्थक्रियासमर्थाः पटव्यपदेशसमावेशिनस्तदर्थक्रियाप्रतिपादनाय व्यवहारि-
१५ भिस्तथा तथ संकेतकरणात् अन्यथा गौरवाऽशक्ति-वैफल्यदोषप्रसङ्गात्। तथाहि—यदि यावन्तो
भावा विवक्षितैकार्थनिर्वर्तनसमर्थास्तेषु तावन्तः शब्दा निवेश्यन्ते तदा गौरवदोषः, न चैषाम-
साधारणं रूपं निर्देष्टुं शक्यमिति अशक्तिदोषः, उपेक्षितसामान्याकारेण निर्देशे परं 'पट' इत्येकैव
श्रुत्वा प्रतिपाद्यं एतम् न च किञ्चित् फलमस्य प्रत्येकं पृथगभिधानप्रयासस्य पश्याम इति वैफल्य-
दोषः। सामस्त्येन [illegible] सति [illegible] इत्येकार्थक्रियाकारिषु अनेकेषु एकशब्द-
२० संकेत उपायः [illegible] जिज्ञासायां 'जगत्' 'त्रिभुवन' 'विश्व' आदिशब्दवत्। एवम् [illegible]
संकेतितं व्यवहारार्थं [illegible] न वास्तवं तयोर्भेदं प्रसाधयति। विशिष्टावस्थाप्राप्तानां
[illegible] इन्द्रियग्राह्यत्वात् अतीन्द्रियत्वमसिद्धमिति न अवयव्यभावे प्रतिभासविरतिप्रसक्तिर्दूषणम्,
न हि सर्वदैव इन्द्रियातिक्रान्तस्वरूपाः परमाणवः क्षणिकवादिभिरभ्युपगम्यन्ते तेषां सर्वैक-

---

१ पृ० ६५९ पं० ७।

२ "[illegible] भेदः [illegible] ॥
[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ५९९-५६० पृ० १९०।

३-[illegible] "[illegible]" —[illegible] पृ० १९० पं० १०।

४ "[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ५६१-५६२ पृ० १९०।

५ "[illegible]"
—[illegible] पृ० १९० पं० १—

६ "[illegible]" —[illegible] पृ० १९० पं० १।

७ "[illegible]
[illegible]
[illegible]" —[illegible] पृ० १९० पं० ०-१०।

८ "[illegible]" —[illegible] पृ० १९० पं० ११

९ पृ० ६०० पं० ०० टि० ०।

१० "[illegible]
[illegible]"
—[illegible] पृ० १९०।

[illegible]। तथाहि–सर्वशब्दोऽनेकार्थविषय:, न च अवयवी नानात्मा इति कथं तत्र सर्वशब्दप्रयोगः [illegible] एकदेशावरणे सर्वावरणप्रसक्तिरित्युक्तेन? सत्यमेतत्; यतो य एव यादृशो भावो लोके प्रसिद्धः स एव सर्वद्भिरपि अवयविन्वेन कल्पिताः, तेन च 'सर्वं वस्त्रं रक्तम्' इत्यादिको लोके सर्वशब्दप्रयोगः प्रसिद्ध एवेति कथं तत्र तत्प्रयोगानुपपत्तिः? यद्यविवक्षायां रक्तादिशब्दप्रयोगो लोके तथापि [illegible] तत्प्रतीतिमनुसृत्य भवतां विरोधप्रतिपादनाय 'सर्व' आदिशब्दप्रयोगः क्रियते इति कथमस्यानुपपत्तिः? किञ्च, स्थूलस्य एकत्वमभ्युपगच्छतो भवत एव अयं दोषः [illegible] [illegible]। न च एककार्येषु तन्तुषु उपचारतः पटाभिधानप्रवृत्तेः 'सर्व' आदिशब्दप्रयोगानुपपत्तिरिति [illegible] न भवितव्यमिति वक्तव्यम्, एवं सति [illegible] बहुवचनप्रयोगापत्तेः। न हि [illegible] बहुषु एकवचनमुपपत्तिमत्। न च अवयविनां संख्यामाश्रित्य पटादिशब्दप्रयोगः [illegible] इति वाच्यम्, [illegible] [illegible] भेदाभेदः न व्यवस्थापयति। तथाहि–'रक्तं सर्वं वस्त्रम्' इत्यत्र [illegible] बुद्धि:-'न [illegible], किन्तु [illegible]' इति। किञ्च, भेदाभेदव्यवस्था [illegible] [illegible]। न च [illegible] कदाचिद् भेदाभेदावपीति [illegible] [illegible]।

[illegible]–"'[illegible] रागः' कुङ्कुमादिद्रव्येण संयोग उच्यते, न च [illegible] [illegible] [illegible] आवरणं युक्तम्" [ ] इति [illegible], [illegible] [illegible] प्रसज्यत् तथा हि कुङ्कुमादिना तत्र [illegible]

[illegible]

संयोगोऽव्याप्यवृत्तिर्भवेत्? अथ अव्याप्तमपि किञ्चिद् रूपं तत्रावशिष्टं तदा तयोर्भेदः व्याप्ताऽव्याप्तयोर्विरुद्धधर्माध्यासेन एकत्वस्याभावायोगात् । न च पृथुतरदेशावस्थानमेकस्य युक्तम् निरंशत्वात्, अन्यथा सर्वत्र स्थूलसूक्ष्मादिभेदो न स्यात् एकत्वेन अविशेषात् । न चावयवावयवारम्भाश्रितोऽसौ विशेषोऽवयवानाम् तथाभेदेऽपि अवयविनां निरंशतया परस्परं विशेषाभावात्, अवयवाल्पबहुत्वग्रहणकृते च स्थूलादिव्यवहारे अवयवमात्रमेव अभ्युपगतं दृश्यत्वेन स्यात् ५ स्थूलादिव्यतिरेकेण अन्यस्य अदृश्यमानत्वात् । किञ्च, अवयवाल्पबहुत्वकृते तथाभेदे अवयवा एव तथा तथा उत्पद्यमाना अल्पबहुतराः स्थूलसूक्ष्मादिव्यवस्थानिबन्धनं भविष्यन्ति किं तदारब्धावयविकल्पनया तस्य कदाचिदपि अदृष्टसामर्थ्यत्वात्? किञ्च, अव्याप्यवृत्तिः संयोग इति यदि 'सर्वं द्रव्यं न व्याप्नोति' इत्ययमर्थस्तदा द्रव्यस्य 'सर्व'शब्दाविषयत्वाभ्युपगमाद् अयुक्तः । अथ तदेकदेशावृत्तिः, तदसंगतम्, तस्य एकदेशासंभवात् । न च 'तदारम्भके अवयवे वर्तते' इत्यर्थप्रकल्पना, १० अवयवानामेव रक्तत्वात् तदवयविरूपस्य अरक्तत्वप्रसक्तेर्युगपद् रक्ताऽरक्तरूपद्वयोपलब्धिः प्रसज्येत। किञ्च, तदारम्भकोऽपि अवयवो यदि अवयविरूपस्तदा संयोगस्य अव्याप्यवृत्तितया तत्रापि एकदेशावृत्तित्वमिति तुल्यः पर्यनुयोगः । अथ अणुरूपस्तदा अणूनामतीन्द्रियत्वात् तदाश्रितः संयोगोऽप्यतीन्द्रिय एवेति न रक्तोपलम्भो भवेत् । न च यथा अङ्गुलिरूपस्य आश्रयोपलब्धावेवोपलब्धिर्व्याप्तिस्तथा संयोगस्य आश्रयोपलब्धावेवोपलब्धिर्न विद्यते इति अव्याप्यवृत्तिरसावुच्यते इति १५ वक्तव्यम्, संयोगस्यापि आश्रयानुपलब्धावनुपलब्धेः अन्यथा घट-पिशाचसंयोगस्यापि उपलब्धिः स्यात् । एवं च अङ्गुलिरूपवद् रागस्यापि अदृष्टाश्रयस्य अनुपलब्धेराश्रयोपलब्धावेवोपलब्धिरिति व्याप्यवृत्तिरसावपि स्यात् । अथ अरक्तेष्ववयवेषु समवेतस्य द्रव्यस्योपलब्धावपि न रागस्य संयोगस्वभावस्योपलब्धिरित्याश्रयोपलब्धौ नास्योपलब्धिरित्यव्याप्यवृत्तित्वम्, न, रक्तारक्तावयवसमवेतस्य अवयविन एकत्वात् रक्तेऽप्यवयवे रागस्य तद्द्वारेण अनुपलब्धिप्रसङ्गात् आश्रयोपलम्भेऽपि तस्या- २० ऽनुपलम्भात् । न चान्यः संयोगग्रहणोपायः आश्रयोपलम्भात् समस्ति ततो नैकरूपो विषयो युक्तः। अनेकरूपोऽपि अणुसंचयात्मक एव सामर्थ्यात् सिद्धः विद्यमानावयवस्य एकत्वायोगात् । ततः घटादीनां परमाणुरूपत्वाद् नीलादिः परमाणूनामाकारः सिद्धः स्थूलरूपस्यैकस्य अपरस्य विषयस्यासंभवात् । न च 'परमाणुः' इति व्यपदेशः स्थूलस्यैकस्याऽभावे अयुक्तः, कल्पितस्थूलापेक्षयाऽपि तद्व्यपदेशस्य संभवात् । ततो न स्थूलमेकं द्रव्यमवयवाऽनारब्धमपि घटते तदारब्धं तु सुतराम- २५ संभवि । तथा च-यद् अनेकम् न तद् एकद्रव्यानुगतम्, यथा घट-कुड्यादयः, अनेके च तन्त्वादयः इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः । यद्वा-यद् एकम् न तद् अनेकद्रव्याश्रितम्, यथा एकपरमाणुः, एकं च अवयविसंज्ञितं द्रव्यमिति व्यापकविरुद्धोपलब्धिप्रयोगः प्रसङ्गसाधनरूपः । प्रयोगद्वयेऽपि अवयविनोऽवयवेषु वृत्त्यनुपपत्तिर्विपर्यये बाधकं प्रमाणम् । सा च एकावयवक्रोडीकृतेन वा स्वभावेन

---

१ "तेषामवयवानामल्पबहुत्वग्रहणकृते विशेषेऽवयवमात्रमेवाभ्युपगतं स्यात् तत्रैव स्थूलादिव्यवहारात् ततश्चाणुमात्रमेव दृश्यत्वेनाभ्युपेतं स्यात् । स्थूलसूक्ष्मा(क्ष्म ?)व्यतिरेकेणान्यस्य(स्या ?)दृश्यमानत्वात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०० पं० ११-१३।

२-लब्धिव्या-वा० भा० । "साम्प्रतं यथा व्याप्तिरङ्गुलिरूपस्याश्रयोपलब्धावेवोपलब्धिरुच्यते"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०० पं० १९-२०।

३ पृ० ६५९ पं० १२ टि० ७।

४ "अविज्ञातार्थतत्त्वस्तु पिण्डमेकं च मन्यते । लोकस्तत्कल्पितापेक्षः परमाणुरिहोच्यते ॥
निमित्तनिरपेक्षा [illegible] चैवेयं तादृशि स्थिता । सङ्केतान्वयिनी यद्वन्निर्विकल्पेऽपीश्वरश्रुति " ॥
—तत्त्वसं० का० ६०३-६०४ पृ० २०१।

५ "एकावयव्यनुगता नैव तन्तु-करादयः । अनेकत्वात् यथा सिद्धाः कट-कुड्य-घटादयः ॥
यदि वाभिमतं द्रव्यं नानेकावयवाश्रितम् । एकत्वादणुवद् वृत्तेरयुक्तिर्बाधिका प्रमा" ॥
—तत्त्वसं० का० ६०५-६०६ पृ० २०१।

६ "तदेकवृत्तिभाजैव रूपेणावयवान्तरे । वर्तेत यदि वाऽन्येन न प्रकारान्तरं यतः ॥
तत्र तेनैव नान्यत्र वृत्तिरस्याववत्यते । तेन क्रोडीकृतत्वेन नान्यथा तत्र वृत्तिमत्" ॥
—तत्त्वसं० का० ६०७-६०८ पृ० २०१-२०२।

अवयवी अवयवान्तरे वर्तते, उत स्वभावान्तरेण प्रकारान्तरासंभवात्? यदि तेनैव इति पक्षः, स न युक्तः; तस्य तेनैव अवयवेन क्रोडीकृतत्वात् अन्यत्र वर्तितुमशक्तेः, शक्तौ वा तत्राऽवयवे तस्य सर्वात्मना वृत्त्यनुपपत्तिः अपरस्वभावाभावाच्च तस्य अपरावयववृत्तित्वाभावः, तद्भावे वा एकत्वहानिप्रसक्तेः। तथाहि—यत् एकक्रोडीकृतम् न तत् तदैव अन्यत्र प्रवर्तते, यथा एकभाजनक्रोडी-
५ कृतमाम्रादि न तदैव भाजनान्तरमध्यमध्यास्ते, एकावयवक्रोडीकृतं च अवयविस्वरूपम् इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः। एकावयवसंबद्धस्वभावस्य अनेकावयवान्तरसंबद्धस्वभावाऽनुपगमे तद्व्यवस्थानामेकदेशानामप्रसक्तिर्विपर्यये बाधकं प्रमाणम्। एकदेशानां च ऐकात्म्यम् अविभक्तत्वात्, विभक्तरूपावस्थितौ च एकदेशत्वं न स्यात्। अथ स्वभावान्तरेण अवयवान्तरे वृत्तिस्तदा एकोऽनेकवृत्तिर्न स्यात् स्वभावभेदात्मकत्वाद् वस्तुभेदस्य अन्यथा तदयोगात्।

१० "'अवयवी अवयवेषु वर्तते' इति समवायरूपा प्रतिपद्यते" [ ] इति यदुक्तं तदप्ययुक्तमेव 'किमेकावयवसमवेतेनैव स्वभावेन अवयवान्तरेषु वर्तते, उत अन्येन' इति विकल्पः [illegible] एकैकदेशासम्बन्धानुपपत्तेऽपि वृत्त्यनुपपत्तिर्युक्ता, तदुपगमेऽपि वा दूषणम्। तथाहि—यदि सर्वात्मना प्रत्येकमवयवेषु अवयवी वर्तेत तदा यावन्तोऽवयवास्तावन्त एव

---

१ "[illegible] हि यथा [illegible] एकक्रोडीकृतं [illegible] तथाऽपरम्" ॥
—तत्त्वसं० का० ६०९ पृ० २०१।

२ "[illegible]
[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ६१०—६११ पृ० २०१।

३ "[illegible]

"[illegible]

४ "[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ६१३ पृ० २०१।

५ "[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ६१२ पृ० २०१।

[illegible]

यवयविनः स्युः रूपाद्यभेदमन्तरेण अवयवत्वं तस्य सर्वात्मना वृत्त्यनुपपत्तेः । एवं च युगपदनेककुण्डादिष्ववस्थितबिल्वादिवद् अनेकावयव्युपलब्धिप्रसक्तिः । अथ एकदेशेन असौ तेषु वर्तते इति तदाऽपि अनवस्थाप्रसक्तिः तेषु अपि अवयवेषु वृत्तौ अपरैकदेशवृत्तिकल्पनया । अथ यैरेकदेशैरवयवी अवयवेषु वर्तते ते तस्य आत्मभूता इति नानवस्था तर्हि तद्वत् पाण्यादयोऽपि अवयवास्तस्य आत्मभूताः किं नाऽभ्युपगम्यन्ते? तथाऽभ्युपगमे चापरावयविप्रकल्पना न स्यात् अवयवप्रचया-५ मवन्धात् तस्य ।

नन्विदं प्रसङ्गसाधनम्, स्वतन्त्रसाधनं वा? स्वतन्त्रसाधने अवयविनोऽप्रसिद्धेराश्रयासिद्धत्वादिदोषः । न च वृत्त्या परस्य सत्त्वं व्याप्तम् येन तन्निवृत्तौ तत्सत्त्वव्यावृत्तिर्भवेत् वृत्त्यभावेऽपि रूपादेः परेण सत्त्वाभ्युपगमात् । एकदेशेन सर्वात्मना वा अवयविनो वृत्तिप्रतिषेधे विशेषप्रतिषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञानलक्षणत्वात् प्रकारान्तरेण वृत्तिरभ्युपगता स्यात् । यथा च वृत्तिद्वयमुपलम्भादभ्युप-१० गम्यते तथा अवयविनि वृत्तेरुपलम्भात् प्रकारान्तरेण असौ किं नाभ्युपगम्यते? वृत्तिश्च समवायः तस्य सर्वत्रैकत्वात् निरवयवत्वाच्च कृत्स्नैकदेशशब्दाविषयत्वम् । अथ प्रसङ्गसाधनम् तदपि अवयविनः वृत्तेश्च अनुपलम्भेऽयुक्तम् । न च परस्य भवतो वा कार्त्स्न्यैकदेशाभ्यामनेकस्मिन् एकस्य वृत्तिरुपलब्धिगोचरः यस्या असंभवाद् अवयविद्रव्यमसत् स्यात् । अथ एवंभूता वृत्तिः क्वचिद् उपलब्धा तदा अवयविन्यपि सा भविष्यतीति न तत्प्रतिषेधो युक्तः, वृत्तिमात्रस्य चानुपलम्भे१५ 'एकदेशेन सर्वात्मना वा' इति विशेषप्रतिषेधोऽनुपपन्नः सिद्धे धर्मिणि तस्योपपत्तेः धर्म्यसिद्धौ च तस्यैव प्रतिषेधो विधेयः तेनैतावदेव वक्तव्यम् 'वृत्तिरेव नास्ति' इति, न चैतदपि युक्तम्; अध्यक्षत एव अवयवेषु अवयविनो वृत्तिसिद्धेः । तथाहि—इन्द्रियव्यापारे सति 'इह तन्तुषु पटः' इति बुद्धिरबाधितरूपोपजायत एव । न च अबाधितरूपाया अस्या अप्रत्यक्षत्वं युक्तम् रूपादिस्वलक्षणग्राहिणोऽप्यध्यक्षस्य अनध्यक्षताप्रसक्तेः—अविशेषात्, असदेतत्; यतो नेदमस्माभिः स्वतन्त्रसाधनमभिधी-२० यते किन्तु प्रसङ्गसाधनम्, तस्य च 'व्याप्यव्यापकभावसिद्धौ व्याप्याभ्युपगमो व्यापकाभ्युपगमनान्तरीयकः व्यापकनिवृत्तिर्वा व्याप्यनिवृत्त्यविनाभाविनी' इत्येतत्प्रदर्शनफलस्य प्रवृत्तिर्युक्तैव । व्याप्यव्यापकभावसिद्धिश्चात्र लोकप्रसिद्धैव भवताऽभ्युपगमनीया । लोकश्च कस्यचित् सर्वात्मना वृत्तिं कुत्रचिदभ्युपगच्छति, यथा-श्रीफलस्य कुण्डादौ, क्वचिच्च कस्यचिद् एकदेशेन, यथा-अनेकपीठाधिशायितस्य वंशादेः । यत्र च प्रकारद्वयं वृत्तेर्व्यावृत्तं तत्र वृत्तेरभाव एव कथं न व्याप्तिसिद्धिर्येनात्र२५ प्रसङ्गसाधनस्यावकाशो न स्यात्? निरस्ता च प्रागेव अनेकस्मिन् एकस्य वृत्तिः न पुनः प्रतिपाद्यते । यच्च अध्यक्षत एव वृत्तिः सिद्धा 'इह इदम्' इति प्रत्ययानुसारिबुद्ध्युत्पत्तेः, तदप्यसंगतम् । यतो न 'इह तन्तुषु पटः' इतिविकल्पिकाऽपि लोके बुद्धिः प्रवर्तते किं तर्हि? 'पटे तन्तवः' इति । न चाऽध्यक्षे तन्तुसमवेतं व्यतिरिक्तं पटादिद्रव्यमवभासते । न च विवेकेन अप्रतिभासमानस्य 'इह

१-मे वाप-भा० भा० । "एवं हि सति एकोऽवयवी न स्याद् अवयवप्रचयमात्ररूपत्वात् तस्य तथा च सति रूपाद्यादिसमुदायमात्रात्मकं एवास्तां वस्तु किमपरैस्तस्य स्वात्मभूतैरवयवैः परिकल्पितैः"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०१ पं० १८-।

२ " 'कात्स्न्येन' इत्यादिना शङ्करस्वामिनः परिहारमाशङ्कते—

कात्स्न्येन प्रसङ्गेन साधनं यत् प्रवर्तते । स्वयं तदुपलब्धौ हि सत्यां संगच्छते न तु ॥
न च कार्त्स्न्यैकदेशाभ्यां वृत्तिः क्वचन लक्षिता । यस्या असंभवात् द्रव्यमसत् स्यादवयव्यपि च ॥
दृष्टौ वा क्वचिदेतस्या द्रव्यादावनिवारणम् । अथ तस्मिन्नदृष्टौ तु भेदे प्रश्नो न युज्यते ॥
एतावत् तु भवेद् वाच्यं वृत्तिर्नास्तीति तच्च न । युक्तं प्रत्यक्षतः सिद्धेरिहेदमिति बुद्धितः ॥
प्रत्यक्षं न तदिष्टं चेद् बाधकं किंचिदुच्यताम् । रूपादिचेतसोऽपि स्यान्नैव प्रत्यक्षताऽन्यथा" ॥

—तत्त्वसं० का० ६१४-६१८ पृ० २०३-२०४ ।

३-द्विदोषः पृ० भा० । "स्यादेतत्—कात्स्न्येन प्रसङ्गमुखेन वा यत् साधनं क्रियते तत् स्वयमुपलब्धौ सत्यां संगच्छते अन्यथा असिद्धता दोषः स्यात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०४ पं० ७-८ ।

४ "तदत्र वृत्तिर्नास्तीति प्रागेवेह साधितम् । इहेत्यपि न च ज्ञानं तद्रूपाप्रतिभासनात्" ॥

—तत्त्वसं० का० ६१९ पृ० २०४ ।

५ पृ० ६६६ पं० ११ । ६ प्र० पृ० पं० १८ ।

इदं वर्तते' इति बुद्धिविषयता न हि विवेकेन अप्रतिभासमाने कुण्डादौ बदरादिके 'इह कुण्डे बदराणि' इति प्रत्ययः प्रादुर्भवति । यदपि 'कार्त्स्न्यैकदेशाभ्यां वृत्तिर्न क्वचिदुपलक्षिता' इति, तदप्यसंगतम्; बदरादेः कुण्डादौ सर्वात्मना, वंशादेरेकदेशेन स्तम्भादौ वृत्तेरुपलक्षणात् । यदपि उक्तमुद्द्योतकरेण—"एकस्मिन् अवयविनि कृत्स्नैकदेशशब्दप्रवृत्त्यसंभवात् अयुक्तोऽयं प्रश्नः—'किमेक-
५ देशेन वर्तते, अथ कृत्स्नो वर्तते' इति । 'कृत्स्नम्' इति हि सर्वैकस्य अशेषाभिधानम्, 'एकदेशः' इति च अनेकत्वे सति कस्यचिदभिधानम्, ताविमौ कृत्स्नैकदेशशब्दौ एकस्मिन्नवयविनि अनुपपन्नौ" [२-१-३२ न्यायवा०] इति, तदपि प्रत्युक्तं प्राक्तनन्यायेनैव । तथा च 'कृत्स्नः पटः कुण्डे वर्तते, एकदेशेन वा' इत्येवं पटादिषु कृत्स्नैकदेशशब्दप्रवृत्तिर्दृश्यत एव । न चेयमुपचरिता, अस्खलद्वृत्तित्वात् । न च शब्दप्रवृत्त्यनुपपत्तिमात्रप्रेरणया वस्त्वर्थस्य प्रतिषेधः शक्यते विधातुम्, तत्र तत्कल्पना-
१० प्रवृत्तावपि व्याप्त्यव्याप्तिशब्दयोः प्रवृत्त्युपपत्तेः । तथाहि—'अवयवी अवयवेषु वर्तमानः प्रत्यवयवं किं व्याप्त्या वर्तते, उत अव्याप्त्या' इत्येवं विवक्षितार्थाभिधाने न कंचिद् दोषमुत्पश्यामः । तत्र नित्या-

नित्यरूपपृथिव्यादिचतुःसंख्यं द्रव्यमुपपत्तिमत् ।

आकाशस्यैकनित्यद्रव्यप्रसिद्धये शब्दं गुणत्वाश्रितत्वेन प्रतिपादयन्ति । तथा च परेषां प्रयोगः—ये विनाशित्वोत्पत्तिमत्त्वादिधर्माध्यासिताः ते क्वचिद् आश्रिताः, यथा घटादयः, तथा च
१५ शब्दाः, तस्मादेभिराधारैः क्वचिद् भवितव्यम्, यश्चैषामाश्रयः स पारिशेष्याद् आकाशः । तथाहि—भावे शब्दः पृथिव्यादीनां वायुपर्यन्तानां गुणः, प्रत्यक्षत्वे सति अकारणगुणपूर्वकत्वात्, ये हि पृथिव्यादीनां चतुर्णां गुणास्ते बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वे सति अकारणगुणपूर्वका न भवन्ति, यथा रूपादयः, न च तथा शब्दः । परम् 'अयावद्द्रव्यभावित्वात्' 'आश्रयाद् अन्यत्रोपलब्धेश्च' रूपादयो हि नैवं दृश्यन्ते । एतेषां तु यथोक्तविपरीता गुणा उपलब्धाः । 'प्रत्यक्षत्वे सति' इति च
२० विशेषणं परमाणुगतैः पाकजैः अनैकान्तिकत्वं मा भूत् इत्युपात्तम् । न च आत्मगुणः अहंकारेण विभक्तग्रहणात् बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वात् आत्मान्तरग्राह्यत्वाच्च, बुद्ध्यादीनामात्मगुणानां तद्वैपरीत्योपलब्धेः । न दिक्-काल-मनसाम् श्रोत्रग्राह्यत्वात् । अतः पारिशेष्याद् गुणो भूत्वा आकाशस्य लिङ्गम् । आकाशं च शब्दलिङ्गाविशेषात् विशेषलिङ्गाभावाच्च एकम् विभु च सर्वत्रोपलभ्यमानगुणत्वात् समवायित्वे सति अनाश्रितत्वाच्च द्रव्यम्, अकारणत्वाच्च नित्यम् ।
२५ परापरव्यतिकर-यौगपद्यायौगपद्य-चिर-क्षिप्रप्रत्ययलिङ्गः कालो द्रव्यान्तरम् । तथाहि—

---

१ पृ० ६६० पं० ११ तथा पं० ९ टि० ३ ।
२ [illegible] प्रवर्तते । [illegible] वृत्तिः [illegible] वा तदात्मनैव वा ॥ [illegible]

[illegible]

'परः पिता' 'अपरः पुत्रः' 'युगपत्' 'अयुगपत्' वा तथा, 'चिरम्' 'क्षिप्रम्' वा 'कृतम्', 'करिष्यते' वा इति यत् पराऽपरादिज्ञानम् तत् आदित्यादिक्रिया-द्रव्यव्यतिरिक्तपदार्थनिबन्धनम्, तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्, घटादिप्रत्ययवत् । योऽस्य हेतुः स पारिशेष्यात् कालः । यतः न तावत् पराऽपरादिप्रत्ययः दिग्देशकृतोऽयम्, स्थविरे अपरदिग्भागावस्थितेऽपि 'परोऽयम्' इति प्रत्ययोत्पत्तेः । तथा, यूनि परदिग्भागावस्थितेऽपि 'अपरोऽयम्' इति ज्ञानप्रादुर्भावात् । न च वली-पलितादिकृतोऽयं ५ प्रत्ययः, तत्कृतप्रत्ययवैलक्षण्येन उत्पत्तेः । नापि क्रियानिर्वर्तितः, तत्प्रतिभावितज्ञानवैलक्षण्येन संवेदनात् । तथा च सूत्रम्—"अपरस्मिन् परं युगपद् अयुगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि" [वैशेषिकद० २-२-६] इति । आकाशवदेव अस्यापि विभुत्व-नित्यत्वैकत्वादयो धर्मा अवगन्तव्याः ।

दिगपि एकत्वादिधर्मोपेतं द्रव्यं प्रमाणतः सिद्धम् । तथाहि-मूर्तेष्वेव द्रव्येषु मूर्तं द्रव्यमवधिं कृत्वा 'इदमस्मात् पूर्वेण दक्षिणेन पश्चिमेन उत्तरेण पूर्वदक्षिणेन दक्षिणापरेण अपरोत्तरेण उत्तरपूर्वेण १० अधस्तात् उपरिष्टात्' अमी दश प्रत्यया यतो भवन्ति सा दिग् इति । तथा च सूत्रम्—"'अत इदम्' इति यतस्तद् दिशो लिङ्गम्" [वैशेषिकद० २-२-१०] इति । एते हि विशेषप्रत्यया न आकस्मिकाः संभवन्ति । न च परस्परापेक्षमूर्तद्रव्यनिमित्ताः, इतरेतराश्रयत्वेन उभयप्रत्ययाभावप्रसक्तेः । ततोऽन्यनिमित्तोत्पादत्वासंभवाद् एते दिशो लिङ्गभूताः । दिशश्च विभुत्वैकत्व-नित्यत्वादयो धर्माः कालवद् अवगन्तव्याः । एतस्याश्च एकत्वेऽपि प्राच्यादिभेदेन नानात्वं कार्यविशेषाद् व्यवस्थितम् । १५ प्रयोगश्चात्र-यदेतत् पूर्वाऽपरादिज्ञानम् तद् मूर्तद्रव्यव्यतिरिक्तपदार्थनिबन्धनम्, तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्, सुखादिज्ञानवत् इति ।

आत्मद्रव्यस्य च विभुत्वादिधर्मोपेतस्य पराऽभ्युपगतस्य प्रागेव प्रतिषेधः कृतः इति न तत्पूर्वपक्षः पुनः प्रदर्श्यते ।

मनोद्रव्यस्य च युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्लिङ्गम् । तथा च सूत्रम्—"युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो २० लिङ्गम्" [न्यायद० १-१-१६] इति । अनेकेन्द्रियार्थसन्निधाने सत्यपि एकदा क्रमेण ज्ञानोत्पत्त्युप-

---

१ अपरं परं आ० हा० वि० । अपरमपरं बा० बा० ।

"तथा च सूत्रम्—अपरे परं युगपद्युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०६ पं० २० ।

"तथा सूत्रम्—अपरस्मिन् परं युगचिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि"—न्यायकु० लि० पृ० ११९ द्वि० पं० १२ ।

"तथा च सूत्रम्—अपरस्मिन् परं युगपद् अयुगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि"—प्रमेयक० पृ० १६९ प्र० पं० ७ ।

गूजराती प्रेस-बनारससंस्कृतसिरीजमुद्रितयोर्वैशेषिकदर्शनसंस्करणयोः चौखम्बासंस्कृतसिरीजगते च वैशेषिकसूत्रपाठे समान एव पाठो मुद्रितो दृश्यते । यथा—"अपरस्मिन्परं युगचिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि"-१-२-६ । गूजरातीप्रेसप्रकाशितानि प्रशस्तपाद-विवृति-भाष्याण्यपि तमेव पाठमनुसरन्ति । तत्र च पाठान्तरसूचिका टिप्पणी इत्थं दृश्यते—"बॉम्बेरायलएशियाटिकसोसाइटीसंग्रहस्थसंप्रहालयस्थलिखितप्राचीनपुस्तके तु 'अपरस्मिन् परम्' इति पाठः तत्र उपलभ्यते । उपस्कारे च 'अपरस्मिन् परम्' इत्यनेन 'परस्मिन् परम्' इत्यपि ग्राह्यमिति"—गू० वै० पृ० १८ ।

२ "पूर्वापरादिबुद्धिभ्यो दिगेवमनुमीयते ।"—तत्त्वसं० का० ६२५ पृ० २०६ ।

३ "तथा च सूत्रम्—अत इदमिति यतस्तद् दिशो लिङ्गम्-इति"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०७ पं० ३ ।

"तथा च सूत्रम्—अत इदमिति यतस्तद् दिशो लिङ्गम्"—न्यायकु० लि० पृ० १४२ प्र० पं० १२ । प्रमेयक० पृ० १५० प्र० पं० ११ ।

गूजरातीप्रेस-बनारससंस्कृतसिरीज-चौखम्बासिरीजस्थेषु संस्करणेषु तु "अत इदमिति यतस्तद् दिश्यं लिङ्गम्" इति मुद्रितं दृश्यते ।

४ पृ० ११४ पं० ३१ ।

५ "क्रमेण ज्ञानजन्मा च मनसोऽनुमितिर्मता ॥

चक्षुरादिविभिन्नं च कारणं समपेक्षते । क्रमेण जन्मा रूपादिप्रज्ञितो रूपादिवत्" ॥

—तत्त्वसं० का० ६२५-६२६ पृ० २०६ ।

६ "तथा च सूत्रम्—युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्-इति—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २०७ पं० १२ ।

एतस्य न्यायदर्शनीयसूत्रस्य भाष्यम्, वार्तिकम्, न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका चानुसन्धेया ।

मनोनिरूपणपरं प्रशस्तपादभाष्यम् तट्टीकाद्वयमपि चात्रावबोद्धव्या—प्रशस्त० क० पृ० ८९-९४ ।

लम्भाद् अनुमीयते इन्द्रियार्थव्यतिरिक्तं हेत्वन्तरमस्ति इति यत्सन्निधानाऽसन्निधानाभ्यां ज्ञानस्य उत्पत्त्यनुत्पत्ती भवतः । तथा च प्रयोगः—रूपाद्युपलब्धिः आत्मग्राह्येन्द्रियार्थव्यतिरिक्तहेत्वन्तरापेक्षा, क्रमेण उपजायमानत्वात्, रथादिवत् ।

अत्र प्रतिविधीयते-यदि सामान्येन आश्रितत्वमात्रं शब्दानां साध्यते तदा सिद्धसाध्यता तेषां
५ भूतकार्यतया तदाश्रितत्वात् कार्यस्य कारणप्रतिबद्धात्मलाभतया तदाश्रितत्वाभ्युपगमात् । अथ एक-नित्याऽमूर्त-विभुद्रव्यसमवेतत्वेन एषामाश्रितत्वं साध्यते तदा तथाभूतसाध्यान्वितत्वस्य दृष्टान्ते हेतोरभावात् अनैकान्तिकता हेतोः, प्रतिज्ञायाश्च अनुमानविरोधित्वम् । तथाहि-यदि नित्यैकव्यापिनभोद्रव्यसमवेताः शब्दा भवेयुस्तदा एकदोत्पन्नानेकशब्दवद् अन्यकाला अपि ते तदैव स्युः अविकलकारणत्वात् एकाश्रयत्वाच्च । न च सहकार्यपेक्षा नित्यस्य संभवति इति प्रतिपादितम् ।
१० नापि समवायित्वमनुपकारिणो युक्तम् अतिप्रसङ्गात् । ततोऽक्रमभावित्वप्रसङ्गो व्यवस्थितः । तत्कारणस्य नित्यत्वे व्यापित्वे च शब्दानां सर्वपुरुषैर्ग्रहणप्रसङ्गः । तथाहि-आकाशात्मकं श्रोत्रम् आकाशं च एकमेव इति तत्प्राप्तानां सर्वेषामपि श्रवणं स्यात् । न च निरवयवाकाशे अयं विभागः-'इदमास्मीयं श्रोत्रम्' 'इदं च परकीयम्' इति । अथ यदीयधर्माऽधर्माभिसंस्कृतकर्णशष्कुल्यवरुद्धं नभः तत् तस्य श्रोत्रमिति विभागः, अत एव नासिकादिरन्ध्रान्तरेण न शब्दोपलम्भः संजायते,
१५ तत्कर्णशष्कुलीविघाताद् बाधिर्यादिकं च व्यवस्थाप्यते इति, असदेतत्; अनंशस्य नभस एवंविधविभागानुपपत्तेः । न च पारमार्थिकविभागनिष्पाद्यं फलं परिकल्पितावयवविभागो निर्वर्तयितुं क्षमः अतिप्रसङ्गात् अन्यथा मलयजरसादिकमपि पावकप्रकल्पनया प्लोषादिकार्यं विदध्यात् । न च कल्पिततदवयववशादपि 'प्रतिनियतशब्दोपलम्भदर्शनान्नायं दोषः,' शब्दोपलम्भकार्यस्य अन्यथा सिद्धत्वात् । न च 'संयोगस्य अव्याप्यवृत्तित्वकृता आकाशस्य देशाः' इति व्यपदेशः, प्रागेव अस्य
२० प्रतिषिद्धत्वात् । अपि च, अनल-कर्णशष्कुल्यादयोऽपि समानदेशाः स्युः अभिन्नैकनभःसंसर्गित्वात् । तथाहि-येन एको वियत्स्वभावेन संयुक्तस्तेनैव अपरोऽपीति तद्देशभावी सोऽपि स्यात् तत्संयुक्तस्वभावावियत्संसर्गित्वात् तद्देशावस्थितानलवत् । शब्दानामपि अत एव एकदेशत्वात् एकोपलम्भे सर्वोपलब्धिश्च स्यात् । दूरासन्नादिव्यवस्थायिता तु भावानां प्रतीतिगोचरा विरोधिनी च भवेत् ।

२५ दिक्-कालसाधनप्रयोगेष्वपि एते दोषाः-सामान्येन साधने सिद्धसाध्यता । विशेषसाधने हेतोरन्वयासिद्धिः अनुमानबाधितत्वं च प्रतिज्ञायाः इति-समानाः । तथाहि-पूर्वापरोत्पन्नपदार्थविषयपूर्वापरशब्दसंकेतवशोद्भूतसंस्कारनिबन्धनत्वात् प्रकृतप्रत्ययस्य कारणमात्रे साध्ये कथं न सिद्धसाध्यता ? विशेषे च कथं नान्वयासिद्धिः ? अनुमानबाधा च प्रतिज्ञायाः पूर्ववद् भावनीया । अत एव नेतरेतराश्रयदोषोऽपि पूर्वपक्षोदितो विशिष्टपदार्थसंकेतप्रभवत्वेऽस्य प्रत्ययस्य । किञ्च,
३० निरंशैकदिक्-कालाख्यपदार्थनिमित्तत्वं परापरादिप्रत्ययस्य प्रसाधयितुमभ्युपगतम्, तथायुक्तम्,

१ "उपात्तादिमहाभूतहेतुताऽङ्गीकृतैर्ध्वनेः । सिद्धा एवाश्रिताः शब्दास्तेषिद्धसाधनम्" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ६१७ पृ॰ २०७ ।

२ "एकनित्यविभुव्योमसमवायस्तु सिध्यति । नैषामन्वयवैकल्यात् क्रमाद्यासिततया" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ६१८ पृ॰ २०७ ।

३ "काल-दिक्साधनयोरपि सामान्येन सिद्धसाध्यता विशेषेणान्वयासिद्धिर्हेतोः प्रतिज्ञायाश्च अनुमानबाधेति" -
—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ २०८ पं॰ २१ ।

४ प्र॰ पृ॰ पं॰ ४-।

५ "दिक्पूर्वापरसंकेतसंस्कारनिबन्धनम् । परापरादिविज्ञानं न कालाद् दिशश्च तत् ॥
निरंशैकस्वभावत्वात् पौर्वापर्यासंभवः । तयोः संबन्धिभेदाद्भेदे तौ निष्फलौ ननु" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ६२९-६३० पृ॰ २०८ ।

६ पृ॰ ६६९ पं॰ ३१ ।

७ परादिप्र-प्रां॰ ब॰ बा॰ । "परापरादिप्रत्ययस्य निरंशैकदिक्कालाख्यपदार्थनिबन्धनत्वं साधयितुमिष्टम्"
—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ २०९ पं॰ ४-५ ।

स्वाकारानुकारिप्रत्ययजनकस्य तद्विषयत्वात् निरंशस्य च पौर्वापर्यादिविभागाभावतस्तदाभूतप्रत्ययो-
त्पादकत्वासंभवात्। तथाभूतप्रत्ययाद् विपरीतार्थसिद्धेः इष्टविपर्ययसाधनाद् विरुद्धश्चायं हेतुः स्यात्।
अथ बाह्याऽऽध्यात्मिकभावपौर्वापर्यनिबन्धनस्य दिक्-कालयोः पौर्वापर्यव्यवहारस्य साधनाद् हेतो-
र्विरुद्धता। नन्वेवं दिक्-कालपरिकल्पना व्यर्था तस्याभ्यामभिमतस्य कार्यस्य बाह्याऽऽध्यात्मिकैः
संबन्धिभिरेव निर्वर्तितत्वात्। तथाहि-दिक् पूर्वापरादिव्यवहारहेतुरिष्यते कालश्च पूर्वापरक्षण-लव-५
निमेष-कला-मुहूर्त-प्रहर-दिवस-अहोरात्र-पक्ष-मास-ऋतु-अयन-संवत्सरादिव्यवहारनिमित्तो-
ऽभ्युपगतः, अयं च स्वरूपभेदः स्वात्मनि तयोः समस्तोऽप्यसंभवी तत्संबन्धिषु पुनर्भावेषु विद्य-
मानश्च प्रत्ययहेतुरिति व्यर्था तत्प्रकल्पना। अथ तत्संबन्धिष्वपि अयं भेदः अपरदिगादिभेद-
निमित्तस्तर्हि तत्रापि एवम् इति अनवस्थाप्रसक्तिः। अथ पदार्थेषु पूर्वापरभेदः कालनिमित्तः ननु
कालोऽप्यसौ न स्वतः इति अपरकालनिमित्तो यद्यभ्युपगम्यते तदा अनवस्था। अथ पदार्थभेद-१०
निमित्तस्तदा इतरेतराश्रयप्रसङ्गः। अथ तत्र स्वत एव अयं भेदः पदार्थेष्वपि स्वत एव अयं किं
नाभ्युपगम्यते? ततश्च पुनरपि दिक्-कालप्रकल्पनं व्यर्थम्।

अतःसाधनेऽपि हेतौ कारणमात्रे साध्ये सिद्धसाध्यता [illegible] चक्षुरादिज्ञाननिमित्तस्य
कारणमात्रस्येष्टेः। विशेषेण तु नित्यैकमनःसाधने अनन्वयदोषः प्रतिज्ञायाश्च अनुमानबाधा इष्ट-
विपर्ययसाधनाद् विरुद्धश्च हेतुः इति दोषाः पूर्ववद् वाच्याः। चक्षुरादिज्ञाननिमित्ताऽभिमतस्य १५
सापेक्षत्वस्य साधनाद् विरुद्धता प्रकटैव अन्यथा हि अत्रापि नित्यत्वाभ्युपगमे [illegible]
अमोघसिद्धिर्विरुद्धैव भवेत्। तत्र पृथिव्यादेर्मनःपर्यन्तस्य द्रव्यत्वस्य प्रमाणतः सिद्धिः। अतः
'पृथिव्यादीनि द्रव्याणि इतरेभ्यो भिद्यन्ते, द्रव्यत्वाभिसंबन्धात्' इत्यादिहेतुप्रयोगोऽयुक्त एव,
साध्यरूपासिद्धौ हेतोराश्रयासिद्धत्वदोषात्, स्वरूपासिद्धश्च अयं हेतुः द्रव्यत्वाभिसंबन्धस्य समवाय-
लक्षणस्य असिद्धेः, विशेषणासिद्धश्च द्रव्यत्वसामान्यस्य निषिद्धत्वात् [illegible]। न चात्र १०
अन्वयः सिद्धः, साधर्म्यदृष्टान्तस्य अभावात्। न च अन्वयाभावे केवलव्यतिरेकी हेतुर्गमकः, सर्व-
[illegible] सर्वत्र साध्याभावात् साधनस्य व्यावृत्त्यसिद्धेः।
"'साध्यसद्भावे एव सर्वत्र साधनसद्भावः' इत्येवंभूतान्वयाऽप्रसिद्धौ 'साध्याभावे सर्वत्र साधनस्य
अभावः' इति स्वप्रकारेण व्यतिरेकनिश्चयाभावात्" [ ] इत्यादेर्न्यायस्य अन्यत्र
प्रतिपादितत्वात्। येऽपि 'नवैव द्रव्याणि' इत्यादिप्रयोगप्रतिपादनम्, [illegible] १५
सिद्धौ तत्संख्यासिद्धेर्दूरापास्तत्वात्। न च [illegible]
हेतुलक्षणस्य अनुपपत्तेः। अत एव अन्योन्यव्यावृत्त्यादिविशेषणतानुपपत्तिः विशेष्याभावे विशेषण-
व्याप्त्यसंभवात्। 'न्यूनाधिक-' इत्याद्यपि तद्विशेषकव्यवच्छेदनम्, प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-
दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां [illegible]
[illegible] षट्पदार्थाधिकानाम् [illegible] च [illegible]। न च १०

१ "तदपि-क्षण-पूर्वापर[illegible]हेतुरिष्यते"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० १०२ पं० ११।

२ "चक्षुरादिरिति तु मनोऽस्माभिरपीष्यते। [illegible]" ।
—तत्त्वसं० श्लो० ६३१ पृ० २०२।

३ "सिद्धे तु [illegible]
[illegible]" ।
—तत्त्वसं० [illegible]

[illegible]

पदार्थषोडशकस्य षट्स्वेव अन्तर्भावात् तमश्छायादीनां च तेजोऽभावरूपत्वात् न तदधि[illegible]
सद्भाव इति वक्तव्यम्, द्रव्यादीनामपि षण्णां प्रमाणप्रमेयरूपपदार्थद्वयेऽन्तर्भावात् प[illegible]
कस्याऽपि अनुपपत्तेः । अथ तदन्तर्भावेऽपि अवान्तरविभिन्नलक्षणवशात् प्रयोजनवश[illegible]
द्रव्यादिषट्कव्यवस्था तर्हि तत एव प्रमाणादिषोडशकव्यवस्था तमश्छायादिद्रव्यान्तरव्यवस्थाऽपि
५ ष्यति इति 'न्यूनाधिक'-इत्यादिविशेषणानुपपत्तिरेव । न च तमश्छायादेर्बहलत्वादितत्तम[illegible]
योगिनः विशिष्टार्थक्रियानिर्वर्तनसमर्थस्य च भासामभावरूपतेति वक्तव्यम्, भासामप्येवं तम[illegible]
ऽभावरूपताप्रसक्तेः । न च आवारकद्रव्यसन्निधानापेक्षतेजोऽभावरूपता तयोः, स्वत[illegible]
विशिष्टपदार्थोत्पत्तौ प्रतियोग्यभावरूपत्वे भासामपि तथात्वोपपत्तेः । यदपि मधुर-शीत[illegible]
योगाद् ये गुणाः समुपजायन्ते छायादिसेवनादपि ते प्रादुर्भवन्तीत्युपचारात् 'छाया मधुर-शी[illegible]
१० इत्युच्यते तत् तेजस्यपि समानम् । यथा च छाया-तमसोः पुद्गलद्रव्यात्मकत्वं तथा प्रा[illegible]
पादितमिति न पुनरुच्यते । तदेवं 'पृथिव्यादीनि नव द्रव्याणि' इत्यनुपपन्नम् तत्सद्भावप्रति[illegible]
प्रमाणाभावात् बाधकस्य च प्रदर्शितत्वात् ।

द्रव्याभावाच्च गुणादयो विशेषपर्यन्ताः असन्त एव, तेषां तदाश्रितत्वाभ्युपगमात् आश्र[illegible]
च तदाश्रितानां तत्परतन्त्रतयाऽवस्थानासंभवात् । गुण-कर्मणां च साक्षाद्द्रव्याश्रितत्वं परै[illegible]
१५ गतम् । तथा च सूत्रम्—"द्रव्याश्रयी अगुणवान् संयोग-विभागेष्वकारणम् अनपेक्ष इति
लक्षणम्" । [वैशेषिकसू० १-१-१६] "एकद्रव्यम् अगुणम् संयोग-विभागेष्वनपेक्षम् कारणम्
कर्मलक्षणम्" । [वैशेषिकसू० १-१-१७] एकमेव एकस्मिन्नेव च द्रव्ये आश्रितमेकद्रव्यं
गुणास्तु केचिद् अनेकस्मिन् वर्तन्ते संख्या-संयोगादयः, अनेके वा एकदा एकत्र वर्तन्ते
रसादयः । सामान्यविशेषाश्च केचिद् द्रव्यत्व-पृथिवीत्वादयो द्रव्यवृत्तय एव गुणत्व-कर्मत्वा[illegible]
२० द्रव्यसंबन्ध(द्ध)गुण-कर्माश्रिताः । सत्तासामान्यं तु द्रव्य-गुण-कर्मवृत्ति । विशेषास्तु नित्यद्रव्ये[illegible]
वर्तन्त इति द्रव्यप्रतिषेधे गुणादिप्रतिषेधः प्रसिद्ध एव । समवायस्तु पञ्चपदार्थवृत्तित्वः प[illegible]
निषेधे निषिद्ध एव, तदाश्रयाश्रिताभावे तस्याऽभावात् । ततो द्रव्यनिषेधादेव प्रशेषपदार्थनि[illegible]
सिद्धावपि शिष्यतो गुणादिप्रतिषेधः प्रदर्श्यते परदर्शनस्य सर्वथाऽयुक्ततादर्शनात् ।

[क्रमशो रूपादिगुणानां प्रक्रियामुपन्यस्य तेषां खण्डनम्]

२५ तत्र "रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वाऽ[illegible]
बुद्धयः सुख-दुःखे इच्छा-द्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः" । [वैशेषिकसू० १-१-६] इति सूत्रोक्ताः [illegible]
'च'शब्दसमुच्चिताः—गुरुत्व-द्रवत्व-स्नेह-संस्कार-धर्माऽधर्म-शब्दाश्च सप्त गृह्यन्ते इति चतुर्वि[illegible]
गुणाः । तत्र चक्षुर्ग्राह्यं रूपं पृथिव्युदकज्वलनवृत्ति । रसो रसनेन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकवृत्तिः । [illegible]

---

१ इ० ५०३ पं० १४-द्वि० ११ ।

२ "[illegible] । गुण-कर्मा[illegible]" ॥
—[illegible]

३ "[illegible]"—[illegible]

४ "[illegible] । [illegible]" ॥
—[illegible]

५ "[illegible]

[illegible]

६ [illegible]

"[illegible]

घ्राणमात्रः पृथिवीवृत्तिः। स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकज्वलनपवनवृत्तिः। रूपादेश्च गुणत्वे सति चक्षुर्ग्राह्यत्वादिकं लक्षणमितरव्यवच्छेदकम्। एषां च मध्ये रूपस्य महत्त्वाद्युपेतद्रव्यसमवेतस्य शुक्लादेर्निरवयवस्य यदि ग्रहणमिष्यते तदा कुड्यकादिविवरविनिर्गतप्रदीपाद्यालोकोद्द्योतिताऽप-वरकादिव्यवस्थितपृथुतरपटादिद्रव्यसमवेतशुक्लादिरूपाभिव्यक्तौ सकलस्यैव यावद्द्रव्यवर्तिन उप-लब्धिः स्यात् निरवयवत्वात् न हि एकस्य तस्य अवयवा विद्यन्ते येन एकदेशाभिव्यक्तिर्भवेत्। एवं ५ गन्ध-रस-स्पर्शानामपि तदाधारैकदेशस्थानामभिव्यक्तौ यावद्द्रव्यभाविनामुपलब्धिप्रसङ्गः। भव-भवत्येव सकलस्य नीलादेरुपलब्धिः नैनु तेन आलोकादिना नीलादेर्गुणतो भेदाभ्युपगमे पृथिव्यादि-परमाणुद्रव्यवद् अणुपरिमाणयोगित्वेन गुणवत्त्वाद् द्रव्यताप्रसक्तिर्भवेत्। न चैवमपि गुणसंज्ञाकरणे कश्चिद् गुणः अविवादप्रसक्तेः। न च अणुत्वेऽपि आश्रितत्वाद् गुणत्वमुपपन्नम् तद्गमनोराश्रयानु-पपत्तेः, अतिप्रसङ्गाच्च–अवयविद्रव्यस्यापि अवयवद्रव्याश्रितत्वाद् गुणत्वापत्तेः। १०

संख्यां तु एकादिव्यवहारहेतुः एकत्वादिलक्षणा परैरभ्युपगता। सा पुनः एकद्रव्या च अनेक-द्रव्या च। तत्र एकसंख्या एकद्रव्या, अनेकद्रव्या तु द्वित्वादिसंख्या। तत्र एकद्रव्यायाः सलिलादि-परमाण्वादिगतरूपादीनामिव नित्यानित्यत्वनिष्पत्तयः अनेकद्रव्यायास्तु एकत्वेभ्योऽनेकविषयबुद्धि-सहितेभ्यो निष्पत्तिः अपेक्षाबुद्धिविनाशाद् विनाशः क्वचिद् आश्रयविनाशादिति। इयं च द्वित्वादिरपि संख्या प्रत्यक्षत एव सिद्धा, विशेषबुद्धेश्च निमित्तान्तरापेक्षत्वाद् अनुमानतोऽपि सिद्धिः इति परे १५ मन्यन्ते। अत्र समुदायव्यावृत्तैकत्वादिसंज्ञाविषयपदार्थव्यतिरेकेण उपलब्धिलक्षणप्राप्तायाः संख्याया अनुपलब्धेरसत्त्वं शशविषाणवत्। न च विशेषणमसिद्धम् तस्या इदन्त्वेन इष्टेः। तथा च सूत्रम्-"संख्या-परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि" [*वैशेषिकसू० ४-१-११*] *न च विशेषबुद्धितोऽनुमानतोऽपि संख्यासिद्धिः यतो यथा 'एको गुणः'* 'बहवो गुणाः' इत्यादौ संख्यामन्तरेणापि एकादिबुद्धिस्तथा घटादिष्वपि असदादिषु संख्यादिर-२० विनैकत्वादिर्नैतादिलक्षणकारणमपमेकादिज्ञानं भविष्यतीति विशेषादिर्संख्यता। न च गुणेषु

---

१ "द्रव्ये महति नीलादिरेक एव यदीष्यते। एकप्रालोकेन तद्व्यक्तौ व्यक्तिः स्यात् सर्वस्य किम्?" ॥

—तत्त्वसं० का० ६१८ पृ० २११।

२ "तत्र च द्रव्ये यदेकमेवानवयवं नीलादि चतुर्विधमिष्यते तदा कुड्यकादि कुट्टिमविवरविनिर्गत प्रदीपादिना व्यवस्थितपृथुतरपटादिद्रव्यसमवेतस्य नीलादिरूपस्याभिव्यक्तौ सत्यां सकलस्यैव यावद्द्रव्यवर्तिनो व्यक्तिः प्राप्नोति निरवयवत्वात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २११ पं० १५–।

३ "न च देशविभागेन स्थितो नीलादिरिष्यते। व्यज्यते यस्य तेन तस्य भेदोऽनुषज्यते" ॥

—तत्त्वसं० का० ६१९ पृ० २११।

४ "तत्र एकादिव्यवहारहेतुरेकत्वादिलक्षणा संख्या सा पुनरेकद्रव्या अनेकद्रव्या च" इत्यादि—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २१२ पं० ४–।

"एकादिव्यवहारहेतुः संख्या। सा पुनरेकद्रव्या चानेकद्रव्या च। तत्रैकद्रव्यायाः सलिलपरमाण्वादिरूपादीनामिव नित्यानित्यत्वनिष्पत्तयः। अनेकद्रव्या तु द्वित्वादिका परार्धान्ता। तस्याः खलु एकत्वेभ्योऽनेकविषयबुद्धिसहितेभ्यो निष्पत्तिः अपेक्षाबुद्धिविनाशाद् विनाश इति"—प्रशस्त० भा० पृ० १११ पं० १–।

५ "विशेषबुद्धेश्च निमित्तान्तरापेक्षत्वादनुमानतोऽपीति परे मन्यन्ते"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २१२ पं० ८–।

६ संख्याः मु० वै० द० सू०। वृ० वै० द०। " 'संख्या' इति बहुवचनमेकत्वादि[illegible] सर्वे एव संख्या [illegible]" इति–वृ० वै० द० पृ० १८२ पं० १२ [illegible] मूलसूत्रेऽपि बहुवचनं [illegible] अस्ति"। पञ्जिकायां तु "[illegible] -चाक्षुषाणि" इत्युदितम्—पृ० २१२ पं० १५।

"[illegible] । न [illegible] [illegible] [illegible]" ॥—तत्त्वसं० का० ६२८ पृ० २१२।

७ "[illegible] [illegible] । [illegible] ॥

[illegible] [illegible] [illegible] " ॥

—तत्त्वसं० का० ६२९-६३० पृ० २१२।

संख्या संभवति अद्रव्यत्वात् तेषाम् संख्यायाश्च गुणत्वेन द्रव्याश्रितत्वात्[1]। न च गुणेषु उपचरितमेकत्वादि ज्ञानम् अस्खलद्वृत्तित्वात् । न च गुणेषु संख्यासद्भावे अनवस्थादिबाधकप्रमाणोपपत्तेरुपचरितमेकत्वादिज्ञानम् घटादिष्वपि वृत्ति-विकल्पादेर्द्वित्वादिसंख्यायां बाधकस्य सद्भावात् तद्विज्ञानस्य तथात्वप्रसक्तेः । न च वृत्ति-विकल्पादेर्बाधकस्य अबाधकत्वम् तस्य निरस्तत्वात् । न च
५ क्वचिद् मुख्यसंख्याभावे गौणप्रत्ययस्य तद्विषयस्याऽभाव[2] इति घटादौ मुख्यसंख्यायोगोऽभ्युपगन्तव्य इति वाच्यम्, मुख्यपूर्वकत्वेन गौणप्रत्ययस्य एवंविधे विषये बौद्धं प्रति क्वचिदपि असिद्धेः न हि गवादिष्वपि 'गौः' इति ज्ञानं पारमार्थिकगोत्वनिबन्धनतया मुख्यं सिद्धम् नापि वाहीके तद् ज्ञानं वस्तुभूतगोत्वाध्यारोपाद् उपचरितम् । किञ्च, यथा वाहीके गौरिव अयम् न तु गौरेव साक्षाद्भावात् स्खलति प्रत्ययः इति गौणः न एवम् एक इव एको गुणः न तु एक एव इति प्रत्ययः किन्तु
१० यादृशी घटादिषु अस्खलिता बुद्धिर्भवति तादृशी गुणादिष्वपि[3]। अथ न सादृश्यापेक्षमेतद् ज्ञानम् किन्तु यत् तदाश्रयभूतं द्रव्यं तद्गतैकत्वादिसंख्यातः गुणादीनां तदेकार्थसमवायात्, नन्वेवम् 'एकस्मिन् द्रव्ये रूपादयो बहवो गुणाः' इति ज्ञानोत्पत्तिर्न स्यात् तदाश्रयद्रव्ये बहुत्वसंख्याया अभावात्। 'षट् पदार्थाः' 'सुख-दुःखे' 'इच्छा-द्वेषौ' 'पञ्चविधं कर्म' 'परमपरं च द्विविधं सामान्यम्' 'एको भावः' 'एकः समवायः' इति व्यपदेशेषु च किं निमित्तमिति वक्तव्यम्, न ह्यत्र एकार्थसमवायिनी
१५ संख्या विद्यते इति अव्यापिनी इयमपि कल्पना न युक्तिसंगता। भवतु वा एकार्थसमवायाद् अन्यतो वा स्वप्रकल्पिताद् हेतोरयं प्रत्ययस्तथापि गुणादिगतमुख्यसंख्याऽभावतः स्खलद्वृत्तिः स्यात् माणवके सिंहप्रत्ययवत्, न चैवमुपलभ्यते इति संकेतमात्रनिबन्धन एव सर्वत्र अभ्युपगन्तव्यः[5]। यदपि 'गज-तुरग-स्यन्दनादिव्यतिरिक्तनिमित्तप्रभवः सेनाप्रत्ययः, गजादिप्रत्ययविलक्षणत्वात्, वस्त्र-चर्म-कम्बलेषु नीलप्रत्ययवत्' इति संख्यासिद्धये यद् अविद्धकर्णोक्तं प्रमाणम्, तदप्ययुक्तम्। गजादि-
२० व्यतिरिक्तसंकेतादिप्रभवत्वेन इष्टत्वात् सिद्धसाध्यता[6]
प्रभवत्वमस्य साध्यत्वेन अभिप्रेतम् तदा अनैकान्तिको
प्रत्ययस्य संख्यामन्तरेणापि भावात् । 'अनेकद्रव्या च
सहितेभ्य उत्पद्यते' इत्यभ्युपगमश्च अनुपपन्नः, संकेताभोगमात्रेण संख्येयेषु 'द्वे' 'त्रीणि द्रव्याणि'

१–संख्यायाः या–वा० बा० ।

२ मुख्यसंख्याऽभावे गौणप्रत्ययस्य तद्विषयस्य भाव इति–भां० मां० । मुख्यपूर्वकत्वेन संख्याभावे गौणप्रत्ययस्य तद्विषयस्याभाव इति–आ० हा० वि० ।

३ "न हि यथा वाहीके गौरिति स्खलति प्रत्ययः गौरिव गौर्न तु गौरेव साक्षादभावादिति न तथायं स्खलति एकमिदं रूपादि न त्वेकमेवेति किं तर्हि यादृशी घटादिष्वस्खलिता बुद्धिर्भवति तादृशी गुणादिष्वपि"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २११ पं० १७—।

४ मुख्यसि–मु० विना।

५ "[illegible] परिकल्प्यते । गुणादिष्वेकविज्ञानमेकार्थसमवायतः" ॥

—तत्त्वसं० का० ६४१ पृ० २११ ।

६ "अस्तु [illegible] ([illegible]) [illegible] । [illegible] ॥
[illegible] प्रत्ययो भवत् । तथा च स्खलितो [illegible]" ॥

—तत्त्वसं० का० ६४२-६४३ पृ० २११ ।

७ "यच्चैकत्वादिना अविद्धकर्णोक्तं संख्यासिद्धये प्रमाणमत्रोच्यते—
[illegible] । संख्याबुद्धि[illegible]"—

—तत्त्वसं० का० ६४४ पृ० २११ ।

८ "[illegible] । [illegible]" ॥

—तत्त्वसं० का० ६४५ पृ० २१४ ।

९ "[illegible] । [illegible]" ॥

—तत्त्वसं० का० ६४६ पृ० २१४ ।

त्वादिषु तेन्द्रियजत्वे: तथापि अदृष्टसामर्थ्यात् अन्यत्र सद्धेतुत्वकल्पने हेत्वनवस्थाप्रसक्तिः[1]। किञ्च, विशरारुस्वभाव-व्यतिरेकानुविधायित्वे क्रियादिप्रत्ययस्य द्रव्यादिसंस्थाप्रभवत्वाभ्युपगमे तद्धेतु-त्वसंस्थाया एकत्र अनेकवृत्तित्वमभ्युपगतं भवति, तच्च प्रमाणबाधितमिति प्राक् प्रवेदितम्। ततोऽपेक्षाबुद्धिरेव द्व्यादिबुद्धिनिमित्तभूता परमभ्युपगन्तव्येति स्थितम्।

“परिमाणव्यवहारकारणं परिमाणं महद् अणु दीर्घम् ह्रस्वमिति चतुर्विधम्” [ ] ५ इति परैरभ्युपगतम्। “तत्र महद् द्विविधम्-नित्यम् अनित्यं च। नित्यम् आकाश-काल-दिगात्मसु परममहत्त्वम्, अनित्यम् त्र्यणुकादिषु द्रव्येषु। अणु अपि नित्याऽनित्यभेदात् द्विविधम्-परमाणु-मनस्सु पारिमाण्डल्यलक्षणं नित्यम्, अनित्यं द्व्यणुक एव। कुवलयाऽऽमलक-बिल्वादिषु च महत्स्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भाक्तोऽणुत्वव्यवहारः। तथाहि-यादृशं बिल्वे महत् परिमाणम् तादृशं न आमलके [illegible] तयोः द्व्यणुके च १०
[illegible] इति व्यवहार-
[illegible] नामप्यस्य एव”
[ ] महदादि च परिमाणं रूपादिभ्योऽर्थान्तरम्, तत्प्रत्ययविलक्षणबुद्धिग्राह्यत्वात्, सुखादिवत्। अत्र यदि ‘रूपादिविषयेन्द्रियबुद्धिविलक्षणबुद्धिग्राह्यत्वात्’ इति हेत्वर्थस्तदा हेतुरसिद्धः चाक्षुषप्रत्यक्षरूपादिव्यतिरेकेण महदादिपरिमाणस्य अध्यक्षप्रत्ययग्राह्यत्वेन असंवेदनात्। अथ १५ ‘अणु’ ‘महत्’ इत्याकारप्रत्ययविलक्षणकल्पनाबुद्धिग्राह्यत्वात्’ इति हेत्वर्थस्तदा विपर्यये बाधक-प्रमाणाभावाद् अनैकान्तिकः। न ह्यस्याः किञ्चिदपि परमार्थतो ग्राह्यमस्ति कल्पनाबुद्धित्वात्। एक-दिग्मुखादिप्रवृत्तेषु विशिष्टरूपादिषु उपलब्धेषु तद्विलक्षणरूपादिभेदप्रकाशनाय समयवशात् ‘महत्’ इत्यादि कल्पयन्ती बुद्धिः प्रवर्तते इति भाक्तो वस्तुव्यवस्था। न च रूपादिव्यतिरिक्तं ग्राह्यमस्या अस्तीति असिद्धता हेतोः। प्रत्यक्षबाधा च प्रतिज्ञायाः अभ्युपगतस्य महदादेः रूपादि-२० व्यतिरेकेण अनुपलब्धेः। ततो दृष्टे स्पृष्टे वा एकदिङ्मुखप्रवृत्ते रूपादौ भूयसि अतद्रूपपरावृत्ते ‘दीर्घम्’ इति व्यवहारः प्रवर्तते परिमाणाभावेऽपि तदपेक्षया चाल्पीयसि रूपादौ समुत्पन्ने ‘ह्रस्वम्’ इति व्यवहारः। एवं महदादौ अपि योज्यम्। एकाऽनेकविकल्पाभ्यां रूपादिवद् महदाद्यनुपपत्तेश्च अभावः। अविद्यमानेऽपि महदादौ अवयवकल्पिते प्रासादमालादिषु महदादिप्रत्ययप्रादुर्भूतेरनुभवाद्

---

१ “एवं ह्यदृष्टसामर्थ्यस्य हेतुत्वं न कल्पितं स्यादन्यथा हि हेतूनामनवस्था भवेत्”—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ११४ पं॰ १६।

२ “महदादिपरिभेदेन परिमाणं प्रदृश्यते। तदप्यर्थे तथारूपभेदादेव न [illegible] मतम्॥”—तत्त्वसं॰ का॰ ६४७ पृ॰ २१४।

“परिमाणं मानव्यवहारकारणम्। तच्चतुर्विधम् अणु महद् दीर्घं ह्रस्वं चेति। तत्र महद् द्विविधम् नित्यमनित्यं च। नित्यमाकाशकालदिगात्मसु परममहत्त्वम् अनित्यं त्र्यणुकादावेव। तथा अण्वपि द्विविधम् नित्यमनित्यं च। नित्यं परमाणुमनस्सु तत् पारिमाण्डल्यम्। अनित्यं द्व्यणुक एव”—प्रशस्त॰ कं॰ पृ॰ १३० पं॰ १०—।

३ “कुवलयामलकबिल्वादिषु महत्स्वपि तत्प्रकर्षभावाभावमपेक्ष्य भाक्तोऽणुत्वव्यवहारः”—प्रशस्त॰ कं॰ पृ॰ १३० पं॰ २५।

“कुवलामलबिल्वादिषु च महत्स्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भाक्तोऽयं व्यवहारः”—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ११५ पं॰ १।

“अनित्यमणुपरिमाणं द्व्यणुक एवेत्युक्तम् कुवलयामलकबिल्वादिषु परस्परापेक्षयाणुव्यवहारदर्शनादत आह–कुवलयामलकबिल्वादिष्विति। बिल्वे यः प्रकर्षभावो महत्परिमाणातिशययोगित्वं तस्यामलकेऽभावमपेक्ष्याणुव्यवहारो भाक्तः। उभाभ्यां भज्यते इति भक्तिः सादृश्यं तस्यायमिति भाक्तः सादृश्यमात्रनिबन्धनो गौण इत्यर्थः। एवमामलकपरिमाणातिशयाभावं कुवलयेऽपेक्ष्याणुव्यवहारः। यत्र हि मुख्यमणुत्वं द्व्यणुके तत्र महत्परिमाणस्याभावो दृष्ट आमलकेऽपि यादृशं बिल्वे महत्परिमाणं तादृशं नास्तीत्येतावता साधर्म्येणोपचारप्रवृत्तिः”—प्रशस्त॰ कं॰ पृ॰ १३४ पं॰ १—।

४ “दीर्घा प्रासादमालेति महती वेद्यते यथा। न हि तत्र यथारूपं परिमाणं प्रकल्पितम्॥
एकार्थसमवायेन तथा चेद् घटादिषु ते। न महत्त्वं न दैर्घ्यं च पारमार्थिकं विवक्षितम्”॥—तत्त्वसं॰ का॰ ६४८–६४९ पृ॰ ११५।

अनैकान्तिकश्च हेतुः। न च यत्रैव प्रासादादौ समवेतो मालाख्यो गुणः तत्रैव [2] कार्थसमवायवशात् 'महती प्रासादमाला' इति प्रत्ययोत्पत्तेर्न अनैकान्तिकत्वम्, तथाहि—न[3] प्रासादो भवद्भिरवयविद्रव्यमभ्युपगम्यते विजातीयानां द्रव्यानारम्भात्[1] संयोगात्मको गुणः। न च गुणः परिमाणवान् "निर्गुणा गुणाः" [ ] इति।
५ ततो मालाख्यस्य गुणस्य प्रासादादिष्वभावात् 'प्रासादमाला' इत्ययमेव प्रत्ययस्तावद् अयुक्तः—दूरत एव 'सा महती ह्रस्वा वा' इत्यादिप्रत्ययव्यपदेशसंभवो मालायाः संख्यात्वेन प्रासादादीनां च संयोगत्वेन महत्त्वादेश्च परिमाणत्वेन परैरभ्युपगमात् त्रयाणामपि गुणत्वाद् गुणेषु च गुणासंभवात् 'महती प्रासादमाला' इति नैकार्थसमवायात् प्रत्ययोत्पत्तिः। अथापि अवयविस्वभावा माला इष्यते तथापि द्रव्यस्य द्रव्याश्रयत्वाच्च मालायाः संयोगस्वरूपप्रासादाश्रयत्वं युक्तम्। अथ माला जाति-
१० स्वभावा अभ्युपगम्यते तथापि जातेः प्रत्याश्रयं परिसमाप्तत्वात् एकस्मिन्नपि प्रासादे 'माला' इति प्रत्ययोत्पत्तिर्भवेत्। 'एका प्रासादमाला महती दीर्घा ह्रस्वा वा' इत्यादिप्रत्ययानुपपत्तिस्तथैव स्यात् मालायाम् तदाश्रये च प्रासादादौ एकत्वादेर्गुणस्य असंभवात् काष्ठादिषु च प्रासादाभावेषु विवक्षितदीर्घादियोगात् बहीषु च प्रासादमालासु 'माला' 'माला' इति अनुगतप्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात् जातावपरजातेरनुपपत्तेः। न च तदाश्रयजातिनिबन्धन औपचारिकोऽयं प्रत्ययोऽस्खलद्वृत्तित्वात्।
१५ न हि मुख्यप्रत्ययाऽविशिष्टो गौणो युक्तोऽतिप्रसङ्गात्। अत एव मालादिषु महत्त्वादिप्रत्ययोऽपि नौपचारिकः। उक्तं च—

"मालादौ च महत्त्वादिरिष्टो यश्चौपचारिकः।
मुख्याऽविशिष्टविज्ञानग्राह्यत्वान्नोपचारिकः" ॥ [ ] इति।

तन्न परिमाणं रूपादिषु पृथग् गुण इति स्थितम्।

२० संयुक्तमपि द्रव्यं यद्वशात् 'अत्रेदं पृथक्' इत्यपोद्ध्रियते तदपोद्धारव्यवहारकारणं पृथक्त्वं नाम गुणः इति काणादाः 'घटादिभ्योऽर्थान्तरम्, तत्प्रत्ययविलक्षणत्वात्, सुखादिवत्' इति

---

१ "[illegible] दोषो गुणः सोऽपरिमाणवान्। न [illegible] माला नौपचारिक [illegible]" ॥—तत्त्व० [illegible] पृ० २३६।

२ "[illegible]"—तत्त्व० पञ्जि० पृ० २३६ पं० ९। "विजातीयानां द्रव्यानारम्भात्"—प्रमेयक० पृ० १०८ प्र० पं० १४।

३ "न च गुण परिमाणवान् भवति "निर्गुणा गुणाः" इति वचनात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २३६ पं० १०। "न च गुणः परिमाणवान् निर्गुणा गुणा इत्यभिधानात्"—प्रमेयक० पृ० १०८ प्र० पं० १४।

४ "द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्"—वैशेषिकसू० १-१-१६। "[illegible] निर्गुणत्वम् [illegible]"—प्रशस्त० कं० पृ० [illegible]। "[illegible] निर्गुणा [illegible] गुणाः"—न्यायवि० मु० का० ८६। "[illegible] निर्गुणा गुणाः"—[illegible] ५-४०।

५ [illegible]

६ [illegible]—तत्त्व० पञ्जि० पृ० २३६ पं० १०—

[illegible]

—तत्त्व० पञ्जि० पृ० २३६ पं० १३—

७ [illegible]—तत्त्व० पञ्जि० पृ० २३६ पं० १३—

स्थिताः । अत्र तावद् हेतोरसिद्धता, परस्परस्वरूपव्यावृत्तरूपादिव्यतिरेकेण अर्थान्तरभूतस्य
त्वगुणस्य अध्यक्षे अप्रतिभासनेन घटादिविलक्षणज्ञानप्रतिभासस्यासिद्धेः । अत एव उपलब्धि-
प्राप्तत्वेन अभ्युपगतस्य तस्य अनुपलम्भाद् असत्त्वम् । न च 'पृथक्' इति विकल्पप्रत्ययावसेय-
तस्य सत्त्वम् सजातीय-विजातीयव्यावृत्तरूपाद्यनुभवनिबन्धनत्वात् तत्प्रत्ययस्य । व्यावृत्तता च
नां स्वस्वभावव्यवस्थितेः अन्यथा सत एव अव्यावृत्तरूपाणां पृथक्त्वादिवशात् तेषां पृथग्रूप-५
सिद्धेः पृथक्त्वादेर्भिन्नाऽभिन्नपृथग्रूपभावकरणे अकिञ्चित्करत्वात्-भेदपक्षे संबन्धासिद्धेः, अभे-
न तु पृथग्रूपस्य भावस्यैव उत्पत्तेरर्थान्तरभूतपृथक्त्वगुणकल्पनावैयर्थ्यात् तत एव 'पृथक्'
हारसिद्धेर्हेतोरनैकान्तिकत्वम् । किञ्च, यथा परस्परव्यावृत्तात्मतया सुख-दुःखादिगुणेषु
क्' इति प्रत्ययविषयता पृथक्त्वगुणाभावेऽपि-गुणेषु गुणासंभवात्-तथा घटादिष्वपि
प्रतीतीति हेतोरनैकान्तिकता परिस्फुटैव । न च गुणेषु 'पृथक्' इति प्रत्ययो भाक्तः मुख्य-१०
याऽविशिष्टत्वात् । 'पृथक्' इत्यपोद्धारव्यवहारस्य स्वरूपविभिन्नपदार्थनिबन्धनत्वात् परोपन्यस्ता-
ने प्रतिज्ञाया अनुमानबाधा । तथा च प्रयोगः—ये परस्परव्यावृत्तात्मानः ते स्वव्यतिरिक्तपृथ-
नाधाराः, यथा सुखादयः, परस्परव्यावृत्तात्मानश्च घटादयः इति स्वभावहेतुः । एकस्य अनेक-
त्तनुपपत्तिः संबन्धाभावश्च समवायस्य प्रतिषेत्स्यमानत्वात् सुखादिषु तद्व्यवहाराभावप्रसक्तिश्च
र्यये बाधकं प्रमाणम् । तन्न पृथक्त्वं गुणः तत्साधकप्रमाणाभावाद् बाधकोपपत्तेश्चेति १५
वस्थितम् ।

अप्राप्तिपूर्विका प्राप्तिः संयोगः प्राप्तिपूर्विका च अप्राप्तिर्विभागः । एतौ च द्रव्येषु यथाक्रमं
युक्त'-'विभक्त'-प्रत्ययहेतू अन्यतरोभयकर्मजौ संयोग-विभागजौ च यथाक्रमम् । न च संयोग-
भागयोः तत्त्वप्रतिपादकप्रमाणाविषयत्वात् सद्व्यवहाराविषयता शशविषाणवत् इति वाच्यम्,
संयोगस्य द्रव्ययोर्विशेषणत्वेन अध्यक्षतः प्रतीयमानत्वात् । तथाहि-कश्चित् केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये २०
आहर' इत्युक्तो ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभ्य(भ)ते ते एव आहरति न द्रव्यमात्रम् अन्यथा हि यत्

---

१ "अपोद्धारव्यवहृतिः पृथक्त्वात् या तु कल्प्यते । कारणात् सा विभिन्नात्मभावनिष्ठा न किंमता" ॥
—तत्त्वसं० का० ६५१ पृ० २१७ ।

२ "परस्परविभिन्ना हि यथा बुद्धि-सुखादयः । पृथग्वाच्यास्तदर्थं च विनाऽन्येन तथाऽपरे" ॥—तत्त्वसं०
का० ६५२ पृ० २१७ ।

३ "यौ संयोगविभागौ च द्रव्येषु नियतौ परैः । संयुक्तादिधियो हेतू कल्पितौ तावनर्थकौ" ॥—तत्त्वसं० का० ६५३
पृ० २१८ ।

४ "संयुक्ते आहरेत्युक्ते संयोगं प्रेक्षते ययोः । तदन्यपरिहारेण ते एवाहरति क्षमम्" ॥—तत्त्वसं० का० ६५७
पृ० २१८ ।

५ "तथाहि—कश्चित् केनचित् संयुक्ते द्रव्ये आहरेत्युक्ते ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एव आहरति न द्रव्य-
मात्रम्" इत्यादि—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २१८ पं० २१—।

संयोगसमर्थनपरमेतद् उद्द्योतकरमतं न्यायवार्तिके इत्थमुपलभ्यते—

"विशेषणभावादर्थान्तरं संयोगः—संयुक्ते द्रव्ये आहरेत्युक्ते ययोर्द्रव्ययोः संयोगं पश्यति ते इतरेभ्यो विशिष्य संयुक्ते
आहरति । × × × यदि चार्थान्तरं संयोगो न स्यात् क्षेत्रोदकबीजभूमीन्धनादीनि सर्वत्रावस्थितानि सर्वत्राङ्कुरपाका-
दिकार्यं कुर्युः तान्येव तानीति । तस्माद् यस्तैरपेक्ष्यते सोऽर्थोऽन्यस्तस्मिन् संयोग इति संज्ञेति । क्षेत्रोदकबीजाग्नीन्धनानि
अङ्कुरपाकादिकार्ये सती सापेक्षाणि सर्वदा तत्कार्यानारम्भाद् दण्डादिवत्-यथा दण्डाद्यनेकं कारणं संयोगादिनिमित्तान्तरापेक्षं
सर्वदा न घट-पटादिकार्यं करोति तथा बीजादपि तस्मात् तदपि सापेक्षम् । × × × सान्तरनिरन्तरबुद्ध्योश्च निमित्तं
वक्तव्यम् । यदि संयोगं विभागं निमित्तान्तरं न प्रतिपद्यसे सान्तरमितिबुद्धेर्निरन्तरमिति च बुद्धेर्भेदहेतुर्वक्तव्यः । न हि
निमित्तभेदमन्तरेण बुद्धीनां भेदो दृष्टो रूपादिवदिति—या चेयमवगतिः भवतीति बुद्धियो असंयुक्ते संयुक्तमिति अविभक्ते
विभक्तमिति च सा च प्रधानमन्तरेण न भवति । सर्वा एता मिथ्याबुद्धयः प्रधानानुकारेण भवन्तीति प्रधानं वक्तव्यम् । न
हि निष्प्रधानं भाक्तं दृष्टम् स्थाणु-पुरुषवदिति । यथा स्थाणौ सति पुरुषे स्थाणुरिति बुद्धिः पुरुषे चाऽसति स्थाणौ पुरुषबुद्धि-
रिति । यदि चार्थान्तरं संयोगो न स्यात् पुरुषशीलस्य बुद्धेः किञ्चिन्निमित्तमपरं निषीदमानं प्रतिषिध्यमानं वा निमित्तान्तर-

किञ्चिद् आहरेत्। एतद् विभागसाधनेऽपि विपर्ययेण सर्वं समानम्। किञ्च, यदि अर्थान्तरभूतौ संयोग-विभागौ वस्तुनो न स्याताम् तदा वस्तुमात्रनिबन्धनौ 'सान्तरमिदम्' 'निरन्तरम्' इति च प्रत्ययौ नोत्पद्येयाताम् न हि विशेषप्रत्ययौ वस्तुविशेषमन्तरेण संभविनौ सर्वदा सर्वत्र भावप्रसङ्गात्। अपि च, दूरदेशावर्तिनः प्रमातुः सान्तरावस्थितेऽपि धव-खदिरादौ निरन्तरावसायिनी बुद्धिर्योत्पद्यते ५ यां च शाखिशिखरावसक्ते बलाकादौ सान्तरत्वाध्यवसायिनी समुपजायते, द्विविधाऽपि इयम् 'अतस्मिंस्तत्' इति प्रवृत्तेर्मिथ्याबुद्धिः। न च असौ मुख्यपदार्थानुभवमन्तरेण क्वचिद् उपजायमाना संलक्ष्यते न हि अननुभूतरजतस्य शुक्तिकायाम् 'रजतम्' इति विभ्रमः इति कश्चित् मुख्यो भावो विभ्रमधियो निमित्तमभ्युपगन्तव्यः; तदभ्युपगमे च संयोग-विभागसिद्धिः तद्व्यतिरेकेण अन्यस्य एतद्बुद्धेर्निबन्धनस्य असंभवात्। तथा, 'कुण्डली देवदत्तः' इति मतिः किंनिबन्धना उपजायते इति १० वक्तव्यम्। न पुरुष-कुण्डलमात्रनिबन्धना, सर्वदा तयोस्तथा उत्पत्तिप्रसङ्गात्। अपि च, यदेव क्वचित् केनचित् उपलब्धं सत्त्वेन; तस्यैव अन्यत्र विधिः प्रतिषेधो वा दृष्टः। यदि च संयोगो न कदाचिद् उपलब्धः कथं विभागेन अस्य 'चैत्रोऽकुण्डलः कुण्डली वा' इत्येवं प्रतिषेधः विधिश्च

मुपादेयम्। न तावत् कुण्डलनिमित्ता नापि देवदत्तनिमित्ता। न च भवता निमित्तान्तरं प्रतिपाद्यते, निमित्तान्तरं चान्तरेण यथा कथंचिद् व्यवस्थिताभ्यां देवदत्त-कुण्डलाभ्यां कुण्डलीति बुद्ध्या भवितव्यम्। तस्मादवश्यं विधीयमानं प्रतिषिध्यमानं वा निमित्तान्तरमभ्युपगन्तव्यम्। यदि प्रतिषिध्यमानं यदन्यत्र भवति तदन्यत्र प्रतिषिध्यत इति प्रतिषिध्यमानस्य विषयो वक्तव्यः। तस्माच्च क्वचन संयोगः प्रतिषेद्धुं शक्यते। इहबुद्धिनिमित्तत्वाच्च–इयमिहबुद्धिः प्रवर्तमाना सर्वं संबन्धात् प्रवर्तते–यथेह कुण्डे बदराणीति–नेयं बदरमात्रनिमित्ता न कुण्डमात्रनिमित्तेति। यदस्या निमित्तं स संयोग इति। × × × तस्माद् द्रव्यमर्थान्तरं संयोग इति"—पृ० २११ पं० १–पृ० २२५ पं० १।

प्रमेयकमलमार्तण्डे तु तद् [illegible] वर्तते—

"ननु संयोगो अर्थान्तरं न स्यात् तदा क्षेत्रे बीजादयो निर्विशिष्टत्वात् सर्वदैवाङ्कुरादिकार्यं कुर्युः न चैवम्, तस्मात् यदेषां कार्यकारणमङ्कुरादिकार्योत्पत्तौ कारणान्तरसापेक्षा यथा मृत्पिण्डदण्डादयो घटकरणे कुम्भकारादिसापेक्षाः, योऽपेक्ष्यते स संयोग इति। किञ्च, द्रव्ययोर्विशेषणभावेनाप्यसौ प्रतीयते। तथाहि—कश्चित् केनचित् संयुक्ते द्रव्ये आहरेत्युक्ते ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एवाहरति न द्रव्यमात्रम्। किञ्च, कुण्डली देवदत्त इत्यादि मतिः [illegible] निबन्धनेति वक्तव्यम्। न तावत् पुरुषकुण्डलमात्रनिबन्धना सर्वदा तस्याः प्रसङ्गात्। किञ्च, यदेव केनचित् क्वचिदुपलब्धसत्त्वं तस्यैवान्यत्र विधिप्रतिषेधमुखेन लोके व्यवहारप्रवृत्तिर्दृष्टा। यदि तु संयोगो न कदाचिदुपलब्धः कथमस्य चैत्रोऽकुण्डली कुण्डली चैत्रो विभागेन व्यवहारो भवेत्। चैत्रोऽकुण्डलीत्यत्र हि न कुण्डलं चैत्रो वा प्रतिषिध्येते देशकालभेदेनावस्थितयोः तयोः प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात्। तस्मादर्थान्तरस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते। तथा चैत्रः कुण्डलीत्यनेनापि [illegible] चैत्र-कुण्डलयोः [illegible] तयोः सिद्धत्वात्। पारिशेष्यात् संयोगस्यैव विधिर्विधीयते इत्यर्थान्तरं संयोग इत्यत्र"—पृ० १८५ द्वि० पं० १०—पृ० १८६ प्र० पं० २।

तत्त्वसंग्रहे [illegible] वर्तते परं न [illegible] तत्त्वसंग्रहानुसारिणी टीका [illegible] ।

१ निरन्तराणि वस्तूनि सान्तराणि [illegible] । बुद्धिभेदश्च केन स्यात् [illegible]" ॥—तत्त्वसं० का० ६९८ पृ० २२८।

२ "यत्र [illegible] बुद्धिर्निरन्तरं [illegible] । निरन्तरेऽपि वा [illegible] ॥ [illegible] " ॥—तत्त्वसं० का० ६९९–७०० पृ० २२९।

३ "न [illegible] निरन्तरेऽपि [illegible]"—तत्त्वसं० पं० पृ० २२९ पं० ९–

४ "कुण्डलीति [illegible] । [illegible] ॥

[illegible] । [illegible] ॥

[illegible] । [illegible]" ॥—तत्त्वसं० का० ७११–७१२ पृ० २३१।

भवेत्। यतः 'अकुण्डली चैत्रः' इति न कुण्डलं प्रतिषिध्यते तस्य अन्यदेशादौ विद्यमानस्य प्रतिषेद्धुमशक्यत्वात्, अत एव न चैत्रः तत्रावस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते। एवं 'कुण्डली चैत्रः' इत्यत्रापि चैत्र-कुण्डलयोर्नान्यतरस्य विधिः तयोः सिद्धत्वात्। तेन पारिशेष्यात् अप्रतीतस्य तत्संयोगस्यैव विधिरिति संयोगादिरर्थान्तरः समस्त्येव यद्बलाद् विभक्तविधि-प्रतिषेधप्रवृत्तिः 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादिप्रयोगेषु। किञ्च, यदि संयोगः अर्थान्तरं न भवेत् तदा बीजादयः—अविशिष्टत्वात् सर्वदैव स्वकार्यमङ्कुरादिकं निर्वर्तयेयुः न चैवम् सर्वदा तेषां कार्यानारम्भात्। अतो बीजादयः स्वकार्यनिर्वर्तने कारणान्तरसव्यपेक्षाः मृत्पिण्ड-दण्ड-चक्र-सलिलादय इव घटादिकरणे, योऽसौ अपेक्ष्यः स संयोगः" [ ] इति उद्द्योतकरः।

अत्र प्रतिविधीयते—यत् तावदुक्तम् 'पदार्थविशेषणभावेन संयोगोऽध्यक्षतः प्रतीयते' इति, तदयुक्तम्। यतः न संयुक्तपदार्थव्यतिरिक्तोऽर्थान्तरभूतः संयोगः कदाचित् प्रतिपत्तुर्दर्शनपथमवतरति, न च तद्दर्शनाद् विशिष्टे द्रव्येऽसावादरति किं तर्हि? प्रागवस्थातो विशिष्टे निरन्तरावस्थे ये समुत्पन्ने वस्तुनी ते एव 'संयुक्त'प्रत्ययविषये तच्छब्दवाच्ये, अवस्थाविशेषे संकेतितत्वात् 'संयुक्त'-शब्दस्य। ततो यत्र तथाविधे वस्तुनी 'संयोग'शब्दविषयतामुपगते निश्चिनोति तत्र ते एव आहरति नान्यं न हि प्रेक्षावान् शब्दात् तदभिहिते अर्थे प्रवृत्तिमारचयति। वैलक्षण्यमेव च तथा तथोत्पद्यमानं 'निरन्तरमिदं वस्तु' 'सान्तरमिदम्' इति च बुद्धिभेदनिबन्धनं भविष्यति संयोग-विभागयोर्द्रव्यार्थान्तरभूतयोरभावेऽपि इति अनैकान्तिको 'विशेषप्रत्ययत्वात्' इति हेतुः। तथाहि—विच्छिन्नं यदुत्पन्नं वस्तु तत् सान्तरबुद्धेर्निमित्तभावमुपयात्येव हिमवत्-विन्ध्याद्रिवत्, अविच्छिन्नोत्पत्तिकं च निरन्तरबुद्धिविषयः निरन्तरोपरचितदेवदत्त-यज्ञदत्तगृहवत्। न हि गृहयोः परेणापि संयोगगुणाश्रयत्वमभ्युपगम्यते निर्गुणत्वाद् गुणानाम् तयोश्च संयोगारब्धत्वेन गुणत्वात्। नापि हिमवत्-विन्ध्ययोर्विभागाश्रयत्वम् प्राप्तिपूर्विकाया अप्राप्तेर्विभागलक्षणायास्तयोरभावात्। न च सर्वा मिथ्याबुद्धिः

---

१ "पारिशेष्यात् संयोगस्यैवाप्रतीतस्य विधेर्योऽयं तस्मात्तत्त्वेन संयोगादिरर्थान्तरः अतएवमेव: कुण्डली न भवती-त्यादिनिषेधविधानादि प्रविभक्तमेव प्रतीयते। आदिशब्देन विशेषणलेखोपादानमित्यादिपूर्वोक्तपरिग्रहः"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २२० पं० १—।

२ "बीजादेस्त्वादिना उद्द्योतकरमतेनोपदर्शनात् हेतोरसिद्धतामाह इदं—
बीजोदकपृथिव्यादि सर्वदा कार्यकारकम्। प्रसक्तं निर्विशेषत्वात् संयोगस्याभवेन तु॥
क्षेत्र-बीज-जलादीनि पारंपर्येणेति गम्यते। स्वकार्यकरणाखिलं दण्डचक्रादिवत्॥
यत्सोऽपेक्ष्यते भावः स संयोगो भविष्यति। अविशेषानभावाच्च भिन्न एवेति गम्यते" ॥—तत्त्वसं० का० ६५४-६५६ पृ० २१८।

३ पृ० ६७७ पं० २०।

४ "प्रज्ञापस्याविशेषे हि नैरन्तर्येण जातितः। ये पश्यत्विहरत्वेन वस्तुनी ते तथाविधे" ॥—तत्त्वसं० का० ६६६ पृ० २२१।

५ अत्र द्वितीयाद्विवचनस्य समुचितत्वेन प्रकृतिभावस्य संभवात् 'द्रव्ये अर्था'-इत्येव पाठः सुचारुः। "नहि संयुक्तपदार्थान्तरभूतः संयोगः प्रतिपत्तुर्दर्शनपथमवतरति येन तद्दर्शना(त)द्विशिष्टे द्रव्ये आहरति"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २२१ पं० १५।

६ विच्छिन्नमन्यथा चैव जातमेति निमित्तताम्। सान्तरानन्तरज्ञाने गेह-विन्ध्य-हिमाद्रिवत्" ॥—तत्त्वसं० का० ६६७ पृ० २२१।

७ "गेह विन्ध्य-हिमाद्रिवत् इति। अनयोरेव यथायोग्यमुदाहरणम्। न हि अविच्छेदेनोत्पन्नयोः स्वयं संयोगात्मनोर्गेहयोरपरः संयोगो निरन्तरबुद्धेर्निबन्धनमस्ति परमतेऽपि, नापि विच्छेदेनोत्पन्नयोरनयोरेव विभागः सान्तरप्रत्ययनिमित्तमस्ति निर्गुणत्वात् गुणानामित्युक्तमेतत्। न हि हिम-विन्ध्ययोरपि विभागः सान्तरबुद्धेर्हेतुरस्ति प्राप्तिपूर्विका अप्राप्तिर्विभाग इति समयात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २२१ पं० २५—।

८ "मिथ्याबुद्धिर्न सर्वैव प्रधानार्थानुसारिणी। साधर्म्यनिरपेक्षाऽपि काचिदन्तरविप्लवात्॥
अन्यत्र गतचित्तस्य द्विचन्द्रादिमतिर्यथा। अविच्छिन्नक्रियात्वं वा प्रधानमिह विद्यते" ॥—तत्त्वसं० का० ६६८-६६९ पृ० २२२।

पतनक्रियानिबन्धनम्, द्रवत्वं तु पृथिव्युदक-ज्वलनवृत्ति स्य(स्र)न्दनहेतुः पृथिव्यनलयोर्नैमित्तिकम् अपां सांसिद्धिकम्, स्नेहस्तु अम्भसि एव स्निग्धप्रत्ययहेतुः' इत्यादिप्रक्रिया पृथिव्यादीनामभावनिषेधात् तद्गतरूपादिनिषेधाच्च निषिद्धैव, तन्न्यायस्य अत्रापि समानत्वात्।

संस्कारस्तु त्रिविधः—वेगः भावना स्थितस्थापकश्चेति—अभ्युपगमः। तत्र वेगाख्यः पृथिव्य-तेजो-वायु-मनस्सु मूर्तिमद्द्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशेषापेक्षात् कर्मणः समुत्पद्यते नियतदिक्क्रियाप्रबन्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च, तत्र शरीरादिप्रयत्नविशेषादिर्भूतकर्मविशेषनिमित्तः—यस्माद् इषोः अन्तराले प्रतानः—स च नियतदिक्क्रियाकार्यसंबन्धोन्नीयमानसद्भावः लोष्टादिषु [illegible] वेगाख्यः संस्कारः। भावनाख्यः पुनः आत्मगुणः ज्ञानजः ज्ञानहेतुश्च दृष्टानुभूतश्रुतेष्वर्थेषु स्मृति-प्रत्यभिज्ञानकार्योन्नीयमानसद्भावः। मूर्तिमद्द्रव्यगुणः स्थितस्थापको घनावयवसंनिवेशविशिष्टं स्वमाश्रयं कालान्तरस्थायिनमन्यथा व्यवस्थितमपि प्रयत्नतः पूर्ववद् यथावस्थितं स्थापयतीति कृत्वा, दृश्यते च तालपत्रादेः प्रभूततरकालसंवेष्टितस्य प्रसारितमुक्तस्य पुनस्तथैव अवस्थानं संस्कारवशात् एवं धनुः-शाखा-शृङ्ग-दन्तादिषु भुग्नावर्तितेषु च [illegible] प्रतीति [illegible] सिद्धः। अत्रोच्यते, [illegible]

[illegible]

तदभावे तस्या अपि अभावात्। तथाहि–ये यदाश्रितास्ते तस्याऽभावे अवस्थितिं न प्रतिलभन्ते, यथा कुड्याभावे चित्रादयः, आश्रिताश्च परेण आत्मनि संस्कारादयोऽभ्युपगम्यन्ते इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः। स्थितस्थापकस्तु संस्कारः अत्यन्तमसंगत एव। तथाहि–असौ किं स्वयमस्थिरस्वभावं भावं स्थापयति, उत स्थिरस्वभावमिति पक्षद्वयम्। यदि अस्थिरस्वभावम् तदा क्षणादूर्ध्वं तस्य स्वयमेव अभावात् कस्य असौ स्थापकः स्यात्? अथ द्वितीयः पक्षः तदा स्थिरे स्वभावेऽवस्थितानां भावानां तादूप्यादेव अवस्थानात् किमकिञ्चित्करस्थापककल्पनया? न च क्षणिकत्वेऽपि भावानामेकक्षणावस्थितानु(यु)त्तरकालं स्थापकस्य सामर्थ्यमङ्गीक्रियते यतः स्वरूपप्रतिलम्भलक्षणेन भावानां स्थितिरुच्यते न पुनर्लब्धात्मसत्ताकानाम् आत्मरूपसंधारणलक्षणोत्तरकालं स्वयं चलात्मन उत्तरकालमवस्थानासंभवात् संभवे वा न कदाचिदपि निवृत्तिः स्यात् पूर्ववत् पश्चादपि अविशिष्टत्वात् अनन्तस्वभावत्वप्रसङ्गाच्च। न च क्षणस्थितिप्रबन्धेऽपि स्थापकस्य सामर्थ्यसिद्धिः, पूर्वपूर्वकारणसामर्थ्यकृतस्य उत्तरोत्तरकार्यप्रबन्धस्य संस्कारमन्तरेणापि सिद्धेः, अक्षणिकस्य तु अन्यथान्वासंभवात् स्वत एव स्थितिरिति न तत्रापि स्थापकोपयोगः। न च संस्कारस्य क्षणोत्पादनेऽपि सामर्थ्यम् प्राक्तनक्षणमन्तरेण अपरस्य तत्राऽपि सामर्थ्यानवधारणात्। तथाहि–प्रमाणाधीना प्रमेयव्यवस्था। न च प्रसिद्धकारणव्यतिरेकेण परस्यादिषु अन्वयाऽनुपलम्भाभ्यां चक्षुरादिवद् वा कार्यव्यतिरेकतोऽपरस्य सामर्थ्यावधारणम्। न च अदृष्टसामर्थ्यस्यापि हेतुत्वकल्पना अतिप्रसङ्गात् तदपरापरहेतुप्रकल्पनाया अनिवृत्तेः। न च संस्कार उत्पादकहेतुरिष्टः परैः किन्तु उत्पन्नस्य पश्चादुत्तरकालं स्थापको गुणः, तत्र च अस्य अकिञ्चित्करत्वमेवेति प्राग् व्यवस्थापितम्।

"कर्तृफलदायी आत्मगुण आत्म-मनःसंयोगजः स्वकार्यविरोधी धर्माऽधर्मरूपतया भेदवान् अदृष्टाख्यो गुणः" [   ] इति वैशेषिकैः धर्माऽधर्मस्वरूपगुणवर्णनम्। "कर्तुः प्रिय-हित-मोक्षहेतुर्धर्मः अधर्मस्तु अप्रिय-प्रत्यवायहेतुः" [प्रशस्तपा० भा० पृ० ७७२ पं० ८ तथा पृ० २८० पं० ४] इति, तैस्तत्र तत्समवायिकारणस्य आत्मनो मननः आत्म-मनःसंयोगस्य च निमित्ताऽसमवायिकारणत्वेन अभ्युपगतस्य निषेधात् कारणाभावे कार्यस्यापि अभावात् सर्वमनुपपन्नम्।

शब्दस्तु आकाशगुणत्वेन अभिमतः तस्य च आकाशगुणत्वं प्राग् निषिद्धमिति न चतुर्विंशतिरपि गुणाः प्रमाणोपपत्तिकाः॥

[निरूपणपुरस्सरं कर्मपदार्थस्य खण्डनम्]

उत्क्षेपणादीनि पञ्च कर्माणि। तथा च सूत्रम्–"उत्क्षेपणम् अपक्षेपणम् आकुञ्चनम् प्रसारणम्

---

१ "स्थितस्थापकसंस्कारो न युक्तः क्षणभङ्गतः। स्थितार्थेऽभवात् भावे तद्रूप्येणैव संस्थितिः॥"

—तत्त्वसं० का० ६८७ पृ० २१६।

२–तात्पर्यसूत्रका–आ० हा० सि०। "यद्यपि स्यात् क्षणिकेऽपि सर्वभावस्य स्वभावानन्तर्यस्थिती प्रबन्धेन ... तस्य सामर्थ्यमुच्यत इति"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २१० पं० १।

३ "क्षणं स्थितस्वभावानां स्थापनोऽपि न यत्नतः। पूर्वपूर्वप्रभावाच्च प्रबन्धेनानुवर्तनम्"॥—तत्त्वसं० का० ६८८ पृ० २१०।

४ "स्वात्मोत्पत्त्यानेव तस्यासौ स्थापकस्ततः। न चास्य दृष्टं हेतुत्वं संस्कारोऽन्योऽपि वा कोऽपि॥

उत्पन्नस्यैव चेदेष तस्यैव स्थापको गुणः। गुणसंस्कारमेव सर्वथापि न संस्थितिः"॥—तत्त्वसं० का० ६८९-६९० पृ० २१०।

५ "अथ अदृष्टसामर्थ्यस्यापि हेतुत्वं कल्प्यते तदा चैतन्यः अन्योऽपि वा कुत्र–कल्पनीयस्त्वेकहेतुः" इत्यादि—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २१० पं० २०।

६ "कर्तृफलदाय्यात्मगुण आत्ममनःसंयोगज स्वकार्यविरोध्यदृष्टम्। तच्च द्विविधं धर्मोऽधर्मश्चेति। तत्र धर्मः कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुः अधर्मस्त्वप्रियप्रत्यवायहेतुरिति परोक्तलक्षणम्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २११ पं० ..।

७ "मनोयोगात्मनो पूर्वं निरस्तं च निरात्मवान्। परोपकल्पितौ तौ कस्मादनुत्पत्ती"॥—तत्त्वसं० का० ६९१ पृ० २११।

८ पृ० २१६ पं० ११। ९ "उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि इत्यादि—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २११ पं० १४।

गमनमिति कर्माणि" [वैशेषिकसू० १-१-७] इति। तत्र उत्क्षेपणं यद् ऊर्ध्वाधःप्रदेशाभ्यां संयोग-विभागकारणं कर्म उत्पद्यते। यथा-शरीरावयवे तत्संबन्धे वा मूर्तिमति मुशलादौ द्रव्ये ऊर्ध्वभागिभः आकाशादेशाद्यैः संयोगकारणम् अधोदिग्भागावच्छिन्नैश्च तैर्विभागकारणं प्रयत्नादिवशात् कर्म तद् उत्क्षेपणमुच्यते, एतद्विपरीतसंयोग-विभागकारणं च कर्म अपक्षेपणम्, ऋजुद्रव्यस्य कुटिलत्वकारणं
५ च कर्म आकुञ्चनम् यथा-ऋजुनोऽङ्गुल्यादिद्रव्यस्य ये अग्रावयवास्तेषामाकाशादिभिः स्वसंयोगिभिर्विभागे सति मूलप्रदेशैश्च संयोगे सति येन कर्मणा अङ्गुल्यादिरवयवी कुटिलः संपद्यते तद् आकुञ्चनम्, एतद्विपर्ययेण तु संयोग-विभागोत्पत्तौ येन अवयवी ऋजुः संपद्यते तत् कर्म प्रसारणम्, अनियतदिग्देशैर्यत् संयोग-विभागकारणं तद् गमनम्। चतुष्प्रकारमपि उत्क्षेपणादिकं कर्म नियतदिग्देशसंयोग-विभागकारणम्। अनियतदिग्भिस्तु भावैः संयोग-विभागकारणं तु कर्म गमनम् तेन
१० भ्रमण-स्पन्दन-रेचनादीनामपि गमन एव अन्तर्भावात् पञ्चैव कर्माणि। मूर्तिमद्द्रव्यसंयोग-विभागकार्योपलम्भात् पञ्चविधस्यापि कर्मणोऽनुमानात् प्रसिद्धिः। तथा, अध्यक्षतोऽपि उत्क्षेपणादेः कर्मणः प्रतिपत्तिः इन्द्रियव्यापारेण 'गच्छति' इत्यादिप्रतिपत्त्युत्पत्तेः। तथाच-"संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे कर्म च रूपिसमवायाच्चाक्षुषाणि" [वैशेषिकसू० ४-१-११] इति सूत्रमपि उपपन्नम्।

१५ अत्र संयोग-विभागलक्षणं तावत् तत्कार्यमसिद्धम् तयोः पूर्वमेव निषेधात्। न च मैत्रेलयौत्पाद्यादिभावलक्षणौ तत्कार्यतया संयोग-विभागौ हेतुत्वेन वाच्यौ, तथाविधेन कर्मणा तयोः क्वचिद् अन्वयासिद्धेः अनैकान्तिकताप्रसक्तेः। साध्यविपर्ययेण च हेतोर्व्याप्तेर्विरुद्धताऽपि वक्तव्या। सिद्धसाध्यता च कारणमात्राऽस्तित्वे साध्ये तथाविधसंयोग-विभागकारणत्वेन वाय्वादेरभीष्टेः। कारणविशेषास्तित्वे च साध्ये अनुमानबाधः प्रतिज्ञायाः। तथाहि-पदार्थानां क्रिया भवन्ती क्षणिकानां
२० भवेत्, अक्षणिकानां वा? न तावत् क्षणिकानाम् उत्पत्तिदेश एव तेषां ध्वंसाद् देशान्तरप्राप्त्यसंभवात्। तथाहि-यो यत्र देशे ध्वंसते स न तदन्यदेशमाक्रामति, यथा प्रदीपादिः, जन्मदेश एव च ध्वंसन्ते सर्वभावा इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः। न च असिद्धताऽस्य हेतोः अन्यस्य क्षणिकत्वायोगात्। अथ यदि नाम भावानां क्षणिकता इष्यते तथापि उत्पत्तिकाल एव किं नैषां क्रिया भवति? नैतत्। यतः पाश्चात्यदेशविश्लेषे पुरोवर्तिदेशश्लेषे च सति गन्ता भावो भवति आकाशादिः। न च एक-
२५ क्षणमात्रभाविनः क्रियाकालविलम्बः संभवति येन प्राक्तनदेशपरिहारेण अपरदेशमाक्रामेत् सत्ताकाल एव ध्वंसपरीतत्वात्। तत्र जन्मकालभाविनी क्रिया, नाऽपि पूर्वोत्तरयोः कालयोः, तस्यैव तत्राऽभावात्। अतः उत्पत्तिक्षणात् परतः क्षणमपि यो न व्यवतिष्ठेत तस्य नास्ति विदूरतरदेशोल्लङ्घनसंभवः परमाणुमात्रप्रदेशसंक्रमणमपि नास्तीति कुतः क्षणिकस्य क्रिया। नापि अक्षणिकस्य

---

१ "[illegible] प्रदेशैः संयोगकारणमधोभागिभिश्च प्रदेशैः विभागकारणं [illegible]" इत्यादि—[illegible] पृ० २११ पं० १०-पृ० २१२।

२ "[illegible]"—[illegible] पृ० २११ पं० १५।

३ "[illegible]"—वैशेषिकसू० ४-१-११।

४ पृ० ६०१ पं० १०—।

५ "[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible] " ॥
—[illegible] पृ० २११-२१२ २११।

६ [illegible]

७ [illegible] पृ० २११।

असौ युक्ता, यत एकरूपं हि सर्वदा वस्तु अक्षणिकमुच्यते न च तस्य आकाशवत् सर्वदाऽविशिष्टस्व
क्रियासमावेशो युक्तः । तथाहि-यत् सर्वदा अविशिष्टं न तस्य क्रियासंभवः, यथा आकाशस्य, अ
शिष्टं च वस्तु अक्षणिकाभिमतं सर्वदा इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिप्रसङ्गः । न च अक्षणिक
अविशिष्टत्वेऽपि प्रकृत्यैव गन्तृरूपत्वात् क्रियावत्त्वं भविष्यतीत्यनैकान्तिकता हेतोराशङ्कनीया, यं
यदि प्रकृत्यैव उत्क्षेपणादिक्रियायोगिनो भावा भवेयुस्तदा नैषां कदाचिन्निश्चलता भवेत् सर्वदा ए
रूपत्वात् । अथ अगन्तृरूपताऽप्येषामङ्गीक्रियते तथासति सर्वदा एकरूपत्वाद् आकाशवद् अगन्ता
भवेयुः । एवं च गत्यवस्थायामपि अचलत्वमेषां प्रसक्तम् अपरित्यक्ताऽगतिरूपत्वात् निश्चला
स्यात् । अथ उभयरूपत्वाद् एषामयमदोषः, नैवम्, गन्तृत्वाऽगन्तृत्वविरुद्धधर्माध्यासादेकत
त्वादतिप्रसक्तेः क्षणिकतैव आपद्येत भिन्नस्वभावयोश्चलाऽनिलयोरिव अत्यन्तभेदात् । अनुमा
विरोधवद् अध्यक्षविरोधोऽपि प्रतिज्ञायाः । तथाहि-यद् उपलब्धिलक्षणप्राप्तं सद् नोपलभ्यते न त
प्रेक्षावता 'सत्' इति व्यवहर्तव्यम्, यथा क्वचित् प्रदेशविशेषेऽनुपलभ्यमानो घटः, नोपलभ्यते
विशिष्टरूपादिव्यतिरेकेण कर्मेति स्वभावानुपलब्धिः । तथा, तथादेशान्तरावष्टम्भोत्पादिरूपादिव्यति
रेकेण इन्द्रियसाने कर्मणः प्रतिभासानुपलक्षणात् उत्क्षेपणादिशुद्धेस्तु साभिजल्पत्वात् अनध्यक्षत्वम्
न चेयं कर्मपदार्थानुभवसामर्थ्यभाविनी, यथासंकेतं तथोत्पद्यमानरूपादिपदोन उपपत्तेः 'निर्गाऽनिर्
योगत्वयोगाद्' इति प्रतिपादनात्, गतिव्यवहारस्तु लोके अपरापरैरन्तर्योत्पत्तिमत्पदार्थोपलम्
'स एवायं गच्छति' इति भ्रान्त्युत्पत्तेः प्रदीपादौ गमनव्यवहारवद् उपपद्यत एव न हि प्रदीपादिः
एव देशान्तरमाक्रामति षट्क्षणस्थायित्वेन तस्य परैरभ्युपगमात् "सकारणसंयम्यकालः प्रथमः तत
स्वसामान्याभिव्यक्तिकालः ततः अवयवकर्मकालः ततः अवयवविभागकालः ततः स्वारम्भकावयव
संयोगविनाशकालः ततः द्रव्यविनाशकालः" [   ] इति प्रक्रियोपवर्णनात् । अथ
तथापि 'स एव प्रदीपादिर्गच्छति' इति व्यवहारप्रवृत्तिरिति भ्रान्त्यासिद्धाद् व्यवहारमात्राद् द्रव्य
व्यतिरिक्तकर्माभ्युपगमः श्रेयानिति स्थितम् ॥

[निरूपणपुरस्सरं सामान्यपदार्थस्य खण्डनम्]

परोऽपरश्चेत्यभिन्नं सामान्यमपि द्रव्य-गुण-कर्मात्मकपदार्थत्रयाश्रितत्वाभ्युपगमात् तन्निर
साश्रितत्त्वमेव आश्रयमन्तरेण आश्रितानां सद्भावेऽनाश्रितत्वप्रसङ्गात् । तथापि परेषां तन्नाभिनिवे

---

१ "यदि गत्यादिरूपं तत्कृता गमनादयः । तदा स्युः सर्वदैवं वा तद्विहीन निश्चलम् ॥
यस्माद् गत्यापरत्वेऽपि प्रभुत्वस्य हे ध्रुवम् । अत्यक्तपूर्वरूपत्वाद् गत्यादुदयकालवत्" ॥

—तत्त्वसं० का० ६९९-७०० पृ० २१३ ।

२ "अथागन्त्रादिरूपं तत्कृताऽगमनादयः । तदा स्युः क्षणमप्येकं नैव प्रसन्दवद् भवेत् ॥
यस्माद् गत्यादिभावेऽपि निश्चलात्मकमेव तत् । अत्यक्तपूर्वरूपत्वाद् निश्चलात्मककालवत्" ॥

—तत्त्वसं० का० ७०१-७०२ पृ० २१४ ।

३ "यदि च स्यादगन्ताऽप्येकदा चान्यथा पुनः । परस्परविभिन्नात्मसंगतेर्भिन्नता भवेत् ॥
अत्यन्तभिन्नात्मानौ तावित्ति व्यवसीयते । विरुद्धधर्मसङ्गित्वात् चलनिश्चलवस्तुवत्" ॥

—तत्त्वसं० का० ७०३-७०४ पृ० २१४ ।

४ "दृश्यत्वाभिमतं कर्म न वस्तुव्यतिरेकि च । दृश्यते सोऽपि नैवास्य सत्त्व युक्त्यनुपातिनी ॥
अस्थिरे वा स्थिरे वैवं चलादीनामसंभवः । प्रागनाऽपरदेशाभ्यां विभागव्यपयोगत" ॥

—तत्त्वसं० का० ७०५-७०६ पृ० २१४-२१५ ।

५ तथा देशा-ओ० मो० । "न हि रूपादेस्तथादेशान्तरावष्टम्भेनोत्पद्यमानस्य व्यतिरेकेण"—तत्त्वसं० पञ्जि
पृ० २१५ पं० ३ ।

६ "देशान्तरोपलम्भेषु नैरन्तर्येण जन्मनः । समानापरवस्तूनां गतिभ्रान्तिः प्रदीपवत्" ॥

—तत्त्वसं० का० ७०७ पृ० २१५ ।

७ "द्रव्यादिषु निषिद्धेषु जातयोऽपि निराकृताः । पदार्थत्रयवृत्ता हि सर्वास्ताः परिकल्पिताः" ॥

—तत्त्वसं० का० ७०८ पृ० २१६ ।

इति पराभ्युपगमप्रदर्शनपूर्वकः तद्विशेषप्रतिषेधप्रदर्शनमार्गः प्रदर्श्यते–तत्र सामान्यं द्विविधम्–परम् अपरं च । परं सत्ताख्यम् तच्च त्रिषु द्रव्य-गुण–कर्मसु पदार्थेषु अनुवृत्तिप्रत्ययस्यैव कारणत्वात् सामान्यमेव न विशेषः । अपरं तु द्रव्यत्व-गुणत्व–कर्मत्वादिलक्षणम् तच्च स्वाश्रयेषु द्रव्यादिषु अनुवृत्तिप्रत्ययहेतुत्वात् सामान्यमित्युच्यते, स्वाश्रयस्य च विजातीयेभ्यो व्यावृत्तप्रत्ययहेतुतया
५ विशेषणात् सामान्यमपि सद् विशेषसंज्ञां लभते । तथाहि–द्रव्यादिषु 'अगुणः' इत्यादिका या इयं व्यावृत्तबुद्धिरुत्पद्यते तां प्रति एषामेव हेतुत्वं नान्यस्य न हि अगुणत्वादिकमपरमस्ति, अपेक्षाभेदाच्च एकस्य सामान्यविशेषभावो न विरुध्यते यद्वा सामान्यरूपता मुख्यतः विशेषसंज्ञा तु उपचारतः विशेषाणामिव द्रव्यत्वादीनामपि व्यावृत्तबुद्धिनिबन्धनत्वात् । सामान्यस्य चेन्द्रियान्वयव्यतिरेकानु-विधाय्यनुगताकारप्रत्ययग्राह्यत्वाद् अध्यक्षतः प्रसिद्धिः । तथा, अनुमानोच्च । तथाहि–व्यावृत्तेषु
१० खण्ड-मुण्ड–शाबलेयादिषु अनुगताकारः प्रत्ययः तद्व्यतिरिक्तानुगताकारनिमित्तनिबन्धनः, व्यावृत्तेषु अनुगताकारप्रत्ययत्वात्, यो यो व्यावृत्तेषु अनुगताकारः प्रत्ययः स स तद्व्यतिरिक्तानुगत-निमित्तनिबन्धनः यथा चर्म-चीर–कम्बलेषु नीलप्रत्ययः, तथा चायं शाबलेयादिषु 'गौः' 'गौः' इति प्रत्ययः, तस्माद् तद्व्यतिरिक्तानुगतनिमित्तनिबन्धन इति । तथाहि–नेदंमनुस्यूताकारज्ञानं पिण्डेषु निर्हेतुकम्, कादाचित्कत्वात् । न शाबलेयादिपिण्डनिबन्धनम्, तेषां व्यावृत्तरूपत्वात् अस्य च अनु-
१५ गतरूपत्वात् । यदि चेदं पिण्डमात्रप्रभवं स्यात् तदा शाबलेयादिष्विव कर्कादिष्वपि 'गौः' 'गौः' इति उल्लेखेन उत्पद्येत पिण्डरूपतायास्तेष्वपि अविशेषात् । अथ वाह-दोहाद्यर्थक्रियानिबन्धनेऽयं तेषु 'गौः' 'गौः' इतिप्रत्ययहेतुता, न; तदर्थक्रियाऽभावेऽपि वत्सादौ गोबुद्धिप्रवृत्तेः महिष्यादौ तत्सद्भावेऽपि च अप्रवृत्तेः । किञ्च, अर्थक्रियाया अपि प्रतिव्यक्तिभेदे कुतोऽनुगताकारज्ञानहेतुता ? अभेदे सिद्धमनुगतनिमित्तनिबन्धनत्वमस्य ज्ञानस्य । न चास्य बाधितत्वम्, सर्वदा सर्वत्र सर्वप्रमातॄणां
२० शाबलेयादिषु अनुस्यूतप्रत्ययोपपत्तेः । न च दुष्टकारणप्रभवत्वम्, विशदनेत्राणामप्यनुस्यूताकारस्य प्रत्ययस्य प्रतिभासनात् । न च संशय-विपर्ययाऽनध्यवसायरूपतयाऽस्योत्पत्तिः, तद्वैपरीत्येन अस्य प्रतिभासनात् । न चैवंभूतस्याऽपि प्रत्ययस्य अप्रमाणता स्वलक्षणविषयस्यापि तस्य अप्रमाणता-प्रसक्तेः । न च प्रतीयमानस्यापि अनुगतप्रत्ययस्य अपलापः शक्यते कर्तुम्, सर्वप्रत्ययापलापप्रसक्तेः । तस्मात् अनुगतप्रत्ययनिमित्तत्वात् सामान्यसद्भावः सिद्धः ।

२५ अत्र प्रतिविधीयते–यत् तावदुक्तम् 'प्रत्यक्षप्रत्ययादेव सामान्यं प्रतीयते' इति, तदयुक्तम् । शाबलेयादिव्यतिरेकेण अपरस्य अनुगताकारस्य प्रत्यक्षप्रत्यये सामान्यस्य अप्रतिभासनात् । न हि आत्मान्तरेण शाबलेयादिषु व्यवस्थितं गुणवत्कण्ठे गुण इव भिन्नमनुगताकारं सामान्यं केनचिदुपलभ्यते

---

१ "[illegible] । सामान्यमेव [illegible] ॥
[illegible] ॥
[illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० [illegible] पृ० [illegible] ।

"[illegible] ॥"
—तत्त्वसं० का० [illegible] पृ० [illegible] ।

२ "[illegible] ॥"
—तत्त्वसं० का० [illegible] पृ० [illegible] ।

३ [illegible] (का० [illegible] पृ० [illegible])
[illegible]

४ [illegible]

[illegible]

५ [illegible]

'गौः' 'गौः' इति विकल्पज्ञानेनापि त एव समानाकाराः शाबलेयादयो बहिर्व्यवस्थिता अवसीयन्ते
अन्तश्च शब्दोल्लेखः, न पुनस्तद्भिन्नमपरं गोत्वम्। तत्र निर्विकल्पकेन सविकल्पकेन वाऽध्यक्षेण सामान्यं
व्यवस्थापयितुं शक्यम्। यदपि 'कार्यभूतानुगतप्रत्ययेन अनुमानतः सामान्यव्यवस्थापनम्, तदप्य-
संगतम्; तस्य प्रत्ययहेतुत्वेन प्रमाणतोऽनिश्चयात्, तथा हि अनुगताकारज्ञानस्य निर्निमित्तस्य
असंभवात् केनचिन्निमित्तेन भाव्यम् इत्येतावन्मात्रं सिध्यति। तच्च सामान्यम् अन्यद् वेति न निश्चयो ५
भवताम्। कार्यान्वय-व्यतिरेकाभ्यां च कारणत्वावधारणम्, पिण्डानां च विज्ञानजन्मनि ततः
सामर्थ्यं विशेषप्रत्यये सिद्धमिति इहापि तेषामेव सामर्थ्यप्रकल्पनम्, न; सामान्यस्य तस्य क्वचिदपि
सामर्थ्यानवधारणात्। तथाहि-पिण्डसद्भावे अनुगताकारं ज्ञानमुपलभ्यते तदभावे न इति परस्-
परसप्रत्ययावसेयानां तेषामेव तन्निमित्तता कल्पनीया। यदपि
न स्यात् तज्जन्मनि' इत्यभिधानम्, तदपि असंगतम्; यतो येष
नामेव पटजन्मनि हेतुत्वम् न कपालादीनाम् तथा शाबलेयादी
सामर्थ्यं भविष्यति कयाचिद् युक्त्या न कर्कादीनाम्, यथा वा गुडूच्यादेरेव ज्वरादिशमने सामर्थ्यं
प्रतीयते न दध्यादेर्वस्तुरूपतयाऽविशेषेऽपि तथा प्रकृतेऽपि भविष्यतीति न पर्यनुयोगो युक्तः। किञ्च,
सामान्यं परेण मूर्तमभ्युपगम्यते, अमूर्तं वा? यदि अमूर्तम् न सामान्यं स्याद् रूपवत्। अथ मूर्तम्
तथा च न सामान्यं घटादिवत्। तथा, यदि अनंशं सामान्यमभ्युपगम्यते तर्हि न सामान्यम् अनंश- १५
त्वात् परमाणुवत्, सांशत्वेऽपि न सामान्यम् घटवत्। किञ्च, यदि पिण्डेभ्यो भिन्नं सामान्यम्
भेदेन एव उपलभ्येत घटादिभ्य इव पटः। न च एकान्ततो व्यक्तिभ्यः सामान्यस्य भेदे 'गोर्गोत्वम्'
इति व्यपदेशोपपत्तिः संबन्धाभावात्, समवायस्य सर्वसंबन्धत्वेन नियामकत्वाभावात्। व्यक्तिभ्यस्त-
स्याऽभेदे अन्यत्राऽननुयायित्वाद् न सामान्यरूपता पिण्डस्वरूपवत्। न च भेदेन व्यक्तिभ्यस्तस्याऽ-
नुपलक्षणं भिन्नप्रतिभासविषयत्वाद् असिद्धम्, बुद्धिभेदस्य व्यक्तिनिमित्तत्वेन प्रतिपादनात्। किञ्च, २०
यदि सामान्यबुद्धिर्व्यक्तिभिन्नसामान्यनिबन्धना भवेत् तदा व्यक्त्यग्रहणेऽपि भवेत् अश्वबुद्धिवद्
गोपिण्डाग्रहणे, न च कदाचित् तथा भवेत्। ततो न व्यक्तिव्यतिरिक्तसामान्यसद्भावः। अथ आधार-
प्रतिपत्तिमन्तरेण आधेयप्रतिपत्तिर्न भवतीति तद्ग्रहे एव तद्ग्रहः नाऽभावात्, अन्यथा कुण्डाद्या-
धारप्रतिपत्तिमन्तरेण बदराद्याधेयस्य अप्रतिपत्तेः तस्याप्यभाव एव स्यात्, न; बदरादेः प्रतिनियता-
धारमन्तरेणापि स्वरूपेणोपलब्धेर्नाभावः गोत्वादेस्तु प्रतिनियतपिण्डोपलम्भमन्तरेण स्वरूपेण कदा- २५
चनाऽपि अनुपलब्धेरभाव एव, तेन 'तदग्रहे तद्बुद्ध्यभावात् इत्यत्र सामान्याभिव्यञ्जकपिण्डग्रहण
एव तदभिव्यङ्ग्यसामान्यबुद्धिसद्भावात्-प्रकाशाग्रहण एव गृह्यमाणघटादिस्वरूपवत्-सामान्यस्यापि
सत्त्वम्' इति यदुक्तम् तन्निरस्तं भवति घटनिमित्तघटबुद्धिवत् सामान्यनिबन्धनत्वेन तद्बुद्धेरसिद्धेः।
किञ्च, सामान्यं निराधारं वा अभ्युपगम्येत, आधारवद् वा? यदि निराधारम् न सामान्यं स्यात्
अनाधारत्वात् शशशृङ्गवत्। आधारवत्त्वेऽपि तस्य तत्र वृत्त्यनुपपत्तिः तथाहि-तत्र एकदेशेन वा ३०
तत्र वृत्तिर्भवेत्, सर्वात्मना वा? सर्वात्मना वृत्तौ एकस्मिन्नेव पिण्डे सर्वात्मना परिसमाप्तत्वाद्
यावन्तः पिण्डाः तावन्ति सामान्यानि स्युः, न वा सामान्यम् एकपिण्डवृत्तित्वाद् रूपादिवत्। एक-
देशवृत्तावपि न सामान्यं स्यात् सामान्यस्य निरंशत्वेन एकदेशासंभवात्, संभवेऽपि ते ततो भिन्ना
वा स्युः, अभिन्ना वा? यदि भिन्नास्तदा तेषु सामान्यं वर्तते, उत नेति? यदि वर्तते तदा किं सर्वा-
त्मना, उत एकदेशेन? यदि सर्वात्मना तावत्सामान्यप्रसक्तिः प्रत्येकमेकदेशे तस्य परिसमाप्तत्वात्, ३५
न वा सामान्यम् प्रदेशवृत्तित्वाद् घटवत्। अथ एकदेशेन, एकदेशेषु वृत्तिस्तदा तेऽपि एकदेशा
यदि ततो भिन्नास्तदा तेष्वपि अपरैकदेशावष्टम्भाद् वृत्तिरिति अनवस्थाप्रसक्तिः। अथ अभिन्नास्तदा
तेषां सामान्यरूपत्वात् तावन्ति सामान्यानि स्युः। न च सामान्यात्मकानां तेषां कल्पना युक्ता
येन तैः पिण्डेषु सामान्यं वर्तेत नहि घटत्वादिसामान्यं गोत्वस्य पिण्डवृत्तौ करणत्वेन उपलब्धम्।

---

१ अतश्च प्र० आ०। २ पृ० १८८ पं० १०। ३ पृ० १८८ पं० १५-१६। ४ यदा घटादि-भां० प्रो०। यथा यदि क-पृ० आ० हा० वि०। ५ वा नह्-वा० का०।

६ "यदनेकावृत्ति गोत्वं तत् किं प्रतिपिण्डं परिसमाप्त्या वर्तेत अथैकदेशेनेति?" इत्यादि तत्त्वार्थश्लोकवार्तिके अष्ट-
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका-२-२-६५ पृ० ३१०-३११।

न च सामान्यस्य अनुवृत्त्येकरूपत्वात् कार्त्स्न्यैकदेशशब्दयोस्तत्राऽप्रवृत्तिः, निरवयवैकरूपेऽपि व्याप्त्यव्याप्तिशब्दयोर्भवतैव प्रवृत्त्यभ्युपगमात् तत्र च कृत्स्नैकदेशवृत्तिपक्षोक्तदोषाणां समानत्वात् अपरस्य चात्र वक्तव्यस्य पूर्वमेव निषिद्धत्वात्। अत्र वृत्त्यनुपपत्तेः सामान्यस्य सत्त्वमभ्युपगन्तुं युक्तम्।

किञ्च, पिण्डोत्पत्तिकाले किं गवात्मकेन पिण्डेन गोत्वं संबध्यते, उत अगवात्मकेन ?
५ आद्यः पक्षस्तदा गोत्वसंबन्धात् प्राक् पिण्डस्य यद्यपरगोत्वसंबन्धाद् गोरूपता तदा अनव-
स्थाप्रसक्तिः । अथ तत्संबन्धमन्तरेणाऽपि तस्य गोरूपता तदा गोत्वसंबन्धवैयर्थ्यम् तमन्तरेण
गोपिण्डस्य प्रागेव गोरूपत्वात्। अथ अगोरूपेण तदाऽगोरूपत्वाविशेषात् अश्वादिपिण्डैरपि गो-
त्वसंबन्धप्रसक्तिः इति अश्वादयोऽपि गोरूपाः स्युः। न च अगोरूपत्वाविशेषेऽपि गोत्वसंबन्धात्
शाबलेयादिभिरेव गोत्वं संबध्यते न कर्कादिभिरिति वक्तव्यम्, नियमहेतोरभावात् । अथ
१० लक्षणभेदो नियमहेतुः। तथाहि-यत्र ककुदादीनि उपलक्षणानि पिण्डे तत्रैव गोत्वं वर्तते न केस-
पुपलक्षयति, असदेतत्, गोत्वादेरचेतनत्वेन निरभिप्रायस्य प्रदर्शितोपलक्षणप्रत्यभिज्ञानवद्
अन्यपरिहारेण प्रतिनियताधारवृत्तित्वानुपपत्तेः। न च ककुदाद्युपलक्षणयोगिनः पिण्डादेः सा-
गोत्वाधारसामर्थ्यं प्रतिनियतं निमित्तं कल्पयितुं युक्तम्, यतो यया शक्त्या ककुदादिमन्तः पि-
विशेषा गोत्वसामान्यं विजातीयपिण्डव्यवच्छेदेन स्वात्मनि व्यवस्थापयन्ति तयैव 'गौः' 'गौः' इत्य-
१५ नुगताकारज्ञानहेतवोऽपि भविष्यन्तीति किमन्तर्गडुसामान्यप्रकल्पनया। न च अदृष्टं गोत्वादेः सा-
मान्यस्य प्रतिनियतव्यक्तिवृत्तिनिमित्तं कल्पनीयम्, तत्रापि अस्य दूषणस्य समानत्वात् । यदपि 'अनु-
गताकारं ज्ञानं सामान्यमन्तरेण असंभवि' इति, तत्रापि किं यत्रानुगतं ज्ञानं तत्र सामान्यसंभ-
प्रतिपादने, आहोस्वित् यत्र सामान्यसंभवस्तत्र अनुगतं ज्ञानमिति ? तत्र यदि आद्यः पक्षः, स न
युक्तः, यतो गोत्वादिसामान्येषु बहुषु 'सामान्यम्' 'सामान्यम्' इति अनुगताकारप्रत्ययप्रवृत्तेः अन-
२० सामान्यप्रकल्पनाप्रसक्तिः स्यात्। तथा, प्रागभावादिष्वपि अभावेषु 'अभावः' 'अभावः' इत्यनुग-
तप्रत्ययप्रवृत्तिदर्शने, न च परैः अभावसामान्यमभ्युपगतमिति व्यभिचारः। न च सामान्यादिषु अनु-
गतप्रत्ययस्य गौणत्वान्न व्यभिचारः, अस्खलद्वृत्तित्वेन गौणत्वस्य अतिदूरोत्सारितत्वात् । अथ च
सामान्यं तथानुगतप्रत्ययकरणात्, न, पाचकादिषु तदभावेऽपि अनुगतप्रत्ययप्रवृत्तेः । न च तथा
पचनक्रियानिमित्तोऽयं प्रत्ययः तस्याः प्रतिव्यक्ति भिन्नत्वात् तत्सामान्यनिमित्तत्वे प्रागेव तत्प्रत्यय-
२५ प्रवृत्तिर्भवेत् सामान्यस्य नित्यत्वेन तदापि तद्योगाभावात्। अभिव्यञ्जकक्रियाभावात् प्राक् अनभि-
व्यक्तत्वात् तत्सामान्यस्य न तत्प्रत्ययोत्पत्तिरिति चेत्, पचनक्रियानिवृत्तावपि अभिव्यञ्जकाभावेन
अनभिव्यक्तत्वात् तत्सामान्यात् तत्प्रत्ययोत्पत्तिर्न स्यात् अनुगतप्रत्ययं विनष्टस्यापि अभिव्यञ्जकस्य अभि-
व्यञ्जकत्वायोगात्। अथ एकदा अभिव्यक्तस्य तत्सामान्यस्य नित्यत्वेन सर्वदा अभिव्यक्तत्वात् उत्प-
त्तेः तत्प्रत्ययोत्पत्तिरिष्टैव पचनक्रियायाः प्रागपि तत्सामान्यस्य एकदाऽभिव्यक्तत्वात् तत्प्र-
३० त्ययोत्पत्तिः स्यात्। अथ प्राक् न तस्याऽभिव्यक्तिरस्ति अभिव्यक्तताऽभिव्यञ्जकसंबन्धयोगात् [illegible]
[illegible] । अथ व्यक्तिप्रतिभासानन्तरं यत्र सामान्यस्य प्रतिभास
इति न [illegible] प्राक् पश्चाद् वा [illegible] नहि व्यक्तिप्रतिभासकाले [illegible]
[illegible] अनुगतप्रतिभासस्य न तथा व्यक्तिविलक्षणस्य सामान्यस्य [illegible]
[illegible] अनुगताकारं ज्ञानं [illegible]
३५ [illegible] सामान्यविलक्षणस्य अनुगतज्ञानस्य [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible] सामान्यस्य [illegible]
४० [illegible]
[illegible]
[illegible]

१-[illegible] २-[illegible]

वृत्तिरन्यथा । अथ समवायाख्यया वृत्तिमत्त्वं तस्य उक्तैव, न, तस्याः स्वरूपानिर्देशात् । आश्रयाश्रयिभावलक्षणा स्वरूपम्, न, अस्य पर्यायमात्रत्वात्-वृत्तिमात्रम् समवायः आधाराधेयभावः इति च पर्यायशब्दाः । एतेन तु काल्पनिकेनावृत्तिव्यतिरेकेण लोकप्रसिद्धाऽपरवृत्तिप्रदर्शनम् । सा तु समवायाख्यया स्वतन्त्रपरिभाषिता वृत्तिः सा तु तद्ग्राहकप्रमाणाभावात् सामान्यस्याप्रसिद्धत्वेऽपि यदि च पिण्डेभ्यो व्यतिरिक्तम्-कुण्डव्यतिरिक्तदध्यादिवत्-सामान्यं प्रमाणत उपलभ्येत तदा भेदे सत्य वृत्तिकल्पना स्यात् न च तत् तथोपलभ्यत इत्युक्तं प्राक् । अपि च, उत्पन्ने पिण्डे सामान्यं वर्तते, आहोस्विद् अनुत्पन्ने, उत उत्पद्यमाने इति विकल्पाः । न तावद् अनुत्पन्ने, तस्य पिण्डस्यासत्त्वात् । नापि उत्पन्ने, अगोरूपे अश्वपिण्ड इव तत्र तस्य वृत्त्ययोगात् इत्युक्तत्वात् । नापि उत्पद्यमाने, अनिष्पन्नस्य आधारत्वायोगात् विद्यमानस्वरूपाणामेव कुण्डबदरादीनामाधाराधेयभावदर्शनात् अतः 'य एव पिण्डोत्पत्तिकालः स एव तत्सामान्यसंबन्धसमयः' इति अयुक्तम् अन्यत्र तथाऽदर्शनात् ।

किञ्च, उत्पद्यमानेन पिण्डेन सह सामान्यं संबध्यमानं किमन्यत आगत्य संबध्यते उत पिण्डेन सह उत्पादात्, आहोस्वित् पिण्डोत्पत्तेः प्रागेव तद्देशावस्थानात् इति विकल्पाः । तत्र न तावद् अन्यत आगत्य संबध्यत इति पक्षं आश्रयितुं युक्तः यतः प्राक्तनपिण्डपरित्यागेन तत् तत्र आगच्छति उत अपरित्यागेन इति वाच्यम् । यदि परित्यागेन इति पक्षः स न युक्तः प्राक्तनपिण्डस्य गोत्वपरित्यक्तस्य अगोरूपताप्रसक्तेः । अथ अपरित्यागेन तदा अपरित्यक्तप्राक्तनपिण्डस्य निरंशस्य रूपादेरिव गमनासंभवः न हि अपरित्यक्तप्राक्तनाधाराणां रूपादीनामाधारान्तरसंक्रान्तिः क्वचिदपि उपलब्धा, न च प्राक्तनाधारापरित्यागेऽपि आधारान्तरसंक्रमः सर्पादेरिव सामान्यस्य भविष्यतीति वक्तव्यम्, सामान्यस्य अमूर्तत्वाभ्युपगमात् अमूर्तस्य च रूपादिवत् गमनासंभवात् । न च सर्पवत् पूर्वाधारापरित्यागेन आधारान्तरकोडीकरणे सामान्यरूपता, सदेशस्य घटवत् सामान्यरूपतानुपपत्तेः । न च पिण्डोत्पत्तेः प्राक् तद्देशे तस्य अवस्थानाद् उत्पद्यमाने पिण्डे तस्य वृत्तिरित्यभ्युपगमोऽपि युक्तः निराधारस्य सामान्यस्य तत्र अवस्थानासंभवात् अवस्थाने वा आकाशवत् सामान्यरूपताविरहात् । न च पिण्डेनैव सह उत्पद्यत इति पक्षाश्रयणाऽपि संगता, उत्पत्तिमत्त्वेन तस्य अनित्यत्वप्रसक्तेः अनित्यस्य च ज्वालादिवत् सामान्यरूपताऽयोगात् । न च शाबलेयादिपिण्डस्य सामान्यसंबन्धविकलस्यैव परेण अवस्थानमभ्युपगतमिति सामान्यप्रकल्पना अनेकदोषदुष्टत्वात् असंगतैव । तदुक्तम्—

> "न याति न च तत्रासीदस्ति पश्चान्न चांऽशवत् ।
> जहाति पूर्वं नाधारमहो! व्यसनसंततिः" ॥ [ ]

तथा—

> "एकत्रासौ वर्तते भावरूपेण संबध्यते न च ।
> तद्देशिनं च व्याप्नोति किमप्येतद् महाद्भुतम्" ॥ [ ]

न च गमनादिधर्मविकलस्यापि सामान्यस्य उत्पद्यमानपिण्डसंबन्धो 'गौः' 'गौः' इत्यनुस्यूताकारप्रत्ययात् प्रतीयत एवेति प्रमाणप्रतिपन्ने वस्तुनि विरोधापुद्भावनमसंगतमेवेति वाच्यम्, 'गौः' 'गौः' इत्यनुगताकारप्रत्ययस्य प्रागभावादिषु अभावप्रत्ययवत् सामान्यसंबन्धमन्तरेणाऽपि सिद्धत्वात् किञ्च, पिण्डेभ्यो व्यतिरिक्तं यदि अनुस्यूतमेकं सामान्यमभ्युपगम्येत तदा एकपिण्डोपलम्भे तस्य अविभक्तत्वात् पिण्डान्तरालेऽपि उपलब्धिः स्यात् न हि तस्य एकत्राभिव्यक्तस्य अन्यत्र अनभिव्यक्तस्वरूपता विरुद्धधर्माध्यासतो भेदप्रसक्तेः तथापि अभेदे न किञ्चिद् भिन्नं स्याद् इति सर्वत्र भेदव्यवहारनिवृत्तेः तदपेक्षस्य अभेदव्यवहारस्याऽपि विरहात् सर्वाभावप्रसक्तिः । अथ अन्तराले संयुक्तसमवायसंबन्धस्य उपलम्भहेतोर्व्यञ्जकस्याभावाद् अनुपलम्भः, असदेतत् तत्र तत्सद्भावे प्रमाणाभावात्-यदि हि पिण्डद्वयान्तराले सामान्यस्य कुतश्चित् प्रमाणात् सद्भावः सिद्धः स्यात् तदा अदृश्य

१-अत्र सामान्यचर्चा सर्वाऽप्यन्यत्र—पृ० २३६ पं० ३-पृ० २४१ पं० १ । हेतुबिन्दुटीकालोकप्रकरणे टि० पृ० ३१ पं०-३५ अ० ।

२ 'तदुक्तम्' इत्युक्त्वायं श्लोकः स्याद्वादरत्नाकरे उद्धृतो वर्तते—पृ० ९५५ पं० १८ ।

निमित्तं यथोपवर्णितमुपपद्येताऽपि, न च तत्सद्भावः सिद्ध इति असकृद् आवेदितम् । न च स्वव्यक्तिसर्वगतत्वात् सामान्यस्य अयमदोषः, अन्तराले तस्य अभावे स्वव्यक्तिषु च सद्भावे अनेकत्व प्रसक्तेः तदन्तरेण अन्तराले विच्छिन्नस्य सकलस्वव्यक्तिसंबद्धत्वानुपपत्तेः । यदपि 'अत्र 'अन्तराल' शब्देन किं पिण्डान्तरमश्वादिरूपमभिधीयते, आहोस्विद् मूर्तद्रव्याभावः, उत आकाशादिप्रदेश इति ५ विकल्पाः । यदि अश्वादिपिण्डान्तराभिधानं तदा तत्र गोत्वसामान्यस्य अवृत्तेरग्रहणमुपपन्नमेव न हि यद् यत्र नास्ति तत् तत्र गृह्यत इति परस्याभ्युपगमः अथ आकाशादिदेशस्तदा तत्रापि सामान्यस्य वृत्तेरग्रहणमेव । एवं मूर्तद्रव्याभावेऽपि अग्रहणमभावादेव' इति दूषणाभिधानम्, तदपि असंगतमेव । एवं दूषणाभिधाने सर्वत्र तदभिधानानिवृत्तेः । तथाहि—'घटद्वयान्तराले पटादि द्रव्यस्य अग्रहणाद् अभावः' इत्यत्रापि विकल्पयेत(कल्प्येत)दोषाभिधानस्य अभिधातुं शक्यत्वात्। १० अथ अत्र 'अन्तराल'शब्दस्य लोकप्रसिद्ध एवार्थः प्रकल्प्यते तर्हि एतद् अन्यत्रापि समानमिति न पर्यनुयोगावकाशः ।

किञ्च, यदि उपलभ्यस्वभावं सामान्यमभ्युपगम्यते तदा [illegible] शाबलेयादौ तद्बुद्ध्या ग्रहणं स्यात्, अग्रहणात् तद् असदित्यत्र किं रूपादिबुद्ध्याऽग्रहणात् सामान्यस्य असत्त्वम्, आहोस्वित् स्वबुद्ध्या इति कल्पनाद्वयम् । न तावत् रूपादिबुद्ध्या अगृह्यमाणत्वात् तस्य असत्त्वम्, १५ रूपादेरपि रसादिबुद्ध्यग्रहणाद् असत्त्वप्रसक्तेः । अथ स्वबुद्ध्या अगृह्यमाणत्वाद् असत्त्वम्, तदयुक्तम्, विरोधात्-न हि 'सामान्यबुद्धिः सामान्यस्य च अग्राहिका' इत्यभिधानमविरुद्धम् 'माता च मे वन्ध्या च' इत्यभिधानवत् । न च अनुगताकारबुद्ध्या सामान्यं न गृह्यते, व्यावृत्तबुद्धेरपि विशेषे अग्राहकत्वप्रसक्तेः । अतः 'तद्बुद्ध्या अगृह्यमाणत्वात् असत् सामान्यमित्ययुक्तम्' इत्यपि अभिधानमसंगतम् यतो भवदभिप्रायेण समानाकारशाबलेयादिबुद्धिः सामान्यबुद्धिः तया च देश-कालादि २० सामान्यं न गृह्यते तथाभूतस्य बुद्ध्यजनकत्वेन तद्ग्राह्यत्वायोगात् अत एव अनुगताकारबुद्धेरपाक-[illegible] तद्ग्राहकत्वमेव न सामान्यग्राहकत्वम् । किञ्च, [illegible] सामान्यस्य किं येनैव समवायेन एकस्मिन् पिण्डे वर्तते सामान्यं तेनैव पिण्डान्तरे, आहोस्विद् समवायान्तरेण? यदि तेनैव ततः सर्वपिण्डानामेकत्वप्रसक्तिः एकदेश-काल-स्वभाव-नियत[illegible]सामान्यसमवायक्रोडीकृतत्वात् सर्वपिण्डानाम् प्रतिनियतदेश-काल-स्वभाव- २५ पिण्डवत् । अथ समवायान्तरेण, तदा अनेकसमवाययोगात् सामान्यस्य अनेकत्वप्रसक्तिः समवायभेदा- [illegible] अन्यथा भेदायोगात् । न च एकस्य अनेकवृत्तित्वं रूपादेरिव युक्तम् । [illegible]

[illegible]

अर्थेन तत्र प्रतिभासनाच्च तद्रूपविकलतया सामान्यस्य परैरभ्युपगमात् कथं तत्प्रतिभासे तस्य प्र
भासः अन्याकारस्य विज्ञानस्य अन्यालम्बनत्वे अतिप्रसङ्गात् ? तथाहि—यो यद्विलक्षणार्थप्रतिभा
प्रत्ययः स तदाकारो न भवति, यथा रूपप्रत्ययो न रसादिग्राहकः, जातिविलक्षणवर्णादिप्रतिभास
अन्वयी प्रत्यय इति व्यापकविरुद्धोपलब्धिः ।

योऽपि शंकरस्वामी प्राह—"सामान्यमपि नीलत्वादि नीलाद्याकारमेव अन्यथा 'नील
'नीलम्' इति अनुवृत्तिप्रत्ययो न स्यात् इति हेतोरसिद्धत्वात् नानुमानबाधा" [
इति, सोऽपि अयुक्तकारी, नीलादेर्गुणाद् नीलत्वादेः सामान्यस्य वचनभेदप्रसङ्गात् । अथ गुण
व्यावृत्तत्वात् तत्सामान्यस्य [illegible] अनुगतत्वात् आकारभेदाद् भेदः, न, व्यावृत्तनीलादिगुणव्यतिरिक्त
गुणनीलत्वादिसामान्यस्य नीलाद्याकारस्य अप्रतिभासनात् अध्यक्षे असाधारणस्य नीलादेरेकस्
प्रतिभासनात् विकल्पज्ञानेऽपि यथादृष्टस्यैव निर्णयात् द्वितीयस्य सामान्याकारस्य तत्रापि अनि
यात् । न च दण्डिवदपत् प्रतिभासमानमपि सामान्यं व्यक्तिभेदेन नोपलक्ष्यत इति वक्तव्य
अनुपलक्षितस्य व्यक्तिष्वभिजपी-ध्वनिनिमित्तत्वायोगात् न हि विशेषणानुपलक्षणे विशेष्ये बुद्धि
रुपजायते दण्डाद्युपलक्षणे दण्डिबुद्धिवत् तथा च "समवायिनः श्वैत्यात् श्वैत्यबुद्धेः श्वेते बुद्धि
[वैशेषिकद० ८-१-९] इति वचनं निरवकाशं भवेत् । किञ्च, अविकल्पविज्ञानवादिनः प्रतिभासा
पलक्षणं युज्येतापि भवतस्तु सविकल्पकाध्यक्षवादिनो गृहीताऽनुपलक्षणमयुक्तम् निश्चयानानु
लक्षणमन्तरेण अपरग्रहणासंभवात् न हि निश्चयैरनिश्चितं गृहीतं नाम । किञ्च, यदि अत्र अनुग
निमित्तं नित्यं साध्यते तदा तस्य प्रसिद्धिः विपर्ययसिद्धेः । तथाहि—अनुगताभिधानप्रत्ययाः प्रमा
रकारणप्रभवाः, क्रमेण उपजायमानत्वात्, प्रदीपज्वालाप्रभवक्रमभाविप्रत्ययवत् । यदि तु अप्रमा
सामान्यहेतुका एते अभविष्यन् क्रमेण उत्पत्तिमासादयिष्यन् अविकलकारणत्वात् तथापि ते
तद्धेतुकत्वे सर्वं सर्वहेतुकं स्यात् इति प्रतिनियतकार्यकारणभावव्यवस्थाविलोपप्रसक्तिः । अ
धार्मिकश्च हेतुः षट्सु पदार्थेषु अपरानुगतनिमित्ताभावेऽपि 'पदार्थः' 'पदार्थः' इत्यनुगतप्रत्यय
पलब्धेः । न च सदुपलम्भकप्रमाणविषयत्वादिकमनुगतं निमित्तमत्रापि अस्ति इत्यव्यभिचार
मानुवोत्तरत्वाद् अस्य । न च विपक्षे वृत्तौ अस्य बाधकं प्रमाणमस्ति इति संदिग्धविपक्षव्यावृत्ति
त्वाद् अनैकान्तिकः । न च अनुगतनिमित्ताभावेऽपि अस्य भावे प्रत्ययभेदवशात् विषयभेदव्यवस्था
स्यादिति रूपादिप्रत्ययानामपि न स्वविषयव्यवस्थापकत्वं भवेदिति वक्तव्यम्, अनुगतप्रत्ययस्य
विशिष्टाभिलापत्वेन स्वलक्षणाविषयीकरणात् तद्रूपवस्थापकत्वायोगात् यथासंकेतं तत्तद्रूपावृ

१ "शङ्करस्वामी त्वाह—सामान्यमपि नीलत्वादि नीलाद्याकारमेव अन्यथा हि नील इत्येवमनुवृत्तिप्रत्ययो न स्यात्
इत्यादि—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २४३ पं० १७ ।

"सामान्यस्यापि नीलादिरूपत्वे गुणतोऽस्य कः । भेदो नानुगतश्चेद्वो नीलादिरूपकल्प्यते ॥
भासमानोऽपि चेदेष न विवेकेन लक्ष्यते । तत्कथं दीप्यती व्यक्तौ वर्तेते तद्वतेन तौ ॥
निश्चयात्मक एवार्थं सामान्यप्रत्ययः परैः । इष्यतःग्रहणे प्राप्ते युक्तं नानुपलक्षणम्" ॥

—तत्त्वसं० का० ७४०-७४१ पृ० २४४ ।

२ मुद्रितेषु वैशे० द० पुस्तकेषु "समवायिनः श्वैत्याच्छ्वैत्यबुद्धेश्च श्वेते बुद्धिस्ते एते कार्यकारणभूते"—८-१-९ इ
सूत्रं वर्तते, केवलं गु० ई० पुस्तके इयं टिप्पणी दृश्यते—"त एते" इत्यादि पृथक् सूत्रं चन्द्रकान्तमते—पृ० १०१
३ "सिद्धेऽपरानुगतनिमित्तत्वे न सामान्यं प्रसिध्यति । अनुगाम्येकमाश्रैत्यविपर्ययं च क्रमोदयात्" ॥

—तत्त्वसं० का० ७४३ पृ० २४४ ।

४ "पदार्थशब्दः ‹ हेतुमयं प्रकल्पयेत्तते । अस्तीति प्रत्ययो यद्य सतारिष्वनुवर्तते ॥
अन्यधर्मानभिप्रायेण तत्रान्यत्स्वात्मतामति- । तदन्यधर्महेतुत्वेऽनेकान्तोऽधर्मिता ॥
व्यभिचारी ततो हेतुरमीभिरभिप्यते । न च सर्वोपसंहारात् व्याप्तिरस्य प्रसाधिता" ॥

—तत्त्वसं० का० ७४४-७४६ पृ० २४५ ।

स्याद्वादरत्नाकर-पृ० । "न हि सामान्यप्रत्ययो वस्तुस्वलक्षणविषयः परमार्थेन, युक्ता ...
स्वलक्षणस्याविषयीकरणत्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २४६ पं० २ ।

मादाय एवमत्रापि अनेकविरुद्धधर्माध्यासादिविकल्पसंभवेऽविरोधात् । यदि च अनुगतनिमित्त-
मन्तरेण अनुगतप्रत्ययो न भवेत् इच्छारचितरूपेषु 'चन्द्रापीडादि'नामसु नष्टाऽजातेषु च
महासम्मत-शङ्खचक्रवर्तिप्रभृतिषु कथं भवेत्? न हि तत्रापि सामान्यसद्भावः तस्य व्यक्त्याश्रि-
तत्वात् तदभावे तस्याप्यभावात् न हि आश्रितानामयं धर्मः-यदुत आश्रयाभावेऽपि केवलानामव-
५ स्थानम् अनाश्रितत्वप्रसङ्गात् केवलस्य वा अदृश्याने ग्रहणप्रसक्तिरेव इति न नष्टाऽजातेषु अनुग-
ताकारः प्रत्ययः सामान्यनिबन्धनः स्यात् इति अनेकान्त एव हेतोः । न च परैरपि केवलस्य
सामान्यस्य ग्रहणमभ्युपगम्यते । तथा चोक्तम्—"स्वाश्रयेन्द्रियसंनिकर्षापेक्षप्रतिपत्तिकं सामान्यम्"
[ ] इति । केवलस्यापि च सामान्यस्य ग्रहणाभ्युपगमे सामान्यसम्बन्धस्य व्यव-
व्यवसायो न प्राप्नोति व्यक्तेस्तदानीमभावात् 'व्यक्तीनामिदं सामान्यम्' इति संबन्धश्च न
१० स्यात् निमित्ताभावात् । तथाहि-संबन्धस्य निमित्तं भवत् तद्व्यङ्ग्यत्वं वा सामान्यस्य भवेत्,
तज्जन्यता वा, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता वा? तत्र न तावद् व्यक्तिभिर्व्यङ्ग्यत्वात् सामान्यं तासां
संबद्धम् परैरनुपकार्यस्य नित्यत्वात् सामान्यस्य अविशेषतो व्यङ्ग्यत्वानुपपत्तेः यो हि यस्य
अनुपकार्यः स तस्य अभिव्यङ्ग्यो न भवति, यथा हिमवान् विन्ध्यस्य, अनुपकार्यं च सामान्यं
व्यक्तिभिः इत्यनुपकार्यस्यापि व्यङ्ग्यत्वे सर्वः सर्वस्य व्यङ्ग्यः स्यात् इत्यतिप्रसङ्गः । नापि तज्जन्यता
१५ तन्निबन्धनम् नित्यतया अभ्युपगतस्य तज्जन्यत्वायोगात् केवलस्यापि ग्रहणाभ्युपगमाच्च । नापि
तज्ज्ञानपारतन्त्र्यमपि तस्य संभवति तेन "स्वाश्रयेन्द्रियसन्निकर्षापेक्षप्रतिपत्तिकं सामान्यम्" इति
अयुक्तमभिधानम् आश्रयस्यायोगात् तद्गतेन्द्रियसन्निकर्षाद्यपेक्षाया दूरोत्सारितत्वात् न चास्य
नित्यतया परैरनाधेयविशेषत्वात् क्वचिदपि अपेक्षा अतो यदि तत्स्वविषयज्ञानोत्पादनसमर्थं तत्
सर्वदैव तद् जनयेत् अथ असमर्थम् न कदाचिदपि जनयेत् न हि समर्थम् असमर्थं वा तस्य तद्रूपं
२० तत् केनचिद् अन्यथा कर्तुं शक्यम् नित्यत्वहानिप्रसङ्गात् । यदुक्तम्—

"तस्य शक्तिरशक्तिर्वा या स्वभावेन संस्थिता ।
नित्यत्वादचिकित्स्यस्य कस्तां क्षपयितुं क्षमः ?" ॥ [ ] इति ।

अत एव अस्य व्यक्तिषु वृत्तिरपि अनुपपन्ना । तथाहि-वृत्तिरस्य भवन्ती स्थितिलक्षणा वा भवेत्,

---

१-प्रसृते-बृ॰ आ॰ हा॰ वि॰ ।

२ "इच्छारचितरूपेषु नष्टजातेषु वा ततः । अनेकान्तिकता हेतोः सर्वैरेभिर्यथोदितैः" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ७४६ पृ॰ २४६ ।

३ महाव्युत्पत्तिनामके बौद्धग्रन्थे चक्रवर्तिनां षष्टिर्नामानि परिगणितानि विद्यन्ते, तेषु 'महासंमत' इत्याद्यं नाम वर्तते—पृ॰ ५२ अं॰ १८० ।

४-चमकम-बृ॰ आ॰ हा॰ वि॰ । "इच्छारचितरूपेषु चन्द्रापीडादिषु नभस्तलोपकल्पितधवलगृहादिषु नष्टजातेषु च महासम्मत-शङ्खप्रभृतिषु"—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ २४६ पं॰ २१ । ५ प्र॰ पृ॰ पं॰ ७ ।

६ न हि समर्थमसमर्थं वा तस्य तत्स्वविषयज्ञानोत्पादरूपं तत् केनचिदन्यथा कर्तुं शक्यं नित्यस्य—आ॰ हा॰ वि॰ । अस्मिन् पाठान्तरे 'स्वविषयज्ञानोत्पाद' इत्यंशोऽधिको भाति स च यदि 'तत्' इत्यस्य टिप्पणात्मकत्वेन अन्तःप्रविष्टो न स्यात् तर्हि पाठान्तरत्वेन समर्थनीयः । वस्तुतः 'तद्रूपम्' इत्यस्य स्थाने 'यद्रूपम्' इति सम्यग् भाति परामर्शकस्य 'तत्'-पदस्याग्रे सत्त्वेन तत्संबन्धितया 'यत्' पदस्यैवापेक्षणात् । अत्रार्थे संवादो यथा—

"तस्य योग्यमयोग्यं वा रूपं यत् प्रकृतिस्थितम् । तद् ध्रौव्यादप्रकम्प्यं हि को नाम चलयिष्यति" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ७५५ पृ॰ २५१ ।

अस्याः कारिकायाः पञ्जिका तु इत्थं वर्तते—"न हि तस्य तद्रूपं समर्थमसमर्थं वा तत् क्वचिद् अन्यथाकर्तुं शक्यते नित्यत्वहानिप्रसङ्गात्"—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ २५७ पं॰ ४ ।

७ पृ॰ ४८२ पं॰ २२ टि॰ ६ ।

८ "अपि चानेकवृत्तित्वं सामान्यस्य यदुच्यते । तत्र केयं मता वृत्तिः स्थितिः किं व्यक्तिरेव वा ॥
स्वस्थानाप्रच्युतिशीलत्वात् स्थितिरस्य स्वभावतः । नाधारस्तत्कृतो वाच्यो येन स्यात्तत्कृता भवेत् ॥
गमनप्रतिबन्धोऽपि न तस्य बदरादिवत् । विद्यते निष्क्रियत्वेन नाधारोऽतः प्रकल्प्यते ॥
स्थितिलक्षणभावायेत्थं सर्वैव विचार्यते । सोऽभीष्टोऽयुतसिद्धानामाश्रयाश्रयिताऽऽत्मकः" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ७९८-८०१ पृ॰ २५९ ।

अभिव्यक्तिलक्षणा वा ? स्थितिरपि निःस्वभावताप्रच्युतिरभ्युपगम्यते, आहोस्विद् अधोगतिप्रतिबन्धस्वरूपा ? तत्र न तावद् आद्यः पक्षः, सामान्यस्य नित्यतया स्वभावाऽप्रच्युतेः स्वतःसिद्धत्वात् । नापि अधोगतिप्रतिबन्धस्वरूपा स्थितिस्तत्र संभविनी, अमूर्त-सर्वगतत्वाभ्यां निष्क्रियत्वात् स्वत एव अधोगमनासंभवात् प्रतिबन्धकानां वैयर्थ्यात् । न च सामान्यस्य व्यक्तिषु समवायः स्थितिरभ्युपगन्तव्या, तस्यैव विचार्यमाणत्वात् । तथाहि-अयुतसिद्धानामाधार्याधारभावो यः संबन्धः 'इह' इति प्रत्ययहेतुः स समवायः परैरभ्युपगतः । 'आश्रितत्वं च सामान्यस्य व्यक्तिप्रतिबद्धस्थितिरूपेण वा, तदभिव्यङ्ग्यतया वा' इत्येतदेव पर्यालोचयितुं प्रक्रान्तम् परस्परासंकीर्णरूपाणां भावानामकिञ्चित्करार्थान्तरसमवायायोगात् योगे वा सर्वः सर्वस्य समवायः प्रसज्येत । तथाहि-व्यावृत्तस्वरूपान् भावान् संश्लेषयन् पदार्थः समवायः प्रकल्पितः । न च अर्थान्तरभावेऽपि स्वात्मव्यवस्थिता भावाः परस्परस्य स्वभावमात्मसात्कुर्वन्ति । न च अर्थान्तराश्लेषकारिणो भावान्तरस्य 'समवायः' इति नामकरणेऽपि काचित् क्षतिः । न च श्लेषकरणात् समवायकल्पनं संश्लेषस्य, संश्लिष्यमाणपदार्थेभ्यो भिन्नस्य करणे तैस्तस्य संबन्धासिद्धेः, अभिन्नस्य करणे सामान्यादेः कार्यत्वेन अनित्यत्वप्रसक्तेः । तन्न सामान्यस्य व्यक्तिषु स्थितिर्वृत्तिः । नापि तदभिव्यक्तिलक्षणाऽसौ युक्ता । तथाहि-तद्विषयविज्ञानोत्पादनलक्षणा वा तदभिव्यक्तिः, स्वरूपपरिपोषलक्षणा वा ? न तावत् स्वभावपरिपोषलक्षणा, नित्यस्य स्वभावान्यथाकरणासंभवात् । नापि तद्विषयविज्ञानोत्पादनस्वरूपा असौ युक्ता, सामान्यस्य स्वत एव विज्ञानोत्पादनसामर्थ्ये अभिव्यक्तिकारणापेक्षाऽयोगात् असामर्थ्येऽपि परैराधेयविशेषत्वात् सामान्यस्य तदपेक्षत्वानुपपत्तेः परैराधेयविशेषत्वाभ्युपगमेऽपि अनित्यत्वप्रसक्तितो व्यक्तिवद् असाधारणत्वात् सामान्यरूपताऽनुपपत्तेः तेन सामान्यस्य व्यक्तिषु वृत्तिनिबन्धनाभावाद् अवृत्तिः । तथा च प्रयोगः-यस्मिन् यस्य वृत्तिनिबन्धनं नास्ति न तत्र तद् वर्तते, विन्ध्ये इव हिमवान्, नास्ति च भेदेषु वृत्तिनिबन्धनं सामान्यस्य इति व्यापकानुपलब्धिः । सर्वेऽपि च परप्रकल्पिताः सामान्यसाधनाय हेतवः अनया दिशा प्रतिक्षेप्तव्याः ।

[illegible]

प्रत्येकव्यक्तिविषयबुद्धिवत् । एकत्वमपि सामान्यस्य प्रमाणोपपन्नमेव । तथाहि-यद्यपि सामान्यं सर्वात्मना प्रतिव्यक्ति परिसमाप्तं तथापि एकमेव तत्, एकाकारबुद्धिग्राह्यत्वात्, यथा 'नञ्'-युक्तेषु वाक्येषु ब्राह्मणादिनिवर्तनम् । न चैतत् शक्यं वक्तुम्—'भिन्नेषु अभिन्नाकारः प्रत्ययो भ्रान्त इति न तद्बलाद् वस्तुतत्त्वव्यवस्था' इति, यतो नास्य दुष्टकारणप्रभवत्वमस्ति, नापि बाधकप्रत्ययसद्भावः ततो मिथ्यात्वनिबन्धनाभावात् कथं भ्रान्तता ? तदुक्तम्—

"पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरेकगोत्वनिबन्धना ।
गवाभासैकरूपाभ्यामेकगोपिण्डबुद्धिवत् ॥
न शाबलेयाद् गोबुद्धिः ततोऽन्यालम्बनाऽपि वा ।
तदभावेऽपि तद्भावात् घटे पार्थिवबुद्धिवत् ॥
प्रत्येकसमवेतार्थविषयैवाथ गोमतिः ।
प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात् प्रत्येकव्यक्तिबुद्धिवत् ॥

१ "स्वाधारो जलादीनां गमनप्रतिबन्धकः । अगतीनां क्रियाधारैः सामान्यानां प्रकल्पिते. ॥
तज्ज्ञानोत्पत्तियोग्यत्वे किमभिव्यक्तिकारणैः । तज्ज्ञानोत्पत्त्ययोग्यत्वे किमभिव्यक्तिकारणं ॥
शः समर्थः समर्थात्मा व्यञ्जकैः क्रियते यदि । भावोऽस्थिरो भवेदेव घटव्यञ्जकदीपवत्" ॥
—तत्त्वसं० का० ८०२-८०४ पृ० २६० ।

२ "अनया च दिशाऽन्येऽपि सर्वे दूष्याः कुहेतवः" ।
"अन्येऽपि कुहेतव इति कुमारिलगदिताः तत्रासौ येन कुहेतव उक्ताः"—तत्त्वसं० का० ७५७ तथा पञ्जि० पृ० २५७ पं० १६— ।

३ "तस्मात् पिण्डेषु गोबुद्धि"—श्लो० वा० । ४ "गवाभासैकरूपाभ्यां"—श्लो० वा० । ५ "[illegible] कृत्स्नरूप-त्वाद्"—श्लो० वा० ।

मादाय एकत्रापि अनेकविरुद्धधर्माध्यवसायिविकल्पप्रसूतेरविरोधात् । यदि च अनुगतनिमित्त-मन्तरेण अनुगतप्रत्ययो न भवेत् इच्छाविरचितरूपेषु 'चन्द्रापीडादि'भावेषु नष्टाऽजातेषु च महासम्मत-शङ्खचक्रवर्तिप्रभृतिषु कथं भवेत्? न हि तत्रापि सामान्यसद्भावः तस्य व्यक्त्याश्रि-तत्वात् तदभावे तस्याप्यभावात् न हि आश्रितानामयं धर्मः-यदुत आश्रयाभावेऽपि केवलानामव-
५ स्थानम् अनाश्रितत्वप्रसङ्गात् केवलस्य वा अवस्थाने ग्रहणप्रसक्तिरेव इति न नष्टाऽजातेषु अनुग-ताकारः प्रत्ययः सामान्यनिबन्धनः स्यात् इति अनेकान्त एव हेतोः । न च परेणापि केवलस्य सामान्यस्य ग्रहणमभ्युपगम्यते । तथा चोक्तम्—"स्वाश्रयेन्द्रियसंनिकर्षापेक्षप्रतिपत्तिकं सामान्यम्" [ ] इति । केवलस्यापि च सामान्यस्य ग्रहणाभ्युपगमे सामान्यप्रत्ययस्य व्यक्त्य-ध्यवसायो न प्राप्नोति व्यक्तेस्तदानीमभावात् 'व्यक्तीनामिदं सामान्यम्' इति संबन्धश्च न
१० स्यात् निमित्ताभावात् । तथाहि-संबन्धस्य निमित्तं भवत् तद्व्यङ्ग्यत्वं वा सामान्यस्य भवेत्, तज्जन्यता वा, तद्ग्रहणापेक्षग्रहणता वा? तत्र न तावद् व्यक्तिभिर्व्यङ्ग्यत्वात् सामान्यं ताभिः संबद्धम् परैरनुपकार्यस्य नित्यत्वात् सामान्यस्य अविशेषतो व्यङ्ग्यत्वानुपपत्तेः यो हि यस्य अनुपकार्यः स तस्य अभिव्यङ्ग्यो न भवति, यथा हिमवान् विन्ध्यस्य, अनुपकार्यं च सामान्यं व्यक्तिभिः इत्यनुपकार्यस्यापि व्यङ्ग्यत्वे सर्वः सर्वस्य व्यङ्ग्यः स्यात् इत्यतिप्रसङ्गः । नापि तज्जन्यता
१५ तन्निबन्धनम् नित्यतया अभ्युपगतस्य तज्जन्यत्वायोगात् केवलस्यापि ग्रहणाभ्युपगमाच्च । नापि तज्ज्ञानपारतन्त्र्यमपि तस्य संभवति तेन "स्वाश्रयेन्द्रियसन्निकर्षापेक्षप्रतिपत्तिकं सामान्यम्" इति अयुक्तमभिधानम् आश्रयस्यायोगात् तद्गतेन्द्रियसन्निकर्षाद्यपेक्षाया दूरोत्सारितत्वात् न चास्य नित्यतया परैरनाधेयविशेषत्वात् क्वचिदपि अपेक्षा अतो यदि तत्स्वविषयज्ञानोत्पादनसमर्थं तदा सर्वदैव तद् जनयेत् अथ असमर्थम् न कदाचिदपि जनयेत् न हि समर्थम् असमर्थं वा तस्य तद्रूपं
२० तत् केनचिद् अन्यथा कर्तुं शक्यम् नित्यत्वहानिप्रसङ्गात् । यदुक्तम्—

"तस्य शक्तिरशक्तिर्वा या स्वभावेन संस्थिता ।
नित्यत्वादचिकित्स्यस्य कस्तां क्षपयितुं क्षमः?" ॥ [ ] इति ।

अत एव अस्य व्यक्तिषु वृत्तिरपि अनुपपन्ना । तथाहि-वृत्तिरस्य भवन्ती स्थितिलक्षणा वा भवेत्,

---

१-प्रस्तुते-वृ० आ० हा० वि० ।

२ "इच्छारचितरूपेषु नष्टाजातेषु वा ततः । अनैकान्तिकता हेतोः सर्वैरेभिर्यथोदितैः" ॥
—तत्त्वसं० का० ७४९ पृ० २४६ ।

३ महाव्युत्पत्तिनामके बौद्धग्रन्थे चक्रवर्तिनो षष्टिर्नामानि परिगणितानि विद्यन्ते, तेषु 'महासंमत' इत्याद्यं नाम वर्तते—पृ० ५२ अं० १८० ।

४-चक्रतत्र-वृ० आ० हा० वि० । "इच्छारचितरूपेषु चन्द्रापीडादिषु नभस्तलोपकल्पितधवलगृहादिषु नष्टाजातेषु च महासम्मत-शङ्खप्रभृतिषु"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २४६ पं० २१ । ५ प्र० पृ० पं० ७ ।

६ न हि समर्थमसमर्थं वा तस्य तत्स्वविषयज्ञानोत्पादरूपं तत् केनचिदन्यथा कर्तुं शक्यं नित्यस्य—आ० हा० वि० । अस्मिन् पाठान्तरे 'स्वविषयज्ञानोत्पाद' इत्यंशोऽधिको भाति स च यदि 'तत्' इत्यस्य विव-रणरूपत्वेन अन्तःप्रविष्टो न स्यात् तर्हि पाठान्तरेण समर्थनीयः । वस्तुतः 'तद्रूपम्' इत्यस्य स्थाने 'यद्रूपम्' इति सम्यग् भाति यतसमर्थकस्य 'तद्'-पदस्यार्थे सत्त्वेन तत्संबन्धितया 'यत्' पदस्यैवापेक्षणात् । अत्रार्थे संवादो यथा—

"तस्य योग्यमयोग्यं वा रूपं यत् प्रकृतिस्थितम् । तद् ध्रौव्यादप्रकम्प्यं हि को नाम चलयिष्यति" ॥
—तत्त्वसं० का० ७५५ पृ० २५१ ।

अस्याः कारिकायाः पञ्जिका तु इत्थं वर्तते—"न हि तस्य तद्रूपं समर्थमसमर्थं वा तत् क्वचित् अन्यथाकर्तुं शक्यते नित्यत्वहानिप्रसङ्गात्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २५० पं० ४ ।

७ पृ० ४८२ पं० २२ टि० ६ ।

८ "अपि चार्थेषु सामान्यस्य वर्तते । तत्र केय मता वृत्तिः स्थितिः किं व्यक्तिरेव वा ॥
[illegible] स्थितिरस्य [illegible] । [illegible] भवेत् ॥
[illegible] न तस्य [illegible] । [illegible] प्रकल्प्यते ॥
[illegible] ।" ॥
—तत्त्वसं० का० ७९८-८०१ पृ० २६६ ।

मान्यस्य अनेकशो बाधकं प्रतिपादितमेवानुमानम्–ये क्रमित्याऽनुगामिरूप-प्रत्ययोत्पत्तिमत्त्वादि-
र्धोपेतास्ते परपरिकल्पितनित्यैकसर्वगतसामान्यतो नात्मलाभमासादयन्ति, यथा पाचकादिप्रत्ययाः,
ग स्वामी गवादिप्रत्यया इति विरुद्धव्याप्तोपलब्धिः नित्यभावविरुद्धाऽनित्यत्वाभावेन क्रमित्वा-
योगत्वात्, नित्यस्य च क्रमाऽक्रमाभ्यामर्थक्रियाविरोधात् नानैकान्तिकता हेतोः दृष्टान्तस्य च
ध्यान्वितत्वेन पूर्वं प्रसाधितत्वान्नासिद्धो दृष्टान्तः । तदेवं बाधकप्रत्ययस्य अभावोऽसिद्धः अनेक-५
तरस्य बाधकस्य प्रदर्शितत्वात् ।

अथनु वा गोत्वादि सामान्यम् कर्कादिविलक्षणत्वेन शाबलेयादीनां प्रतिपत्तेः, ब्राह्मणत्वादि
मान्यं तु उपदेशमात्रव्यङ्ग्यम् गवाश्वादिवत् ब्राह्मणेतरविशेषप्रतिपत्त्यभावात् । न च उपदेशसहा-
यचक्षुर्ग्राह्यं तत् अध्यक्षविषये उपदेशापेक्षाऽयोगात्, तद्योगे वा उपदेशस्यैव केवलस्य व्यापार
ते उपदेशमात्रव्यङ्ग्यतैव । अथ 'वर्णविशेषाऽध्ययनाऽऽचार-यज्ञोपवीतादिव्यतिरिक्तनिमित्तनिबन्धनं १०
ह्मणः' इति ज्ञानम्, तद्भिन्नबुद्धिविलक्षणत्वात्, गवाश्वादिज्ञानवत्' इति लिङ्गात् प्रतिपत्तेः
ह्मणत्वादिसामान्यस्य नागममात्रव्यङ्ग्यत्वमिति; असदेतत्; नगरादिज्ञानवत् व्यतिरिक्तनिबन्धना-
वेऽपि तथाभूतज्ञानस्य कथंचिद् उपपत्तेः । न हि नगरादिज्ञानेऽपि व्यतिरिक्तं द्रव्यान्तरमस्ति यत्
तदाकारज्ञाननिबन्धनं भवेत् काष्ठादीनामेव प्रत्यासत्त्या कयाचित् प्रासादादिव्यवहारनिबन्धनानां
गरादिव्यवहारनिबन्धनत्वोपपत्तेः अन्यथा 'पण्णगरी' इत्यादिष्वपि वस्त्वन्तरकल्पनाप्रसक्तेः । न १५
तत्रापि तथाऽस्तु इति वक्तव्यम्, वस्त्वन्तरस्य तन्निबन्धनस्य तत्र निषिद्धत्वात् । अतोऽनैकान्तिको
तुः सिद्धसाध्यता च समुदायिभ्योऽन्यत्वाङ्गीकरणे समुदायस्य तन्निबन्धनत्वाद् ब्राह्मणबुद्धेः तद्ग्रहे
द्ध्यभावात् पानकवत् इति न वर्णादिभ्यो व्यतिरिक्तम् । तस्मात् शरीरोत्पत्तिकारणं श्रुतं तपो वा
ह्मणत्वं परिकल्पनीयं स्यात् । तत्र ब्राह्मणशुक्रशोणितसंभूते शरीरविशेषे यदि ब्राह्मणत्वजातिः
वेता भवेत् ततः संस्कारस्पर्शेऽपि न ततो व्यावर्तेत तेन संस्काराभावात् व्रात्यो नाऽब्राह्मणो २०
त् । अथ संस्काररहितोऽपि व्रात्यो ब्राह्मण एव केवलं ब्राह्मणक्रियामकुर्वाणस्य भवति अब्राह्मण-
यदेशस्तत्र पुत्रस्येव पुत्रक्रियामकुर्वतः । तथाहि–'अयमगौः' 'अयमनश्वः' 'अयममनुष्यः' इत्यादि-
पदाशो लोके सुप्रसिद्ध एव । न चैतावता तत्क्रियावैकल्येऽपि परमार्थतस्तस्य तथाभावः, प्रत्य-
क्षादिविरोधात् । एतस्यां च परकल्पनायां ब्राह्मणमातापितृप्रभवत्वस्य प्राधान्यात् गजादीनां शिक्षेव
ब्राह्मण्यपनादिका क्रिया संपद्यते, तथाऽभ्युपगमे च ब्रह्म-व्यास-मतङ्ग-विश्वामित्रप्रभृतीनां २५

---

१ प्रमेयकमलमार्तण्डे स्याद्वादरत्नाकरे च ब्राह्मणत्वस्य नित्यजातित्वनिषेधपरा विस्तृता इयं च चर्चा वर्तते–पृ०
१ प्र०–पृ० १४१ प्र० । पृ० ९५८ पं० ९–पृ० ९६२ पं० १० ।

तत्त्वसंग्रहे तु जातिमदनिषेधप्रसङ्गेन ब्राह्मणत्वस्य नित्यप्रतिष्ठानता निरस्ता । सा चेयम्—

"ब्राह्मण्यं प्रतिपिदायां जातं जातिमदश्च किम् । तदन्याविकायाविद्धो विविधा सा च किंमता ॥
वन्दित्वदिगुणाधाराः प्रक्षीणानोपलम्भना । सर्वेऽप्यनादिरोषेण तद्योगे च विशारदः ॥
भवेयुर्यदि शिक्षन्ति विशिष्टान्यमायाथयाः । वैशिष्ट्यमन्यथा नैव युज्यतद्विप्रजातिवत् ॥
अनवमोदयो ये च प्रसिद्धास्ते तदन्यवत् । आचाराः सौगताले हि कृषिमेष्वपि भाविनः ॥
अतीतश्च महान् कालो योषितां चातिचापलम् । तद् भवत्यपि निश्चेतुं ब्राह्मणत्वं न शक्यते ॥
अतीन्द्रियपदार्थज्ञो न हि कश्चित् समस्ति वः । तदन्वयविशुद्धिं च नित्यो वेदोऽपि नोक्तवान्" ॥

—तत्त्वसं० का० ३५७५-३५८० पृ० ९२०–२१ ।

अयं भावो हर्षेणापि दर्शितः—

"शुद्धिर्वंशद्वयीशुद्धौ पित्रोः पित्रोर्यदेकशः । तदानन्तकुलादोषादवोषा जातिरस्ति का ॥
कामिनीवर्गसंसर्गैर्न कः संक्रान्तपातकः" ।—नैषध० स० १७ श्लो० ४०–४१ पृ० २६९ ।

तट्टीकायां च "यदाह," इत्यादिना

"अप्येकरङ्क्यां नाशीयात्सङ्गतैः स्वजनैरपि । को हि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत्" । इति । तथा—
"अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे । कुले च कामिनीमूले का जातिपरिकल्पना" ।

इति पद्यद्वयं उद्धृतं दृश्यते तत्राद्यं प्रथमं पद्यं पराशरमाधवे बृहस्पतिवचनत्वेन समुद्धृतम्—

अ० १ आचारकां० पृ० ३०६ ।

ब्राह्मणत्वं न स्यात्। न च अदृश्ये वस्तुनि निर्णयो विधातुं शक्यः 'शूद्राद्युत्पादनत्वमस्य नास्ति'
अनादिगोत्रपद्धतौ च कामार्तत्वात् सर्वदा प्रमदानां कस्याश्चिद् व्यभिचारसंभवात् कुतो योनि
निबन्धनब्राह्मण्यनिश्चयात् संस्कारस्य अध्ययनादेश्च अविपर्ययस्तत्त्वनिश्चयः? आगमस्य च तन्नि
बन्धनत्वेन कल्पितस्य रागादियुक्तपुरुषप्रणीतत्वेन अप्रामाण्यात् न निश्चयहेतुता अपौरुषेयस्य
५प्रतिव्यक्ति एवंभूतार्थप्रतिपादनपरस्य अनुपलम्भाच्च ततोऽपि तन्निश्चयः। न च अविगानतो
वर्णिकप्रवादोऽत्र वस्तुनि प्रमाणम् तस्यापि व्यभिचारित्वोपलब्धेः—दृश्यन्ते च बहवस्तेवर्णिके
विगानेन ब्राह्मणत्वेन व्यवह्रियमाणा विपर्ययभाजः इत्यलमतिनिर्बन्धेन वचनमात्रगम्येऽर्थे। ए
व्यवस्थितमेतत्–असत् सामान्यम्, तत्साधकप्रमाणाभावात् बाधकोपपत्तेश्च।

[निरूपणपुरस्सरं विशेषपदार्थस्य खण्डनम्]

१० नित्यद्रव्यवृत्तयः परमाण्वाकाश-काल-दिगात्ममनस्सु वृत्तेः अत्यन्तव्यावृत्तबुद्धिहेतवो
शेषाः ते च—परमाणूनां जगद्विनाशारम्भकोटिभूतत्वात् मुक्तात्मनाम् मुक्तमनसां च संसारपर्य
रूपत्वाद् अन्तत्वं तेषु भवा—अन्त्या इत्युच्यन्ते तेषु स्फुटतरमालक्ष्यमाणत्वात्, वृत्तिस्त्वेषां स
स्मिन्नेव परमाण्वादौ नित्ये द्रव्ये विद्यत एव अत एव 'नित्यद्रव्यवृत्तयः' 'अन्त्याः' इत्युभयपदोपा
नम्। अपरे तु उत्पाद-विनाशलक्षणान्तरहितेषु द्रव्येषु भवा अन्त्या इत्यस्य व्याख्यानं 'नित्यद्र
१५वृत्तयः' इति पदं वर्णयन्ति। व्यावृत्तबुद्धिहेतुत्वं च विशेषाणां सद्भावप्रतिपादकं प्रमाणम्। यथा
अस्मदादीनां गवादिषु आकृति-गुण-क्रियाऽवयव-संयोगनिमित्तोऽश्वादिभ्यो व्यावृत्तः प्रत्ययो
तद्यथा-'गौः' 'शुक्लः' 'शीघ्रगतिः' 'पीनककुद्ः' 'महाघण्टः' इति यथाक्रमम्—तथास्मद्विशि
योगिनां नित्येषु तुल्याऽऽकृति-गुण-क्रियेषु परमाणुषु मुक्तात्म-मनस्सु च अन्यनिमित्ताभावे प्र
धारं यद्बलाद् 'विलक्षणोऽयम्' 'विलक्षणोऽयम्' इति प्रत्ययवृत्तिः देश-कालविप्रकर्षोपलब्धे च
२०वायम्' इति प्रत्यभिज्ञानं च यतो भवति ते योगिनां विशेषप्रत्ययोन्नीतसत्त्वा अन्त्या विशे
सिद्धाः। योगिनां तु एते प्रत्यक्षत एव सिद्धाः।

एते च लक्षणासंभवादेव असन्तः। तथाहि—यद् एषां नित्यद्रव्यवृत्तित्वादिकं लक्षणमभिहि
तत् असंभवदोषदुष्टत्वाद् अलक्षणमेव। यतः न किञ्चिन्नित्यं द्रव्यमस्ति, तस्य पूर्वमेव निरस्तत्वा
तदभावे च तद्वृत्तित्वं लक्षणमेषां दूरोत्सारितमेव। यच्च योगिप्रभवविशेषप्रत्ययबलाद् एषां
२५साध्यते, तद् असंगतमेव; हेतोरनैकान्तिकत्वात्। तथाहि-परमाण्वादीनां स्वसमायन्वयी
स्वरूपं परस्परासंकीर्णरूपं वा भवेत्, संकीर्णस्वभावं वेति कल्पनाद्वयम्। आद्यकल्पनायां स्वत
असंकीर्णपरमाण्वादिरूपोपलम्भात् योगिनां तेषु वैलक्षण्यप्रत्ययोत्पत्तिर्भविष्यतीति व्यर्थमपरवि
पदार्थकल्पनम्। द्वितीयायामपि विशेषाख्यपदार्थान्तरसन्निधानेऽपि परस्परव्यतिमिश्रेषु परमा
दिषु तद्बलात् व्यावृत्तप्रत्ययो योगिनां प्रवर्तमानः कथमभ्रान्तो भवेत् स्वरूपतोऽव्यावृत्तस्य

---

१ "नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः। ते खल्वत्यन्तव्यावृत्तिहेतुत्वाद् विशेषा एव"—प्रशस्त॰ कं॰ पृ॰ ११ पं॰
"विशेषा एव केचित्तु व्यावृत्तेरेव हेतवः। नित्यद्रव्यस्थिता येऽन्त्या विशेषा इति वर्णिताः" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ७१२ पृ॰ २११।

२ "अन्तेषु भवा अन्त्याः स्वाश्रयविशेषकत्वात् विशेषाः। विनाशारम्भरहितेषु नित्यद्रव्येष्वण्वाकाशकालदिगात्म
मनस्सु प्रतिद्रव्यमेकैकशो वर्तमानाः अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः"—इत्यादि—प्रशस्त॰ कं॰ पृ॰ ३२१ पं॰ १२—।

३ यद्बलात् पृ॰ भा॰ हा॰ मि॰।
"यद्बलात् परमाण्वादौ जायन्ते योगिनां धियः। विलक्षणोऽयमेतस्मादिति प्रत्येकमाश्रिताः" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ७१३ पृ॰ २१७।

४ "ये पुनः कल्पिता एते विशेषा अन्त्यभाविनः। नित्यद्रव्याश्रयत्वेन तेऽप्यसंभविनः [illegible] ॥
[illegible] स्थितम्। लक्षणं च तदेतस्मात् वैलक्षण्यो [illegible] ॥
[illegible] पुनः। [illegible] वैलक्षण्योपलक्षणम् ॥
[illegible] वैलक्षण्योपलक्षणम्। [illegible] मतम्" ॥
—तत्त्वसं॰ का॰ ८१३-८१६ पृ॰ २३३।

अन्त्यादिषु व्यावृत्ताकारतया प्रवर्तमानस्य तस्य धर्मिग्राहकप्रमाणबाधया आनन्त्याऽनतिक्रमात्
एवमेतत्प्रत्ययपयोगिनस्तेऽयोगिन एव स्युः । किञ्च, यदि विशेषाख्यपदार्थान्तरव्यतिरेकेण विलक्षण
प्रत्ययोत्पत्तिर्न भवेत् कथं विशेषेषु तत्प्रत्ययोत्पत्तिर्भवेत् तेषु अपरविशेषाभावात्? भावे वा अनवस्था
प्रसक्तेः 'नित्यद्रव्यवृत्तयः' इति च अभ्युपगमहानिः स्यात् विशेषेषु अपि विशेषाणां वृत्तेः । अथ स्व
एव तेषु परस्परवैलक्षण्यमिति अपरविशेषमन्तरेणापि वैलक्षण्यबुद्धिविषयता तर्हि परमाण्वादी
नामपि तत एव तद्बुद्धिप्रवृत्तिर्भविष्यतीति व्यर्थं विशेषाख्यपदार्थपरिकल्पनम् । अथ विशेषेषु अपर
विशेषयोगाद् व्यावृत्तबुद्धिपरिकल्पनायामनवस्थादिबाधकोपपत्तेः उपचारात् तेषु तद्बुद्धिः, न; तथा
भूतविज्ञानाधाराणां योगिनामयोगित्वप्रसङ्गः–तद्बुद्धेः 'विशेषा इव' इति स्खलद्रूपतया प्रवृत्ते
अनिर्णयबुद्ध्यधिकरणत्वात् तेषां 'विशेषा एव' इत्यस्खलद्रूपबुद्ध्यधिकरणत्वे अपरविशेषविकलान
विशेषाणां परमाण्वादीनामिव अविशेषरूपतया तद्बुद्धेर्विपर्ययरूपत्वेन तदाधाराणां कथं न अयोगि
त्वम्? यदि च बाधकोपपत्तेर्विशेषेषु व्यावृत्तबुद्धिर्न अपरविशेषनिबन्धना तर्हि परमाण्वादिष्वपि
भिन्नविशेषनिबन्धना माऽस्त्वभ्युपगन्तव्या, तेषां तत्र भिन्नाभिन्नव्यावृत्तरूपकरणानुपपत्तेर्बाधकस्य
सद्भावात् । यदप्यत्र [illegible] प्रतिसमाधानम्—"यथा श्वमांसादीनां स्वत एव अशुचि
त्वम् अन्येषां च भावानां तद्योगात् तद् तथेहापि तादात्म्यात् विशेषेषु स्वत एव व्यावृत्तप्रत्ययहेतुत्व
परमाण्वादिषु तु तद्योगात् । किञ्च, अतदात्मकेष्वपि अन्यनिमित्तः प्रत्ययो भवत्येव यथा प्रदीपात्
घटादिषु न पुनः घटादिभ्यः प्रदीपे एवं विशेषेभ्य एव अन्त्यादौ विशिष्टप्रत्ययः न अन्त्यादिभ्
इत्यादिकम्" [ ], तदपि असंगतम्, यतोऽशुचित्वं भावानां कल्पनासमारोपितम्
न पारमार्थिकम् अव्यवस्थितेस्तस्य । तथाहि—यदेव कस्यचित् श्रोत्रियादेर्द्रव्यमशुचित्वेन प्रतिभाति
तदेव कापालिकादेः शुचित्वेन । न च एकस्य परस्परविरुद्धानेकरूपसमावेशो युक्तः एकत्वहानि
प्रसङ्गात् । भवतु वा पारमार्थिकं पदार्थानामशुचित्वं तथापि न दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोः साम्यम्, यत
स्त्वे(श्व)मांसाद्यशुचिद्रव्यसंसर्गाद् मोदकादयो भावाः प्रच्युतप्राक्तनशुचिस्वभावा अपर एव अशुचि
रूपा उत्पद्यन्ते इति युक्तमेषामन्यसंसर्गादशुचित्वम्, न तु परमाण्वादिषु एतत् संभवति ते
नित्यत्वादेव प्राक्तनाऽविविक्तस्वरूपपरित्यागेन अपरविविक्तस्वरूपतयाऽनुपपत्तेः अत एव प्रदीप
घटदृष्टान्तोऽपि असंगतः घटादीनां प्रदीपादिपदार्थान्तरोपाधिकस्य रूपान्तरस्य उत्पत्तेः प्रकृते च
तदसंभवात् इति । अनुमानबाधितश्च विशेषसद्भावाभ्युपगमः । तथाहि-विवादाधिकरणेषु भावे
विलक्षणप्रत्ययः तद्व्यतिरिक्तविशेषनिबन्धनो न भवति, व्यावृत्तप्रत्ययत्वात्, विशेषेषु व्यावृत्तप्रत्ययव
दिति । पूर्ववद् अस्य हेतोः प्रतिबन्धादिकं वाच्यम् । तन्न विशेषपदार्थसद्भावः तत्साधकप्रमाणाभावा
बाधकोपपत्तेश्चेति स्थितम् ।

---

१ "नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या इति चाभ्युपगमहानिप्रसङ्गाच्च"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६१ पं० २२ ।

२ "यथा गवाश्वमांसादीनां स्वत एवाशुचित्वं तद्योगादन्येषां तथेहापि तादात्म्यादन्त्यविशेषेषु स्वत एव प्रत्ययव्यावृत्तिः तद्योगात् परमाण्वादिष्विति"—प्रशस्त० कं० पृ० १२२ पं० ११ ।

३ 'स्वत एव' इत्यादिना प्रशस्तमतेरत्रोत्तरमाशङ्कते—

स्वत एवाशुचित्वं हि श्वमांसादेर्यथा स्थितम् । तद्योगादपरेषां तु तथेहापि प्रतीयते ॥
यथा प्रकाशको दीपो घटादेश्च स्वतः स्थितः । तदन्यप्रकाशात्मतायां च नियतोऽयमिदं तथा ॥"

—तत्त्वसं० का० ८१७–८१८ पृ० २६४ ।

२ यथा श्वमांसा–वा० भा० भो० भो० । "स आह यथा श्वमांसा"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६४ पं० १ ।

४ "ननु चाशुचिभावोऽयं लौकिको न तु तात्त्विकः । तत् स्वयं परतो वाऽयं कथं नाम भविष्यति ॥
अथवा भाविकत्वेऽपि श्वमांसादिवदादिमे । आनन्त्येऽशुचयो भावा नैव नित्या अजन्मतः ॥
प्रदीपादिप्रभावाच्च ज्ञानोत्पादस्वरूपताम् । लभन्ते क्षणिका अर्थाः कलशाभरणादयः ॥
न विशदादशरीभूतविशेषबलभाविनी । वैलक्षण्यमतिस्तेषु कस्योत्पत्तेः सुखादिवत्" ॥

[निरूपणपुरस्सरं समवायपदार्थस्य खण्डनम्]

समवायस्तु 'इह तन्तुषु पटः' इत्यादीहबुद्धिविशेषाद् द्रव्यादिभ्यो अर्थान्तरत्वेन अभ्युपगम्यते "अयुतसिद्ध"—[प्रशस्त० कं० पृ० १४ तथा ३२४] इत्यादिलक्षणोपेतः । यथा हि सत्ता-द्रव्यत्वादीनामात्मानुरूपप्रत्ययकर्तृत्वात् स्वाधारेषु तेभ्यः परस्परतश्च अर्थान्तरभावस्तथा समवायस्यापि ५ पञ्चसु पदार्थेषु 'इह तन्तुषु पटः' 'इह पटद्रव्ये गुण-कर्मणी' 'इह द्रव्य-गुण-कर्मसु सत्ता' 'इह द्रव्ये द्रव्यत्वम्' 'इह गुणे गुणत्वम्' 'इह कर्मणि कर्मत्वम्' 'इह द्रव्येषु अन्त्या विशेषाः' इत्यादिविशेष-

१० सद्भावे नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यादिति विपर्यये बाधकं प्रमाणम् । एवम् 'इह' बुद्धिलिङ्गावसेयः समवायः । अध्यक्षबुद्ध्यवसेयत्वमपि तस्य केचन मन्यन्ते । तथाहि–अक्षव्यापारे सति 'इह तन्तुषु पटः' इत्यादिप्रत्ययोत्पत्तेर्विशेषणभूतस्य तस्य 'इह' बुद्ध्यध्यक्षावसेयता । समवायश्च न संयोगवद् भिन्नः किन्तु तल्लिङ्गाविशेषाद् विशेषलिङ्गाभावाच्च सत्तावत् सर्वत्र एक एव, अकारणत्वाच्च तद्वदेव नित्यः । अकारणत्वं च तत्कारणानुपलब्धेः सिद्धम् ।

१५ अत्र प्रतिविधीयते—'इह तन्तुषु पटः' इत्यादिका बुद्धिः स्वसमयाहितवासनाप्रकल्पितैव न तु लोके तथोत्पद्यमानत्वेन सिद्धेति धर्म्यसिद्धेराश्रयासिद्धो हेतुः । तथाहि—यत्र नानात्वमुपलक्षितं भवेत् तत्र आधाराधेयभावे सति 'इह' बुद्धिरुत्पद्यमाना लोके संवेद्यते, यथा 'इह कुण्डे दधि' इति । न च नानात्वं तन्तु-पटयोरुपलब्धिगोचरः इति कथं तत्र 'इह' बुद्ध्युत्पादः ? न च स्वमतिप्रकल्पितस्य कार्यस्य कारणपर्यनुयोगः परं प्रति विधेयः । न चेच्छायाः पदार्थरूपानुरोधः तस्याः स्वातन्त्र्य- २० वृत्तित्वात् ततोऽपि वस्तुव्यवस्थापने तेषामव्यवस्थाप्रसक्तेः भवत्परिकल्पितस्यापि वस्तुनोऽन्यथाऽन्यथा प्रकल्पयितुं शक्यत्वात् न केवलम् 'इह तन्तुषु पटः' इत्यादिका बुद्धिर्लोके न संवेद्यते किन्तु विपर्ययेणैव तस्या उत्पादानुभवः । तथाहि—'वृक्षे शाखा' 'पर्वते शिला' इत्यादिका बुद्धिर्लोके उत्प-

---

१ "तन्तुष्वेव पटोऽमीषु वीरणेषु कटः पुनः । इत्यादीहमतेर्भावात् समवायोऽवगम्यते" ॥—तत्त्वसं० का० ८२१ पृ० २६५ ।

२ "अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानां यः संबन्ध इहप्रत्ययहेतुः स समवायः"—प्रशस्त० कं० ।

३ "तस्याभावे स चेत् किं हि मतेरस्या निबन्धनम् । न विशेषमतिर्दृष्टा निमित्तान्तरवर्जिता ॥
इहबुद्धयविशेषाच्च योगवन्न विभिद्यते । सर्वस्मिन् भाववत्त्वेष एक एव प्रतीयते ॥
कारणानुपलब्धेश्च नित्यो भाववदेव सः । न ह्यस्य कारणं किंचित् प्रमाणेनोपलभ्यते" ॥
—तत्त्वसं० का० ८२४-८२६ पृ० २६५ ।

४ "एवं तावद् वैशेषिकाणां मतेन इहबुद्धिलिङ्गानुमेयः समवायः । नैयायिकमतेन तु इहबुद्धिप्रत्यक्षगम्य एव"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६५ पं० २४— ।

५ "तदेतदिहविज्ञानं परेषामेव वर्तते । स्वसिद्धान्तानुरागेण न दृष्टं लौकिकं तु तत्" ॥
—तत्त्वसं० का० ८२७ पृ० २६६ ।

६ "नानात्वलक्षणे हि स्यादाधाराधेयभूतयोः । इदमत्रेति विज्ञानं कुण्डादौ श्रीफलादिवत् ॥
नैव तन्तुपटादीनां नानात्वेनोपलक्षणम् । विद्यते येन तेषु स्युरिदमत्रेति बुद्धयः" ॥
—तत्त्वसं० का० ८२८-२९ पृ० २६६ ।

७ "स्वेच्छया रचिते चास्मिन् कल्पितेष्विव वस्तुषु । न कारणनियोगोऽयं परं प्रत्युपपद्यते" ॥
—तत्त्वसं० का० ८३० पृ० २६६ ।

८ "वृक्षे शाखाः शिलाश्चाग इत्येषा लौकिकी मतिः । अध्यक्षपरिच्छिन्नैरन्तर्योपलम्भनात् ॥
तौ पुनस्तास्विति ज्ञानं लोकातिक्रान्तमुच्यते । पटे रूपं क्रियावीति तादात्म्यं लगच्छति ॥
रूपकुम्भादिशब्दा हि सर्वेऽवस्थाभिधायकाः । तद्विशेषाभिधानाय तथा ते विनिवेशिताः ॥
तत्रापि चेद् विज्ञानं तेनाश्रयेण वर्तते । समवायात्र भेदस्य सौक्ष्म्यमप्यनीक्षणात्" ॥
—तत्त्वसं० का० ८३१-८३४ पृ० २६७ ।

९ उत्पाद–वा० बा० मो० मो० ।

ानत्वेन संवेद्यते। न च 'वृक्षे शाखा' इत्यादिकाऽपि मतिः समवायनिबन्धना किन्तु विवक्षित-
चाव्यतिरिक्तस्कन्धादिविशिष्टसमुदायनिबन्धनैव। एवम् 'इह घटे रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः' इत्या-
बुद्धेरपि घटस्वभावत्वं रूपादीनां निबन्धनत्वेन प्रतिपद्यते लोकः। तथाहि—घटे रूपादिकं घटस्व-
वमेव एतद्रूपादिकं न पटादिस्वभावम् यद्वा रूपादिषु साधारणशक्तिविशेषप्रतिपादनाभिप्रायेण
न्यरूपादिव्यवच्छेदेन घटादिश्रुतेः संकेतः रूपादिश्रुतेस्तु प्रत्येकमसाधारणचक्षुर्ज्ञानादिकार्योत्पा-५
दशक्तिप्रकाशनाय समयकरणम् अत एव घटादिश्रुतिर्न रूपादीन् भेदान् आक्षिपति तत्सामाना-
करण्याभावात् रूपादिशब्दाश्च घट-पटादिसंबन्धिरूपादिवाचका इति रूपादिशब्देभ्यः केव-
न्यो न तद्विशेषप्रतीतिस्तेन विशिष्टापरस्वरूपादिप्रतिपादनाय 'घटे रूपादयः' इत्येवमुभयपदप्रयोगः
यते ततोऽपि घटात्मका रूपादयः पटात्मकरूपादिव्यवच्छेदेन प्रतीयन्ते घटशब्दस्तु सर्वात्मं
ानादिस्वभावान्वितं घटं मूल इति केवलाच्च विशेषप्रतीतिः 'रूपम्' इत्यादिशब्दप्रयोगे तु तदन्य-१०
व्यवच्छेदेन विशेषप्रतिपत्तिरुपजायते इति तत्प्रयोगः। तस्मात् संकेतवशात् 'इह घटे रूपादयः'
ादि ज्ञानं तथाभूतपदार्थनिबन्धनम् न समवायनिबन्धनम् यतो न घटरूपादिसमवायानां भेदः
स्वरूपतः कश्चित् [illegible]

ोरनैकान्तिकत [illegible]

त्यविरोधात्' । [illegible] १५

ः' इत्यादिबुद्धेरपि उत्पत्तिः स्यात्। तथाहि—यत एव समवायात् 'कपालेषु घटः' इति प्रत्ययोत्प-
भ्युपगतो स एव समवायः तन्तुषु घटस्य इति किमिति तथाप्रत्ययोत्पत्तिर्न भवेत्? अथ न
[illegible] 'कपालेषु [illegible]' इति

[illegible]

[illegible] २०

[illegible]

पदार्थसंकरः, आधाराधेयनियमात्। तथाहि—'द्रव्येष्वेव द्रव्यत्वम्' 'गुणेष्वेव गुणत्वम्' 'कर्मस्वेव
र्मत्वम्' इत्येवं द्रव्यत्वादीनां प्रतिनियताधारावच्छेदेन प्रतिपत्तेः संकरः, न, एवं समवायस्य प्रति-
दार्थं भिन्नत्वोपपत्तेः। यथैव 'इह' इति समवायनिमित्ताया बुद्धेरभिन्नाकारतया सर्वत्र अनुगमात् एकः
समवायः सर्वत्रावसीयते, तदेवत्वेऽपि द्रव्यत्वादिनिमित्तानां प्रत्ययानां प्रतिनियताधारावच्छेदेनाऽ-२५

---

१ "अतो घटादिश्रुती रूपादिभेदानाक्षिपतीति सामानाधिकरण्याभावात् वैयधिकरण्येनैव तत्प्रयोगं प्रतिपत्स्यन्"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६७ पं० १९।

२-सर्वात्मकत्वम्-पृ० भा० हा० वि०। "रूपादिशब्दा हि सर्वात्मना रूपादेर्वाचका"—तत्त्वसं० पञ्जि०
पृ० २६७ पं० २१।

३ पृ० ७०० पं० १० टि० ३।

४ "यद्येकः समवायः स्यात् सर्वत्रैव च वस्तुषु। कपालादिष्वपि ज्ञानं घटादेरिति प्रसज्यते॥
गवादिष्वपि गोत्वादि समवायेन वर्तते। ततो गवादिवत्तस्य [illegible] ॥
घटस्तन्तुषु वोऽस्तीति समवायात् प्रतीयते। अस्ति चासौ कपालेषु तत्रैव न तन्तुषु किम्॥
नाश्रितः स कपाले चेत् तन्तुष्वपीष्यते। आश्रितः समवायेन स कपालेऽपि नास्ति किम्? ॥
तन्त्वोर्हि समवायो हि घटस्येत्यभिधीयते। स घटस्य कपालेषु तदीयत्वविशेषतः॥
एवं यथा गवाश्वादिसमवायो गवादिषु। गोत्वादिजातिभेदानां स एव तत्कृतेष्वपि" ॥
—तत्त्वसं० का० ८२५-८३० पृ० २६८-२६९।

५ भवतु भ-ता० मा० मो० मु०। "किमिति तथाप्रतीतिर्न भवेत्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६८ पं० १०।

६ " 'आधार' इत्यादिनाऽत्र प्रत्यवस्थानमाह—
आधाराधेयनियमः [illegible] इष्यते। द्रव्येष्विव हि द्रव्यत्वं [illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ८३१ पृ० २६९।

७ "इहेति समवायोऽपि [illegible]। [illegible] ॥
द्रव्यत्वनिमित्तानां [illegible]। [illegible]" ॥
—तत्त्वसं० का० ८३२-८३३ पृ० २६९।

८-व्यवच्छेदेनानुपा-भ० मा०। "[illegible]"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० २६९ पं०

नन्वाधितयोत्पत्तेर्द्रव्यत्वादीनां भेद इति न पदार्थपञ्चकस्य संकीर्णताप्रसक्तिः यथा हि दधि-कुण्डयोः संयोगैकत्वेऽपि आधार्याधारप्रतिनियम उपपत्तिमान् तथा समवायैकत्वेऽपि द्रव्यत्वादीनां [illegible] श्रुकत्वादिभेदाधा(दादाधा)राधेयप्रतिनियमोपपत्तेः असंकीर्णपदार्थव्यवस्था संगतैव प्रमाण[illegible] त्वात् प्रमेयव्यवस्थायाः इति, असदेतत्; यतो नास्माकं रूपत्वादीनां रूपादिषु [illegible]

५ भवतां पुनः समवायमेकं सर्वत्राऽभ्युपगच्छतां प्रतिनियमो दुर्घटः प्रसज्येत । तथाहि—'द्रव्ये एव द्रव्यत्वम्' इत्येवं नियमः समवायनिबन्धनो भवद्भिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वादेः समवायस्य च गुणत्वादिषु एकस्यैव सद्भावात् कथं न पदार्थसंकरप्रसङ्गः द्रव्यत्वाद्याधेयस्य अभिव्यक्ति[illegible] धेय द्रव्ये द्रव्यत्वस्य यः समवायः न स एव गुणादिषु गुणत्वादेस्तर्हि संयोगवत् समवायस्य [illegible] धारं भेदः स्यात् । अथ स्वरूपेण अभिन्नस्यापि समवायस्य द्रव्यत्वादिविशेषणभेदात् भेद इति न [illegible]

१० दसंकरः; ननु द्रव्यत्वादेर्विशेषणस्य समवायाभेदे कुतो भेदः? यदि स्वत एव आधेयादि[illegible] तेषां स्वत एव भविष्यतीति समवायप्रकल्पना व्यर्था । अथ प्रतिनियताधारसंबन्धात् तेषां [illegible] [illegible] 'समवायस्य विशेषणभेदात् भिन्नता विशेषणानां च समवायात्' [illegible] [illegible] । [illegible] 'द्रव्यत्वादीनिमित्तानाम्' इत्याद्यभिहितम् तदपि असंबद्धम् । न '[illegible] [illegible] गुणत्वम् [illegible] । एवं च युक्तिव्यतिरेकाभावात् [illegible]

१५ [illegible] न युक्तिसंगता । न च 'द्रव्य एव द्रव्यत्वमाधिपत्य' इति [illegible] [illegible], तत्र च [illegible] [illegible] । न च [illegible] आधाराधेय[illegible] [illegible] समवायाभिन्नत्वात् । तथाहि—द्रव्यादीनां द्रव्यत्वादि[illegible] [illegible] यतः द्रव्य एव द्रव्यत्वं समवेतम् [illegible]

२० [illegible] तद्योगात् [illegible] समवायः [illegible] [illegible] प्रतिनियम इति न ततोऽपि आधाराधेयप्रतिनियमः ।

[illegible] द्रव्यत्वादीनां [illegible] [illegible] कोऽपि अभावात् [illegible] पूर्वेण [illegible]

[illegible]

मतिषिद्धत्वात्, तत्सद्भावेऽपि चायं पर्यनुयोगस्तत्रापि तुल्यः। तथाहि—यदि 'इह कुण्डे दधि' इति बुद्धिः संयोगनिमित्ता तस्य च एकत्वम् तदा निमित्तत्वाविशेषात् यथा 'कुण्डे दधि' इति प्रत्ययः तथा 'दधि कुण्डम्' इत्यपि स्यात् दधि-कुण्डसंयोगस्याविशेषे तज्जन्यप्रत्ययस्यापि अविशेषप्रसक्तेः अन्यथा तस्य तन्निमित्तत्वायोगात् अतिप्रसङ्गात्। किञ्च, यदि 'इह तन्तुषु पटः' इति प्रत्ययः तन्तु-पटव्यतिरिक्तनिमित्तमन्तरेण न स्यात् 'इह समवायिषु समवायः' इत्यपि प्रत्ययः अपरसमवाय- ५
निमित्तमन्तरेण न स्यात्। अथापरसमवायप्रकल्पनायामनवस्थाप्रसक्तेस्तमन्तरेणापि अस्य प्रत्ययस्यो-त्पत्तिस्तर्हि अनेनैव हेतुरनैकान्तिकः स्यात् इति न 'इह' प्रत्ययात् समवायसिद्धिः। यच्च 'कारणानुप-लब्धेर्नित्यः समवायः' इत्यभिधानम्, तदप्यसंगतम्, यतो यद्यसौ नित्यः स्यात् तदा घटादीनामपि नित्यत्वं प्रसज्येत स्वाधारेषु तेषां सर्वदाऽवस्थानात्। तथाहि-एषां समवायवशात् स्वाधारेषु अव-स्थानमिष्यते स च नित्य इति किमिति सर्वदा न संतिष्ठेरन्? अथ स्वारम्भकावयवविनाशाद् १०
विभागाद् वा घटादीनां विनाशः सत्यपि समवायेऽवस्थितिहेतौ सहकारिकारणान्तराभावाद् विरोधि-प्रत्ययोपनिपाताच्च ततो न घटादीनां नित्यत्वप्रसङ्ग इति, असदेतत्; यतः कपालादीनां घटाद्यार-म्भकावयवानामपि स्वारम्भकावयवेषु समवायोऽभ्युपगम्यते तेषामपि स्वारम्भकावयवेषु यावत् परमाणुः तस्य च नित्यत्वाद् नान्यथात्वसद्भाव इति सर्वेषां सर्वदा स्वारम्भकावयवेषु समवायसद्भा-वात् कुतो विभागो विनाशो वा—येन कारणविभागादिसद्भावात् घटादेर्विनाशोत्पत्तिर्भवेत्—विरोधि- १५
समवायसद्भावे विभागादेरनुत्पत्तेः (?) यदि च स्वारम्भकावयवानां विनाशोऽभ्युपगम्येत तदा सम-वायस्यापि विनाशाभ्युपगमोऽवश्यंभावी संबन्धिनिवृत्तौ संबन्धनिवृत्तेरवश्यंभावित्वात् कुण्ड-बदर-संयोगिविनाशे तत्संयोगवत्, संबन्धिनां वा अविनाशप्रसङ्गः अविनष्टसंबन्धत्वात् अनुपरतसंयोग-द्रव्यद्वयवत् अन्यथा उभयेषामपि तत्संबद्धस्वभावहानिप्रसक्तिः स्यात्। अथ यदि निवृत्ताशेषसंबन्धि-त्वात् समवायविनाश इति प्रयमप्रयोगार्थस्तदा हेतोः पक्षैकदेशासिद्धताप्रसक्तिः न हि अशेषाणां २०
संबन्धिनां प्रलयेऽपि विनाशः परमाण्वादीनां तत्रापि अवस्थानात्। अथ 'विनष्टकतिपयसंबन्धित्वात्' इति हेतुर्विवक्षितस्तदा अनैकान्तिकः यतः यदि नाम कश्चित् संबन्धी विनष्टस्तथापि अपरसंबन्धि-निबन्धना संबन्धस्य अवस्थितिर्युक्तैव। न च संयोगस्यापि कतिपयसंयोगिविनाशेऽपि अपरसंयोग्य-वस्थानात् अनेनैव न्यायेन अवस्थानप्रसक्तिः, संयोगस्य प्रतिसंयोगि भिन्नत्वात् तद्विनाशे विनाशो-पपत्तेः समवायस्य तु सर्वत्र एकत्वात् नैकसंबन्धिविनाशे विनाशः 'इह' प्रत्ययस्य अन्यत्रापि अविशे- २५
षात् तन्निबन्धनस्य समवायस्यापि अभेद इति नान्यसंबन्धिसद्भावे तद्विनाशप्रसक्तिः, असदेतत्। यतः

---

१ पृ० ६७६ पं० ६ तथा पृ० ६११ पं ४२-।

२ पृ० ७०० पं० १४।

३ "नित्यत्वेनास्य सर्वेऽपि नित्याः प्राप्ता (घटादयः)। आधारेषु सदा तेषां समवायेन संस्थिते" ॥
—तत्त्वसं० का० ८५४ पृ० २७१।

४ "स्वारम्भकविभागाद्वा यदि वा तद्विनाशतः। ते नश्यन्ति कियाला (नैव) योगादेरिति चेन्न तत् ॥
स्वाधारेषु समवायो हि तेषामपि सदा मतः। तेषां विनाशभावे तु नियताऽस्यापि नास्तिता" ॥—
—तत्त्वसं० का० ८५५-८५६ पृ० २७१।

५ "संबन्धिनो निवृत्तौ हि संबन्धोऽस्तीति दुर्घटम्। न हि संयुक्तनाशेऽपि संयोगो नोपलभ्यते ॥
यथा संयोगभावे तु संयुक्तानामवस्थिति-। समवायस्य सद्भावे तथा स्यात् समवायिनाम्" ॥
—तत्त्वसं० का० ८५६-८५७ पृ० २७१।

६ तत्संबन्धस्य-आ०। "अन्यथा तत्संबन्धस्वभावहानिरुभयेषामपि प्रसज्येत"—तत्त्वसं० पं० पृ० [illegible]

७ "एकसंबन्धिनाशेऽपि समवायोऽवतिष्ठते। अन्यसंबन्धिसद्भावाद् योगो नो चेन्न मत [illegible]।
—तत्त्वसं० [illegible] पृ० [illegible]

८ "यदैव वै विनश्यन्ति घटाद्याः समवायिनः। तेषां तु स्वान्वयो योऽसौ समवायः प्रक [illegible]
स एव व्यवतिष्ठेत किं संबन्ध्यन्तरस्थिते। अथान्य एव संयोगविभागवदुत्पद्यते ॥
नावस्थानक्षयस्यैव समवायस्य संस्थितौ। पूर्ववत् ते स्थिता एव प्रभुवन्ति घटादयः ॥
न तेषामनवस्थाने तेषा (हेत्वात्मक [illegible]) । सम(वायो) [illegible]
अतः प्रागपि सद्भावेन ते पुनः स्युरवस्थिते। [illegible]
—तत्त्वसं० [illegible]

किं य एव घटादयो विनाशमनुभवन्ति स्वकारणादिसमवायिनः तद्वृत्यात्मक एव समवाय
अविनष्टे पटादिसंबन्ध्यन्तरेऽवतिष्ठते, आहोस्वित् अन्य एव असौ इति कल्पनाद्वयम् । यदि आद्य
पक्षस्तदा प्रागवस्थावद् अप्रच्युतवृत्तित्वाद् घटादयोऽवस्थिता एव स्युः तदनवस्थाने वा अनवस्थित
वृत्तित्वात् समवायस्यापि विनाशः तस्य वृत्त्यात्मकत्वात् अन्यथा तस्य तद्रूपतानुपपत्तेः । सतश्च
५ तदनुपकारिणस्तद्वृत्तिः 'समवायः' इति नामकरणे संज्ञामात्रमेव भवेत् न वस्तुतयाभावः तथा
अविनष्टसंबन्ध्यवस्थायामपि घटादयो न स्वाश्रयवृत्ताः समवायसद्भावबलात् सिध्येयुः विनष्ट
घायिकारणावस्थायामिव परमार्थतो वृत्त्यभावात् एकरूपवृत्तिसद्भावेऽपि तेषां विनाशाभ्युपगमा
न तन्निमित्ता स्वकारणेषु तेषां स्थितिर्भवेत् तत्सद्भावेऽपि कथं तद्भावनिमित्तसद्भाव इति स्वमे
चिन्त्यम् । अथ द्वितीयः पक्षस्तदा संयोगादिवत् समवायबहुत्वप्राप्तेः 'समवायोऽभेदवान्' इत्यभ्यु
१० गमव्याहतिः नित्यत्वे च समवायस्य अभ्युपगम्यमाने स्वकारणसमवायस्य स्वसत्तासमवायस्य
जन्मशब्दवाच्यस्य सर्वदा सद्भावात् कार्यजन्मनि क्वचिदपि कारणानां साफल्यं न स्यात् तथा
अध्यक्षादिविरोधः तन्त्वादेः पटादिकार्यजनकत्वेन अध्यक्षादिना प्रतीतेः "अन्यतरकर्मजः उभयकर्म
संयोगजश्च संयोगः" [वैशेषिकद० ७-२-९] "विभागोऽपि अन्यतरोभयकर्म-विभागजः" [
"इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानम्" [न्यायद० १-१-४] इत्यादिजन्मप्रतिपादकसूत्रसमूहविरोधश्च
१५ समवायलक्षणस्य च जन्मनो नित्यतया क्रमासंभवाद् भावानां क्रमोत्पत्तिरुपलभ्यमाना विरुद्धा
स्यात् । समवायलक्षणजन्मनित्यतया च 'जगद् अनुपकार्योपकारकभूतम्' इति शास्त्रप्रणयनमनर्थ
भवेत् । बुद्धिजन्मनोऽपि समवायस्वभावतया क्रमाभावात् "युगपद् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्"
[न्यायद० १-१-१६] इत्यादि सर्वमपि विरुद्धं स्यात् इति नित्यसमवायप्रकल्पनमसमञ्जसमि
त्यितम् । तदेवमुलूकप्रतिपादितशास्त्रस्य मिथ्यात्वम् तदभिहितपदार्थानामप्रमाणावाधात् प्रमा
२० बाधितत्वाच्च । आचार्यस्तु एतत् सर्वं हृदि कृत्वा तन्मिथ्यात्वाऽविनाभूतं प्रतिपादितसकल्या
व्यापकम् 'जं सवियसय-' इत्यादिना गाथापश्चार्धेन हेतुमाह–यस्मात् स्वविषयप्रधान
व्यवस्थिताऽन्योन्यनिरपेक्षोभयनयाश्रितं तत् अन्योन्यनिरपेक्षनयाश्रितस्य मिथ्यात्वा
ऽविनाभूतत्वात् ॥ ४९ ॥

[अन्योन्यनिरपेक्षनयाश्रितानां वादानां मिथ्यात्वराहित्याभावप्रतिपादनम्]

६५ अन्योन्यनिरपेक्षनयाश्रितस्य मिथ्यात्वाऽविनाभूतत्वमेव दर्शयन्नाह–

जं संतवायदोसे सक्कोलूया भणंति संखाणं ।
संखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा ॥ ५० ॥

यान् एकान्तसद्वादपक्षे द्रव्यान्तिकाभ्युपगमपरायांभ्युपगमे शाक्यौलूक्या दोषा
वदन्ति साङ्ख्यानां क्रिया-गुणव्यपदेशोपलब्ध्यादिप्रसङ्गादिलक्षणान् ते सर्वेऽपि तेषां स
१० इत्येवं संबन्धः कार्यः । ते च दोषाः एवं सत्याः स्युः यद्यन्यनिरपेक्षनयाभ्युपगमपरार्थप्रतिपादक

[illegible]

सत्त्वं मिथ्या स्यात् नान्यथा प्रागपि कार्यावस्थात एकान्तेन तत्सत्त्वनिबन्धनत्वात् तेषाम् अन्यथा कथंचित् सत्त्वे अनेकान्तवादापत्तेर्दोषाभाव एव स्यात् । साङ्ख्या अपि असत्कार्यवाददोषान् असदकरणादीन् यान् वदन्ति ते सर्वे तेषां सत्या एव एकान्ताऽसति कारणव्यापारासंभवात्, अन्यथा शशशृङ्गादेरपि कारणव्यापारादुत्पत्तिः स्यात् ।

[न्याय-वैशेषिकसम्मतस्यासत्कार्यरूपस्यासद्वादस्य सदोषत्वप्रदर्शनम्]

अथ शशशृङ्गस्य न कारणावस्थायामसत्त्वादनुत्पत्तिः किन्तु कारणाभावात् घटादेस्तु मृत्पिण्डावस्थायामसतोऽपि कारणसद्भावादुत्पत्तिः । ननु कुतः शशशृङ्गस्य कारणाभावः ? अत्यन्ताभावरूपत्वात् तस्येति चेत् तदेव कुतः ? कारणाभावात् इति चेत् सोऽयमितरेतराश्रयदोषः । घटादीनामपि च मृत्पिण्डावस्थायामसत्त्वे कुतः कारणसद्भावः ? प्रागसत्त्वादेव तत्र कारणसद्भावः सति कारणव्यापारासंभवादिति चेत्, असदेतत्, घटस्य मृत्पिण्डावस्थायां सत्त्वे प्रागभावायोगात् असत्त्वेऽपि शशशृङ्गस्येव तदनुपपत्तेः । अथास्य उत्पत्तिदर्शनात् प्रागभावः न शशशृङ्गस्य, न, इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः । तथाहि—घटादेः प्रागभावित्वं न तावदुत्पत्तिसिद्धिः यावच्च नोत्पत्तिसिद्धिर्न तावत् प्रागभावित्वसिद्धिरिति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् । अथ कारणस्य कार्यशून्यता प्रागभावः प्रागेव सिद्धः, असदेतत्, अकारणस्यापि कार्यशून्यतोपलम्भात् तत्संबन्धाद् घटस्य तत्कार्यताप्रसक्तेः । तथाहि—यस्य प्रागभावित्वं तस्य कार्यता तच्च कार्यशून्यं पदार्थान्तरं कारकाभिमतात् अन्यदपि च तत्प्रागभावस्वभावं प्राप्तम् तत्संबन्धेन च घटादेः शशशृङ्गादिव्यवच्छेदेन कार्यता अभ्युपगतेति तन्तुपिण्डकार्यताऽपि घटस्येयं भवेत् । न च तदन्वय-व्यतिरेकाभावात् तत्कार्यता, अन्वय-व्यतिरेकाभावस्य तत्राऽसत्त्वनिबन्धनत्वात् । न च प्रागभावो नाम प्रत्यक्षादिप्रमाणग्राह्यः, मृत्पिण्डस्वरूपभावस्यैव तत्र प्रतिभासनात् । न च कारणस्वरूपमेव प्रागभावः, निर्विशेषणस्य स्वरूपमात्रस्य कार्येऽपि सद्भावात् तस्यापि प्रागभावरूपताप्रसक्तेः । अथ कार्यान्तरापेक्षया तस्यापि प्रागभावरूपता कारणस्वभावाऽभ्युपगम्यत एव, न, कारणाभिमतापेक्षयाऽपि तद्रूपताप्रसक्तेः । तथाप्रतीत्यभावान्न तद्रूपतेति चेत्, न, प्रतीतिमात्रादनपेक्षितवस्तुस्वरूपाद् वस्तुव्यवस्थाऽयोगात् । ततो मृत्पिण्डादिरूपतया वस्तु गृह्यतेऽध्यक्षादिना न पुनस्तद्व्यतिरिक्तकारणादिरूपतया तस्यास्तत्राऽप्रतिभासनात्, प्रतिभासनेऽपि विशिष्टकार्यापेक्षया कारणत्वस्य प्रतिपत्तौ कार्यप्रतिभासमन्तरेण तत्कारणत्वस्याऽप्रतीतेरसतस्तदानीं कार्यस्याप्रतिभासनात् प्रत्यक्षस्य असदर्थग्राहकत्वेन भ्रान्तताप्रसक्तेः तदा तत्कार्यस्य सत्त्वप्रसक्तिः स्यादिति कथमसति कारणव्यापारः प्रतीयेत ? तत्र असतः कार्यत्वं युक्तम् ॥

[बौद्धसम्मतस्यासत्कारणरूपस्यासद्वादस्य सदोषत्वदर्शनम्]

नापि असत्कारणं कार्यम् तदानीमसति कारणे तस्य तत्कृतत्वायोगात् क्षणमात्रावस्थायिनः कारणस्य स्वभावमात्रव्यवस्थितेरन्यत्र व्यापारायोगात् । अथ तदनन्तरं कार्यस्य भावात् प्राग्भावित्वमात्रमेव कारणस्य व्यापारः, असदेतत्, समस्तभावक्षणानन्तरं विवक्षितकार्यस्य सद्भावात् सर्वेषां तत्पूर्वकालभावित्वस्य भावात् तत्कारणताप्रसक्तेः । अथ सर्वभावक्षणाभावेऽपि तद्भाव इति न तस्य तत्कार्यता, न, क्षणिकेषु भावेषु विवक्षितक्षणाभाव एव सर्वत्र विवादाध्यासितकार्यसद्भावान्न तदपेक्षयाऽपि तस्य कार्यता भवेत् । न च क्षणिकस्य कार्यस्य तदभावेऽपि पुनर्भवनसंभवः तस्य तदैव भावाद् अन्यदा कदाचिदप्यभावात् । न च विशिष्टभावक्षणधर्मानुविधानात् तस्य तत्कार्यताव्यवस्था, सर्वथा तद्धर्मानुविधाने तस्य कारणरूपतापत्तेस्तत्प्राक्कालभावितया तत्कार्यताव्यतिक्रमात्, कथंचित् तद्धर्मानुविधाने अनेकान्तवादापत्तेः 'असत्कारणं कार्यम्' इत्यभ्युपगमव्याघातात् । अथ

---

१ पृ० २८२ पं० १८ । २ उत्पत्तिस्थितिशालीनां मध्यात् हसितारेशस्यैव इतरेतराश्रयस्यात्र सुघटत्वेन 'घटादेः प्रागभावित्वम्' इत्येव पाठो ज्यायान् भाति । ३-पि तस्या-भा० ।

४ "यद्यसत् सर्वथा कार्यं तन्मा जनि खपुष्पवत् । मोपादाननियामो भून्माऽऽश्वासः कार्यजन्मनि" ॥—आप्तमी० का० ४२ पृ० २४ । कारिकेयाऽत्र साष्टशतिका सवृत्तिका चावबोद्धव्या ।

५ प्रागभा-भा० बा० विना ।

संतानापेक्षः कार्यकारणभाव इत्ययमदोषः, न; संतानस्य पूर्वापरक्षणव्यतिरेकेणाभावात् भावे वा तस्यैव कार्यकारणरूपस्य अर्थक्रियासामर्थ्यात् सत्त्वं स्यात् न क्षणानामर्थक्रियासामर्थ्यविकलत्वा[illegible] भवेत् । अथ तत्संबन्धिनः संतानस्य कार्यकारणत्वे तेषामपि कार्यकारणभावः, न; भिन्नयोः कार्यकारणभावादपरस्य संबन्धस्य अभावात् संतानस्य च सर्वजगत्क्षणानन्तरभावित्वेन सर्वसंतान-
५ तापसक्तिः स्यात् । किञ्च, तस्यापि नित्यत्वे क्षणकार्यत्वे च सत्कार्यवादप्रसक्तिः, क्षणिकत्वे च अन्वयाऽप्रसिद्धेस्तस्य तत्कार्यताऽप्रसिद्धिः, व्यतिरेकश्च कार्यतानिबन्धनं क्षणिकपक्षे न संभवतीति प्रतिपादितमेव । न च अत्रापि अपरसंतानप्रकल्पनया कार्यकारणभावप्रकल्पनं युक्तम् अनवस्था-प्रसक्तेः । तथाहि–संतानस्यापि कार्यताऽभ्युपगमे क्षणिकत्वाच्च कार्यरूपता अतः संतानान्तरमत्रापि कार्यतानिबन्धनमभ्युपगन्तव्यम् तत्रापि च क्षणिकत्वे कार्यताऽप्रसिद्धेस्तन्निबन्धनमपरं संतानान्तर-
१० मभ्युपगमनीयमित्यनवस्था परिस्फुटैव । किञ्च, क्षणिकभावाभ्युपगमवादिनो यदि भिन्नकार्योदया-द्धेतोः सत्त्वमभिमतं तदा तत्कार्यस्यापि अपरकार्योदयात् सत्त्वसिद्धिरित्यनवस्थाप्रसक्तेर्न क्वचित् सत्त्वव्यवस्था स्यात् इति कुतस्तद्व्यवच्छेदेन 'असत् कार्यम्' इति व्यपदेशः । अथ ज्ञानलक्षणकार्य-सद्भावाद्धेतोः सत्त्वव्यवस्थितिः, ननु ज्ञानस्यापि कथं ज्ञेयसत्ताव्यवस्थापकत्वम्? ज्ञेयकार्यत्वात् इति चेत्, ननु किं तेनैव ज्ञानेन ज्ञेयकार्यता स्वात्मनः प्रतीयते, उत ज्ञानान्तरेण? न तावत् तेनैव, तस्य
१५ प्रागसत्त्वाभ्युपगमादप्रवृत्तेः प्रवृत्तौ वा तत्कार्यतावगतिः पुनः प्राक् प्रवर्तने संगच्छते तत्रापि पुनः प्राक् प्रवृत्तावित्ति अनवस्थाप्रसक्तेः कुतस्तस्य तत्कार्यतावगतिः? अथ समानकालत्वेऽपि ज्ञानस्य ज्ञेयकार्यता, ननु वचनविशेषाद् ज्ञेयस्यापि ज्ञानकार्यतावगतिः स्यादिति तदपि तद्व्यवस्थापकं प्रसज्येत । न च समानकालयोः स्तम्भ-कुम्भयोः कार्यकारणतोपलब्धेति प्रकृतेऽपि सा न स्यात् । अथ केवलस्यापि कुम्भस्य दृष्टेरकार्यता, ज्ञानस्यापि केवलस्य दृष्टेरकार्यताप्रसक्तिः । तस्य ततोऽन्य-
२० स्याव्यभिचार इति चेत्, ननु कुम्भोऽपि कुतोऽन्यः स न भवेत्? प्रत्यभिज्ञानाभावात् इति चेत्, एतद् ज्ञानेऽपि समानम्, नित्यता च कुम्भस्यैवं भवेदिति कुतोऽसत्कार्यवादः? न च प्रत्यभिज्ञान-मपरतः प्रमाणम् पूर्वापररूपाधिकरणैकतयाऽप्रतीतेः न हि पूर्वापरप्रत्ययाभ्यामपरपूर्वरूपताग्रहः । नापि एकप्रत्ययेन पूर्वापररूपद्वयस्य क्रमेण ग्रहः एकस्य अक्रमस्य क्रमवद्रूपग्राहकतयाऽप्रवृत्तेः । न च स्मरणस्य [illegible] संभवति । न चास्य प्रमाणता । न च पूर्वापरप्रत्यययोः परस्परपरिहारेण पूर्वो-
२५ त्तर उत्पद्यमानं स्मरणमेकत्वस्य वेदकं युक्तम् अगृहीतग्राहितया अस्मरणरूपताप्रसक्तेः । न च आत्मापि एकत्वमवैति प्रत्यक्षादिप्रमाणवशेन अर्थान्तरकल्पात् तस्य चैकत्वे अप्रवृत्तेः । न च प्रमाणनिरपेक्ष एव आत्मा एकत्वग्राहकः स्वाप-मद-मूर्च्छाद्यवस्थायामपि तस्य तद्ग्राहकत्वोपपत्तेः । न च तस्यापि एकत्वं कुतश्चित् प्रमाणात् प्रसिद्धम् तद्ग्राहकत्वेन तस्याऽप्रतीतेः । न च बौद्धस्य आत्मा भवद्वा वस्तु सिद्धमस्ति "क्षणिकाः सर्वसंस्काराः" [ ] इति वचनात् । तस्य तेनैव आत्मनः
३० [illegible]ऽवगतिः । नापि अन्येन तस्यापि ज्ञानस्य ज्ञेयकार्यतायां प्रागप्रवृत्तिस्तथाऽसामर्थ्यात् । तत्र [illegible] कार्यं हेतोः सत्तां व्यवस्थापयितुं समर्थं क्षणिकैकान्तवादे । [illegible] [illegible]ऽप्रवृत्तेः, अत एव नानुमानस्यापि [illegible] प्रवृत्तिः तस्य तत्पूर्वकत्वात् [illegible] [illegible] अभ्युपगमात् । तत्र [illegible] प्रमाणाभावात् ।

[सांख्यसम्मतस्य सत्कार्यरूपस्य मतस्य सदोषत्वख्यापनम्]

३५ सांख्यदर्शनमपि अनेन निरस्तत्वाद् असत् एव । तथाहि—नित्यस्य कार्यकारित्वं तत्र स्यात्, तच्च असुस्थम्, नित्यस्य क्रमाक्रमकार्यकारित्वे कार्यकरणे सामर्थ्यासिद्धेः, न हि नित्यस्य [illegible]

१-[illegible] २-[illegible] ३ पृ० [illegible]
४ [illegible]
५ पृ० [illegible]
६ [illegible]
७ [illegible]

स्थापिनः क्वचित् कार्यव्यापारविरहिणः सामर्थ्यमवगन्तुं शक्यम्। अथ सर्वदेशव्यापिनस्तस्य तत्र सामर्थ्यं भविष्यति, तद् असत्। यतः सर्वदेशव्यापित्वस्य तथाप्रतीतेरप्यवगीयते सर्वकालव्याप्तिरपि तस्य तत एव अभ्युपगमनीया स्यात्। अभ्युपगम्यत एवेति चेत्, नन्वेवं कतिपयदेशकालव्याप्त्यप्रतिपत्तेरेव अनुपपत्तेति निर्दोषलक्षणरूपता भावानां समायाता। न च तदेकान्तपक्षेऽपि कार्यजनकता, प्राक् प्रतिक्षिप्तत्वात्। न चैकान्तनित्यव्यापकत्वपक्षे प्रमाणप्रवृत्तिः इत्यसकृत् प्रतिपादितम्। न चासति कार्ये निर्विषयत्वात् कारणव्यापारासंभवात् सत्येव तत्र तेषां व्यापारः, यतो न इष्टा श्रुत्वा ज्ञात्वा वा हेतूनां कार्ये व्यापारः तेषां अदृष्टत्वेन तदसंभवात्। न चाऽदृश्यमानाऽदृष्टेश्वरादिहेतुकमदृष्टोत्पत्तिकं भूधरादि संभवतीति प्रोक् प्रतिपादितम्। न चाऽसतः कार्यस्य विधानं न ग्राहकम् असत्यप्यसदादिबुद्धेः प्रवृत्तेः अन्यथा कथं कार्यार्थप्रतिपादिका चोदना भवेत्? किञ्च, यदि सत्येव कार्ये कारणव्यापारस्तदा उत्पन्नेऽपि घटादिकार्ये कारणव्यापारादनवरतं तदुत्पत्तिप्रसक्तिः तत्सत्त्वाविशेषात्। अथाभिव्यक्तस्याभोत्पन्ने पुनरुत्पत्तिः उत्पत्तेरभिव्यक्तिस्वरूपत्वात् तस्याश्च प्रथमकारणव्यापारादेव निर्वृत्तत्वात्, ननु अभिव्यक्तिरपि यदि विद्यमानैव उत्पद्यते उत्पन्नाऽपि पुनः पुनरुत्पद्येत। अथ अविद्यमाना तदाऽसदुत्पत्तिप्रसक्तिः। न चाभिव्यक्तावप्यसत्यां कार्ये इव कारणव्यापारोऽभ्युपगन्तुं युक्तः स्वसिद्धान्तप्रकोपप्रसङ्गात्।

[सत्कारणककार्यरूपस्य सद्वादस्य सदोषत्वप्रकटनम्]

अथ सतः कारणाद् कार्यमिति सत्कार्यवादः असतो हेतुत्वायोगात् तथाभ्युपगमे वा शशशृङ्गादेरपि पदार्थोत्पत्तिप्रसक्तिः। अत्यन्ताभाव-प्रागभावयोः असत्त्वेनाविशेषात् न च प्रोग्भावी आसीदिति हेतुर्नात्यन्ताभावीति वक्तव्यम् यतो यदा आसीत् तदा न हेतुः अन्यदा हेतुरिति प्रसक्तेः। तदत्र इदं प्रसक्तम्—असन् हेतुः संश्च अहेतुरिति। ततः सन्नेव हेतुः तस्य कार्ये व्यापारात् नान्यत् तत्र तद्योगात्, एतदप्यसत्। यतः सतोऽपि कारणस्य प्राक्तनरूपापरित्यागाच्च कार्यं प्रति हेतुता प्राक्तनावस्थायाम् [illegible] कार्यं प्रति तस्य हेतुत्वे [illegible] ननु तत्रापि व्यापारो [illegible] कार्योत्पादने प्रवृत्तिः [illegible] व्यापारपरम्परापर्यवसानं यावत् कस्यचिदनवस्थानादसतः कारणात् कार्योत्पत्तिश्च स्यात्। अथ कारणस्वरूपमेव व्यापारः तत्काल एव च कार्यम् तेन नानवस्था, नापि असतः कारणात् कार्योत्पत्तिः, नन्वेवं कारणसमानकाले कार्यं स्यात् तथा च सव्येतरगोविषाणवत् कुतः कार्यकारणभावः? अथ कार्यभावकाले कारणस्य न सद्भावस्तर्हि चिरतरनष्टादिव तत्कालध्वंसिनोऽपि कुतः कार्यसद्भावः? कार्योत्पत्तिकाले तदनन्तरभाविनः सत्ता चेत्, तर्हि कार्योत्पत्तिः कार्यात् भिन्नेति कार्यकारणयोः समानकालतैव स्यात् तथा च पुनः कार्यकारणभावः? न च 'सतः कारणात् कार्योत्पत्तिः' इत्यभ्युपगमवादिनः कार्योत्पत्तिकाले कारणस्यासत्त्वं बौद्धस्येव सिद्धम्। अविचलितरूपस्य च तस्य तद्भावे तदापि न कार्यसत्ता विकलकारणत्वात् प्राग्वत्, तदा तद्भावे वा पूर्वमपि तद्रूपं स्यात् अविकलकारणत्वात् तद्वस्थावत्। तदेकान्तसत्कार्यवादः असत्कार्यवादो वा युक्तः अनेकदोषदुष्टत्वात्।

[कथंचित् सदसद्वादस्य निर्दोषत्वसमर्थनम्]

अथ एकान्तेन सदसतोरजन्यत्वात् अजनकत्वाच्च कार्यकारणभावाभावात् शर्वैदान्यैव। ननु 'प्रदत्तं सर्वमिति चेत्' इत्यादि, न, कथंचित् सदसतोर्जन्यत्वात् जनकत्वाच्च। न चैकस्य सद्रूपत्वं विरुद्धम्, कथंचित् भिन्ननिमित्तापेक्षस्य सदसत्त्वस्य एकत्र एकदा अबाधितप्रतीतेः प्रतिपत्तेः। न च प्रत्यक्षप्रसिद्धे वस्तुनि विरोधः अन्यथा एकचित्रपटज्ञाने चित्ररूपतायाः चित्रपटे च चित्रैकरूपस्य विरोधः स्यात्। तथा च 'शुक्लाद्यनेकप्रकारं पृथिव्या रूपम्' इति वैशेषिकस्य विरुद्धाभिधानं भवेत्।

---

१ [illegible] २-वाक्या [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible]
[illegible]

धर्तिद्रव्यपर्यायात्मकैकवस्तुनस्त्वविषयत्वात्मकाऽबाधिताऽवबोधस्वभावत्वात् । यदा तु अन्योन्यनिरपेक्षद्रव्य-पर्यायप्रतिपादनत्वेन उपनीतौ भवतो न तदा सम्यक्त्वं प्रतिपद्येते यस्मात् संसारमाविजन्मादिदुःखविमोक्षमात्यन्तिकं विश्लेषं द्वावपि तौ प्रत्येकं न विधत्तः मिथ्याज्ञानात् सम्यक्रियानङ्गतया आत्यन्तिकमयोपद्रवाभिवृत्त्यसिद्धेः तद्विपर्ययकारणत्वात् तथासङ्गत् प्राक् प्रति-
५पादितमिति न पुनः प्रतन्यते । ततः कारणात् कार्यं कथंचिद् अन्यत् कथंचिदनन्यत् अत एव तदनुरूपतया 'सच्च असच्च' इति ॥ ५१ ॥

[कार्य-कारणयोर्भेदाभेदरूपत्वदर्शनेनानेकान्तरूपतोपपादनम्]

अमुमेव अर्थमुपसंहारद्वारेण उपदर्शयन्नाह—

नत्थि पुढवीविसिट्टो'घडो'त्ति जं तेण जुज्जइ अणण्णो ।
१० जं पुण'घडो'त्ति पुव्वं ण आसि पुढवी तओ अण्णो ॥ ५२ ॥

नास्ति सद्द्रव्यमृत्पृथिवीत्यादिभ्यो विशिष्टो भिन्नो घटः सदादिव्यतिरिक्तस्वभावतया तस्यानुपलम्भात् । किञ्च, यदि सत्त्वादयो धर्मा घटाद् एकान्ततो भिन्नाः सोऽपि वा तेभ्यो भिन्नः स्यात् तदा न घटस्य सदादित्वं स्यात् सतोऽसदादेरन्यधर्मयोगेऽपि शशशृङ्गादेरिव तत्त्वा(तथात्व)-योगात् सदादेरपि घटाधाकाराद् अत्यन्तभेदे निराकारतया अत्यन्ताभावस्येव उपलम्भविषयत्वायो-
१५गाद् ज्ञेयत्व-प्रमेयत्वादिधर्माणामपि सदादिधर्मेभ्यो भेदे असत्त्वम् सदादेस्तु तेभ्यो भेदे अज्ञेयत्वाद् असत्त्वमेव "उपलम्भः सत्ता" [ ] इति वचनात् । ततः सदादिरूपतया उपलभ्यमानत्वाद् घटस्य तेभ्योऽभिन्नरूपताऽभ्युपगन्तव्या प्रमेयव्यवस्थितेः प्रमाणनिबन्धनत्वात् । यत् पुनः पृथुबुध्नोदराद्याकारतया पूर्वं सदादिर्न आसीत् ततोऽसौ अन्यस्तेभ्यो घटरूपतया प्राक् सदादेरनुपलम्भात् प्रागपि तद्रूपस्य सदादौ सत्त्वे अनुपलम्भायोगात् दृश्याऽनुपलम्भस्य च अभावाव्य-
२०भिचारित्वात् तदतद्रूपतायां च विरोधाभावात् प्रतीयमानायां तदयोगात् अबाधितप्रत्ययस्य च मिथ्यात्वासंभवाद् बाधाविरहस्य च प्रागेव उपपादितत्वात् ॥ ५२ ॥

[सदाद्येकान्तवत् कालाद्येकान्तेऽपि मिथ्यात्वख्यापनम्]

सदाद्येकान्तवादवत् कालाद्येकान्तवादेऽपि मिथ्यात्वमेव इत्याह—

कालो सहाव णियई पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता ।
२५ मिच्छत्तं ते चेवा(व) समासओ होंति सम्मत्तं ॥ ५३ ॥

काल-स्वभाव-नियति-पूर्वकृत-पुरुषकारणरूपा एकान्ताः सर्वेऽपि एकका मिथ्यात्वम् त एव समुदिताः परस्पराऽजहद्वृत्तयः सम्यक्त्वरूपतां प्रतिपद्यन्ते इति तात्पर्यार्थः ।

१-तत्त्वयास्त्वयो-आ० हा० वि० । २-न्ताभावादस्यैव चोपल-वृ० आ० हा० वि० । ३-घादेऽपि बा० बा० मां० मां० । ४ चेव उ स-गु० मू० मु० मू० ।

५ श्वेताश्वतरोपनिषदि ब्रह्मकारणताप्रश्नविचारे काल-स्वभावादीनामपि कारणता चर्चिता निरस्ता च विद्यते । तथा—

"ॐ ब्रह्मवादिनो वदन्ति—

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥
काल-स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् ।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुख-दुःखहेतोः" ॥—१-२ इत्यादि-। अ० १ ।

माठरेण सांख्यकारिकावृत्तौ, क्रियाऽक्रियावादादिमतं विवेचयता शीलाङ्केन सूत्रकृताङ्गसूत्रटीकायाम् हरिभद्रेण शास्त्रवार्तासमुच्चये च काल-स्वभावादिवादा प्रकारान्तरेण उपन्यस्ता निरस्ताश्च विद्यन्ते । तथा—

का० ६१ पृ० ७५-७६ । समवस० अ० १२ पृ० २१० प्र०—२११ प्र० । शास्त्रवा० समु० स्तब० २ श्लो० ५२-६१ पृ० ७६-८६ ।

क्रियाऽक्रियावादादिस्वरूपं निरूपयन् गुणरत्नः षड्दर्शनसमुच्चयबृहट्टीकायां काल-स्वभावादिवादानां स्वरूपमात्रं प्रकटि । तत्र-पृ० १० पं० १५—पृ० ११ पं० ५ ।

[कालैककारणवादमुपन्यस्य तदैकान्तिकत्वनिरासः]

तत्र काल एव एकान्तेन जगतः कारणमिति कालवादिनः प्राहुः। तथाहि—सर्वस्य शीतोष्ण-वर्ष-वनस्पति-पुष्पादेर्जगतः प्रभव-स्थिति-विनाशेषु ग्रहोपरागयुतिपुद्रोदयास्तमयगतिगमनागमनादौ च कालः कारणम् तमन्तरेण सर्वस्यास्याऽन्यकारणत्वाभिमतभावसद्भावेऽप्यभावात् तत्सद्भावे च भावात्। तदुक्तम्—

"कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः" ॥

[महाभा० आदिप० अ० १ श्लो० २७३,२७५],

असदेतत्। तत्कालसद्भावेऽपि वृष्ट्यादेः कदाचिददर्शनात्। न च तदभवनमपि तद्विशेषकृतमेव, निरंशैकरूपतया तस्य विशेषाभावात्। विशेषे वा तज्जननाऽजननस्वभावतया तस्य निरंशत्वव्यतिक्रमात् स्वभावभेदाद् भेदसिद्धेः। न च ग्रहमण्डलादिकृतो वर्षादेर्विशेषः तस्यापि अहेतुकतयाऽभावात्। न च काल एव तस्य हेतुः इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः—सति कालभेदे वर्षादिभेदहेतोर्ग्रहमण्डलादेर्भेदः तद्भेदाच्च कालभेद इति परिस्फुटमितरेतराश्रयत्वम्। अन्यतः कारणाद् वर्षादिभेदे न 'काल एव एकः कारणं भवेत्' इत्यभ्युपगमविरोधः। कालस्य च कुतश्चिद् भेदाभ्युपगमे अनिष्टत्वमित्युक्तम्। तत्र च प्रभव-स्थिति-विनाशेषु यद्यपरः कालः कारणम्, तदा तत्रापि स एव पर्यनुयोग इत्यनवस्थानान्न वर्षादिकार्योत्पत्तिः स्यात्। न चैकस्य कारणत्वं युक्तम् क्रम-यौगपद्याभ्यां तद्विरोधात्। तन्न काल एव एकः कारणं जगतः।

[स्वभावैककारणवादमुपन्यस्य तदैकान्तिकत्वनिरासः]

अपरे तु 'स्वभावत एव भावा जायन्ते' इति वर्णयन्ति। अत्र यदि 'स्वभावकारणा भावाः' इति तेषामभ्युपगमस्तदा स्वात्मनि क्रियाविरोधो दोषः न हि अनुत्पन्नानां तेषां स्वभावः सम्भवति उत्पन्नानां तु स्वभावसंगतावपि प्राक् स्वभावाभावेऽपि उत्पत्तेर्निर्हेतुकत्वात् स्वभावस्य कारणं भवेत्। अथ कारणमन्तरेण भावा भवन्ति स्व-परकारणनिमित्तजन्मनिरपेक्षतया सर्वहेतुनिराशंसस्वभावा भावाः। तथा चात्र स्वभाववादिभिर्युक्तिः प्रदर्श्यते—यद् अनुपलभ्यमानसत्ताकं तद् प्रेक्षावतामप्रवृत्तिविषयः, यथा शशशृङ्गम्, अनुपलभ्यमानसत्ताकं च भावानां कारणमिति स्वभावानुपलब्धिः। न च अयमसिद्धो हेतुः कण्टकादितैक्ष्ण्यादेर्निमित्तभूतस्य कस्यचिद् अप्रवृत्तादिना अदर्शनात्। तदुक्तम्—

---

१ अत्र [illegible] प्रकारेण [illegible]–श्रुति–[illegible] सर्वेऽपि [illegible] ज्योतिषग्रन्थेभ्योऽवधेयः।

२-प्रभवगमन-पू० आ० हा० मि०। ३–तु न तावत्–पू० आ० हा० मि०। ४ महाभारते तत्सन्दर्भस्त्वेवं वर्णितं विद्यते—

"विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते। कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे॥
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः॥
कालो विकुरुते भावान् सर्वाल्लोके शुभाशुभान्। कालः संक्षिपते सर्वाः प्रजा विसृजते पुनः॥
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः। कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः॥
अतीतानागता भावा ये च वर्तन्ति साम्प्रतम्। तान् कालनिर्मितान् बुद्ध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि"॥

—महाभा० आदिप० अ० १ श्लो० २७१-२७५।

५ [illegible] पृ० ८० श्लो० ५४। पृ० ११ पं० १२-१३।

६ स्वभाववादनिरूपण–[illegible]—

"सर्वहेतुनिराशंसं भावानां जन्म वर्ण्यते। स्वभाववादिभिस्ते हि नाहुः स्वमपि कारणम्"॥

—तत्त्वसं० का० ११० पृ० ४०

७–[illegible]–आ० को०। "ते [illegible]"—तत्त्वसं० पं० पृ० ४०।

८ "राजीवकेसरादीनां वैचित्र्यं कः करोति हि। मयूरचन्द्रकादिर्वा विचित्रः केन निर्मितः"॥

—तत्त्वसं० का० १११ पृ० ४१

"कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः?" ॥ [

अथापि स्यात् भवतु बाह्यानां भावानां कारणानुपलब्धेरहेतुकत्वम् आध्यात्मिकानां तु कुतो निर्हे
कत्वसिद्धिः? असदेतत्, यतो यदि नाम दुःखादीनामध्यक्षतो निर्हेतुकत्वमसिद्धं तथापि अनुमा
५ नतस्तत् तेषां सिद्धमेव। तथाहि—यत् कादाचित्कं तद् निर्हेतुकम्, यथा कण्टकादेस्तैक्ष्ण्यम्, काद
चित्कं च सुखादिकमिति स्वभावहेतुः। न च यस्य भावाभावयोर्नियमेन यस्य भावाभावौ तत् त
कारणम्, व्यभिचारात्। तथाहि—स्पर्शसद्भाव एव चक्षुर्विज्ञानम् तदभावे न तत् कदाचित्, न
स्पर्शः तत्कारणम्। तदेतत् कारणभावलक्षणम् व्यभिचारित्वात्। अतः सर्वहेतुनिराशंसं ज
भावानामिति सिद्धम्,

१० असदेतत्। कण्टकादितैक्ष्ण्यादेरपि निर्हेतुकत्वासिद्धेः। तथाहि—अध्यक्षाऽनुपलम्भाभ्यामन्वय
व्यतिरेकतो बीजादिकं तत्कारणत्वेन निश्चितमेव। यस्य हि यस्मिन् सत्येव यस्य भावः यस्य
विकाराद् यस्य विकारः तत् तस्य कारणमुच्यते। उत्सूनादिविशिष्टावस्थाप्राप्तं च बीजं कण्टकादि
क्ष्ण्यादेरन्वय-व्यतिरेकवत् अध्यक्षाऽनुपलम्भाभ्यां कारणतया निश्चितमिति 'अनुपलभ्यमानसत्ता
च कारणम्' इति असिद्धो हेतुः। यदपि 'कार्यकारणभावलक्षणं व्यभिचारि' इत्युक्तम्, तदपि असि
१५ द्धम्। स्पर्शस्यापि रूपहेतुतया चक्षुर्विज्ञाने निमित्ततया इष्टत्वात् तमन्तरेण रूपस्यैव विशिष्टावस
स्यासंभवात्। न च व्यतिरेकमात्रं कार्यकारणभावनिबन्धनत्वेन अभ्युपगम्यते तद्वादिभिः किन्
तद्विशेष एव। तथाहि—समर्थेषु सत्सु येषु कार्यं भवद् उपलब्धम् तेषां मध्ये अन्यतमस्यापि अभा
तद् अभवत् तत्कारणं तद् इति व्यवस्थाप्यते न तु यस्याभावे यन्न भवतीति व्यतिरेकमात्रतः; अन्यथ
मातृविवाहोचितपारसीकदेशप्रभवस्य पिण्डखर्जूरस्य तद्विवाहाभावे अभावाद् अव्यभिचारः स्यात्
२० न चैवंभूतस्य व्यतिरेकस्य स्पर्शेन व्यभिचारः न हि रूपादिसंनिधानमुपदर्श्य स्पर्शस्य एकस्याभा
वात् चक्षुर्विज्ञानं न भवतीति शक्यं दर्शयितुमिति कुतो व्यभिचारः कार्यकारणभावलक्षणस्य?

---

१ अयं श्लोकः शास्त्रवा० स्याद्वादक० टीकायाम् षड्द० बृ० टीकायां च विद्यते–पृ० ८२ प्र० १ पृ० ११।
माठरवृत्तौ तु—
"येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः। मयूराश्चित्रिता येन स नो वृत्तिं विधास्यति" ॥
इति भावार्थकः श्लोको वर्तते–पृ० ७५।

२ "यथैव कण्टकादीनां तैक्ष्ण्यादिकमहेतुकम्। कादाचित्कतया तद्वद् दुःखादीनामहेतुता" ॥—
—तत्त्वसं० का० ११२ पृ० ६२।

बोधिचर्यावतारपञ्जिकायां तत्त्वसंग्रहीयकारिकाभिरेव स्वभाववादः स्थापितः निरस्तश्च प्रकारान्तरेण–परि० ९ पृ०
५४१। धर्मसंग्रहण्यां तु केवलं स्वभाववादस्थापनं तन्निरसनं चोभयमन्यया भङ्ग्या वर्णितं विद्यते। तथाहि तदायास्यमाना—
"किण्ण सहावो ति मई भावो वा होज्ज वा अभावो वा। जइ भावो किं णिच्चो किं वा सो एगरूवो त्ति ॥ ×××
एवं नियइ जइच्छा कालो दिव्वं पहाणमादी वि। सव्वे वि असब्भावा एएणं मुणेयव्वा" ॥
—धर्मसं० गा० ५४१-५६६ पृ० २११-२१६।

३ "दृष्टो ह्यकेसरादीनामन्वयव्यतिरेकवान्। अवस्थातिशयाक्रान्तं बीजपङ्कजलादिकम् ॥
प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यां निश्चितं कारणं यदा। किमित्यन्यस्तदा हेतुरमीषां परिपृच्छ्यते ॥
—तत्त्वसं० का० ११३-११४ पृ० ६३।

४ अत्र वाक्ये द्वयोः 'यस्य' पदयोः निष्प्रयोजनत्वेन 'यस्य हि यस्मिन् सत्येव भावः' इत्येव पाठः समीचीनः
संभाव्यते। "तथाहि–यस्मिन् सत्येव यस्य जन्म भवति यस्य च विकाराद् यस्य विकारस्तत् तस्य कारणमुच्यते। तथैवंभूतं
बीजादिकमुच्छूनादिविशिष्टावस्थाप्राप्तं राजीवकेसरादीनामन्वयव्यतिरेकवत्"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ६३ पं० १५।

५–एतदेवं त्रि-पृ० । "स्पर्शस्यापि रूपहेतुतया चक्षुर्विज्ञानेऽपि निमित्तभावस्येष्टत्वात्। तथाहि—स्पर्शं हेतुं रूपा-
न्युच्यन्ते। तथि योऽत्र स्पर्शोपादाय रूपं मन्येत तत्चक्षुर्विज्ञानं प्रति स्पर्शस्य निमित्तभावोऽस्त्येव केवलं साक्षात्पारंपर्यकृतो
विशेषः"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ६३ पं० १८।

६ "मिथो देश-कालौ च भावानां भवतः कथम्। यदि तद्धेतुता नैषां स्पृश्येत तदैव सा ॥
क्वचित् कस्मिंश्चित् कदाचित् भवन्तो नियताः पुनः। तस्मादेषा भवन्त्येते तदन्यपरिहारतः" ॥
—तत्त्वसं० का० ११५-११६ पृ० ६४।

केवलं बीजादिः कारणत्वेन भावानां निश्चितः किन्तु देश-कालादिरपि । तथाहि—यदि प्रतिनियत-देश-कालहेतुता कण्टकादेस्तैक्ष्ण्यादेर्न स्यात् तदा येयमतद्देश-कालपरिहारेण प्रतिनियतदेश-कालता तेषामुपलम्भगोचरचारिणी सा न स्यात् तन्निरपेक्षत्वात् तद्वद् अन्यदेशकाला अपि ते भवेयुः न चैवम् अतः प्रतिनियतदेशादौ वर्तमानास्तदपेक्षास्त इति सिद्धम् तथा च तत्कार्या अपेक्षालक्षणत्वात् तत्कार्यत्वस्य नियतदेशतया च तेषां वृत्तिरध्यक्षत एव सिद्धेति कथं न तत्कार्यतावगतिः ? यदपि ५ 'कादाचित्कत्वात्' इति साधनम्, तदपि विरुद्धम्; साध्यविपर्ययसाधनात् अहेतोः कादाचित्कत्वानुपपत्तेः । साध्यविकलश्च दृष्टान्तः अहेतुकत्वस्य तत्राप्यभावात् । एवमनुपलभ्यमानसत्ताकं भावानां कारणमिति हेतोरसिद्धता प्रतिज्ञायाश्च प्रत्यक्षविरोधो व्यवस्थितः । सिद्धत्वेऽपि चास्य हेतोरनैकान्तिकत्वम् । तथाहि—यदि अनुपलम्भमात्रं हेतुत्वेन उपादीयते तदा प्रमाणाभावात् कारणसत्ताभावासिद्धेः कथं नानैकान्तिकता ? तथाहि—कारणम् व्यापकं वा निवर्तमानं कार्यम् व्याप्यं वा १० आदाय निवर्तते । न च प्रमाणमर्थसत्ताया व्यापकं वृक्षत्ववत् शिंशपायाः अभिन्नस्यैव व्यापकत्वात् । न च प्रमाण-प्रमेययोरभेदः भिन्नप्रतिभासविषयत्वात् । नापि प्रमाणं कारणमर्थस्य व्यभिचारात् देश-कालादिविप्रकृष्टानां भावानां प्रमाणाविषयीकरणेऽपि सत्ताऽविरोधात् । न च यदनन्तरमेवापि यद् भवति तत् तस्य कारणम् अतिप्रसङ्गात् कारणत्वाभ्युपगमे स्वाभ्युपगमव्याघातात् । न च प्रमा-

[illegible]

आद्यः पक्षः पद्म-बिलाद्यन्तर्गतस्य बीजादेः सोपलम्भनिवृत्तावपि सत्तासम्भवेनानैकान्तिकत्वात् । अथ द्वितीयः पक्षः सोऽपि न युक्तः; हेतोरसिद्धेः न हि मयूरचन्द्रकादेः सर्वपुरुषैरदृष्टं कारणं नोपलभ्यते इत्यर्वाग्दृशा निश्चेतुं शक्यम् । किञ्च, 'निर्हेतुका भावाः' इत्यत्र हेतुरुपादीयते, आहो- १५ स्वित् नेति ? यदि नोपादीयते तदा न स्वपक्षसिद्धिः प्रमाणमन्तरेण तस्या अयोगात् । अथ हेतुरुपादीयते तदा स्वाभ्युपगमविरोधः प्रमाणजन्यतया स्वपक्षसिद्धेरभ्युपगमात् । तदुक्तम्—

"न हेतुरस्तीति वदन् सहेतुकं ननु प्रतिज्ञां स्वयमेव बाधते ।

---

१ "तदपेक्षा तथावृत्तिरपेक्षा कार्यतोच्यते । प्रत्यक्षा च तथा वृत्तिः सिद्धास्तेनैव हेतवः" ॥
—तत्त्वसं० का० ११७ पृ० ४४ ।

—कार्यत्वे-पु० आ० ता० मि० । "तदन्यदेशादिपरिहारेण नियते देशादौ या वृत्तिविशेषः सेहापेक्षोच्यते न व्यक्तिव्यापारिका । स्यादेतद् यदि नाम तदपेक्षा तेषाम् तथापि तत्कार्यता कथमवसितेत्याह—अपेक्षा कार्यतोच्यत इति"
—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ४४ पं० १० ।

२-वामवृ—भां० मां० विना ।

३ "तत्त्वाभावविचारोऽयं प्रत्यक्षेण प्रबाध्यते । प्रत्यक्षानुपलम्भाभ्यां हेतुरूपस्य निश्चयात्" ॥
—तत्त्वसं० का० ११६ पृ० ४४ ।

४ "सा वा प्रमाणसत्ता भूद्धेतुसद्भावसिद्धये । तथापि मानाभावेन नैकान्तोऽस्त्यनिश्चयः" ॥
—तत्त्वसं० का० १११ पृ० ४५ ।

५ "वस्त्वर्थस्य सत्ताया व्यापकं न च कारणम् । प्रमाणं नेरसद्भावव्यभिचारात् तदुद्भवः" ॥
—तत्त्वसं० का० ११० पृ० ४५ ।

६ यमन्त-पु० आ० ता० मि० । ७ "कारणत्वाभ्युपगमे वा"—तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ४५ पं० १५ ।

८ "यच्च नैवंविधो भावस्तस्य [illegible] नियतिः । ऐकान्तिकमसंबन्धात् सम्भवेऽप्यनिवर्तनम्" ॥
—तत्त्वसं० का० ११३ पृ० ४५ ।

९ "सर्वो हि सिद्धा सा दृष्टिर्व्यभिचारिणी । विप्रकृष्टेष्वभावेऽपि सम्भव" ॥
—तत्त्वसं० का० ११४ पृ० ४५ ।

१० पुस्तके तथाने च [illegible] विमल नैतत्पक्षे—वैला० सि० ।

११ "अहेतुकत्वसिद्ध्यर्थं न चेद्धेतुः प्रयुज्यते । न चाप्रमाणिकां सिद्धिं कश्चित् वाञ्छति ॥
तत्सिद्धये च हेतुश्चेत् प्रयुज्येत तथापि च । सिद्धेऽहेतुकत्वपक्षे व्याहतैव प्रतिज्ञया" ॥
—तत्त्वसं० का० ११२-११३ पृ० ४४ ।

१२ तत्त्वसं० पञ्जिकायाम् "तथा लोकप्रसिद्धेन [illegible]" इति निर्दिश्य [illegible] एवं च "[illegible] पादरेणु" इति पाठे मुद्रितः—पृ० ४६ पं० १४ ।

अथापि हेतुप्रणयालसो भवेत् प्रतिज्ञया केवलयाऽस्य किं भवेत् ?" ॥

[ ] इति ।

न च ज्ञापकहेतूपन्यासेऽपि कारकहेतुप्रतिक्षेपवादिनो न स्वपक्षबाधा इति वक्तव्यम् यतो लिङ्गं तत्प्रतिपादकं वा वचो यदि पक्षसिद्धेरुत्पादकं न भवेत् कथं तस्य ज्ञापकहेतुता स्यात् अन्यथा सर्वस्य ५ सर्वं प्रति ज्ञापकता प्रसज्येत । न चैवं कारक-ज्ञापकहेत्वोरविशेषः साध्यानुत्पादकस्य ज्ञापकहेतुत्वात् तदुत्पादकस्य तु कारकहेतुशब्दवाच्यत्वात् अनुमानबाधितत्वं च प्रतिज्ञायाः स्पष्टमेव । तथाहि— प्रतिनियतभावसंनिधौ ये प्रतिनियतजन्मानस्ते सहेतुकाः यथा प्रयत्नप्रयुक्तसाधनसंनिधिभावि तत्साध्यार्थज्ञानम् तथा च मयूरचन्द्रकादयो भावाः इति स्वभावहेतुः । तन्न स्वभावैकान्तवादाभ्युपगमो युक्तिसंगतः ।

१० [नियत्येककारणवादमुपन्यस्य तस्यैकान्तिकत्वनिरासः]

सर्वस्य वस्तुनस्तथातथानियतरूपेण भवनात् नियतिरेव कारणमिति केचित् । तथाहि— तीक्ष्णशस्त्राद्युपहता अपि तथामरणनियतताऽभावे जीवन्त एव दृश्यन्ते नियते च मरणकाले शस्त्रादिघातमन्तरेणापि मृत्युभाज उपलभ्यन्ते, न च नियतिमन्तरेण स्वभावः कालो वा कश्चिद् हेतुः यतः कण्टकादयोऽपि नियत्यैव तीक्ष्णादितया नियताः समुपजायन्ते न कुण्ठादितया कालोऽपि १५ शीतादेर्भावस्य तथानियततयैव तदा तदा तत्र तत्र तथा तथा निर्वर्तकम्(कः) । तथा चोक्तम्—

"प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ।

भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने नाऽभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः" ॥ [ ] इत्यादि ।

असदेतत्; शास्त्रोपदेशवैयर्थ्यप्रसक्तेः तदुपदेशमन्तरेणापि अर्थेषु नियतिकृतत्वबुद्धेर्नियत्यैव भावात् तत्प्रतिपादितशुभाशुभक्रियाफलनियमाभावश्च । अथ तथैव नियतिः कारणमिति २० नायं दोषः, न; नियतेरेकस्वभावत्वाभ्युपगमे विसंवादाऽविसंवादादिभेदाभावप्रसक्तेः अनियमेन नियतेः कारणत्वाद् अयमदोष इति चेत्, न; अनियमे कारणाभावाच्च नियतिरेव कारणम् नियतेर्नित्यत्वे कारकत्वायोगात् अनित्यत्वेऽपि तद्योग एव । किञ्च, नियतेरनित्यत्वे कार्यत्वम् कार्यं च कारणानुत्पत्तिमदिति तदुत्पत्तौ कारणं वाच्यम् । न च नियतिरेव कारणम् तत्रापि पूर्ववत् पर्यनुयोगानिवृत्तेः । न च नियतिरात्मानमुत्पादयितुं समर्था स्वात्मनि क्रियाविरोधात् । न च काला- २५ दिकं नियतेः कारणम् तस्य निरस्तत्वात् । न च अहेतुका सा युक्ता नियतरूपताऽनुपपत्तेः । न च स्वतोऽनियता अन्यभावनियतत्वकारणम् शशशृङ्गादेस्तद्रूपतानुपलम्भात् । तन्न नियतिरपि प्रतिनियतभावोत्पत्तिहेतुः ।

[कर्मैककारणवादमुपन्यस्य तस्यैकान्तिकत्वनिरासः]

जन्मान्तरोपार्जिताऽदृष्टरूपं कर्म सर्वजगद्वैचित्र्यकारणमिति कर्मवादिनः । तथा चाहुः—

३० "यथा यथा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधानस्थमिवाऽवतिष्ठते ।

तथा तथा तत्प्रतिपादनोद्यता प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥" [ ]

---

१ "[illegible]" ॥ —[illegible] ११५ पृ० ११ ।

२ "[illegible]" ॥ —[illegible] ११६ पृ० ११ ।

३ "[illegible]" ॥ —[illegible] ११० पृ० १०।

४ [illegible] ५ [illegible]

६ [illegible] ७ [illegible]

८ [illegible]

तथा च—

"स्वकर्मणा युक्त एव सर्वो ह्युत्पद्यते नरः।
स तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति"॥ [ ]

तथाहि—समानमीहमानानां समानदेश-काल-कुलाऽऽकारादिमतामर्थप्राप्त्यप्राप्ती नाऽनिमित्ते युक्ते अनिमित्तस्य देशादिप्रतिनियमायोगात्। न च परिदृश्यमानकारणप्रभवे तस्य समानतयोपलम्भात्, न चैकरूपात् कारणात् कार्यभेदः तस्याहेतुकत्वप्रसक्तेः अहेतुकत्वे च तस्य कार्यस्यापि तद्रूपतापत्तेः भेदाऽभेदव्यतिरिक्तस्य तस्यासत्त्वात्। ततो यन्निमित्ते एते तद् दृष्टकारणव्यतिरिक्तमदृष्टं कारणं कर्म इति,

असदेतत्; कुलालादेर्घटादिकारणत्वेनाध्यक्षतः प्रतीयमानस्य परिहारेणापराऽदृष्टकारणप्रकल्पनायां तत्परिहारेणापराऽपराऽदृष्टकारणकल्पनयाऽनवस्थाप्रसक्तेः क्वचिदपि कारणप्रतिनियमाऽनुपपत्तेः। न च स्वतन्त्रं कर्म जगद्वैचित्र्यकारणमुपपद्यते तस्य कर्त्रधीनत्वात्। न चैकस्वभावात् ततो जगद्वैचित्र्यमुपपत्तिमत् कारणवैचित्र्यमन्तरेण कार्यवैचित्र्यायोगात् वैचित्र्ये वा तदेककार्यताप्रच्युतेः [illegible]
[illegible]
[illegible]
त्वेन जगद्वैचित्र्यकारणत्वोपपत्तेः। न च केवलं किञ्चिद् वस्तु नित्यमनित्यं वा कार्यकृत् सम्भवतीति असकृत् प्रतिपादितम्। तन्न कर्मैकान्तवादोऽपि युक्तिसंगतः।

[पुरुषैककारणवादमुपन्यस्य तदैकान्तिकत्वनिरासः]

अन्यस्त्वाह—"पुरुष एवैकः सकललोकस्थिति-सर्ग-प्रलयहेतुः प्रलयेऽपि अलुप्तज्ञानातिशयशक्तिः" [ ] इति। तथा चोक्तम्—

"ऊर्णनाभ इवांऽशूनां चन्द्रकान्त इवाऽम्भसाम्।
प्ररोहाणामिव प्लक्षः स हेतुः सर्वजन्मिनाम्"॥ [ ] इति।

तथा, "पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्" [ ] इत्यादि। ऊर्णनाभोऽत्र मर्कटको व्याख्यातः। अत्र सकललोकस्थिति-सर्ग-प्रलयहेतुता ईश्वरस्येव पुरुषपदादिभिः पुरस्कृता इष्टा। विशेषस्तु समवायाद्यपरकारणसव्यपेक्ष ईश्वरो जगद् निर्वर्तयति अयं तु केवल एव। अस्य च ईश्वरस्येव जगद्धेतुता असंगता। तथाहि—

"पुरुषो जन्मिनां हेतुर्नोत्पत्तिविकलत्वतः।
गगनाम्भोजवत् सर्वमन्यथा युगपद् भवेत्"॥ [ ]

किञ्च, प्रेक्षापूर्वकारिप्रवृत्तिः प्रयोजनवत्तया व्याप्तेति किं प्रयोजनमुद्दिश्य अयं जगत्सर्गे प्रवर्तते?

---

१ "दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद् दैवं पौरुषतः कथम्। दैवतश्चेदनिर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत्"॥ इत्यादि दैवैकान्तनिराकरणसंक्षेपः—आप्तमी॰ परि॰ ८ श्लो॰ ८८—।

२ "अन्ये त्वौपनिषदं पुरुषं लोककारणम्। कल्पयन्ति [illegible]॥
[illegible] प्रलयेऽप्यलुप्तज्ञानशक्तिमान्। ऊर्णनाभ इवांऽशूनां स हेतुः किल जन्मिनाम्"॥
—तत्त्वसं॰ का॰ १५३-१५४ पृ॰ ७५-७६।

३ अयं भावो मन्त्रान्तरेण बृहदारण्यकोपनिषदि वर्णितः—बृहदा॰ उ॰ २-१-२०। श्वेताश्व॰ उ॰ ६-१०। प्रमेयक॰ पृ॰ १५१ पं॰ ५। तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ७६ पं॰ ४। ४ पृ॰ १०२ पं॰ ११ टि॰ १०।

५–अत्र मर्कटको पा॰ पा॰। "ऊर्णनाभो मर्कटकः"—तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ७६ पं॰ १०।

६ "[illegible] सर्वं [illegible] निवेशनम्। किमर्थं च [illegible]"॥
—तत्त्वसं॰ का॰ १५५ पृ॰ ७६।

७ तत्त्वसं॰ पञ्जि॰ पृ॰ ७६ पं॰ १४।

८ "[illegible]॥
[illegible]"॥
—तत्त्वसं॰ का॰ १६९-१७० पृ॰

[illegible] । न परानुग्रहार्थमनुकम्पया दुःखितसत्त्वनिर्माणानुपपत्तेः
[illegible] दुःखितसत्त्वनिर्माणे प्रवृत्तिः तत्कर्मणोऽपि [illegible]
[illegible] । न च [illegible] इति [illegible]
[illegible] नापि [illegible] प्रवृत्तिर्युक्ता । न च अनुकम्पातः प्रवृत्तौ सुखिना
५ [illegible] प्रवृत्तिर्युक्तेति [illegible] । न च [illegible] दुःखकारणमधर्मादि
[illegible] सुखम् [illegible]
न हि [illegible] प्रवृत्तेः ।
[illegible] प्रवृत्तिर्युक्ता क्रीडोपायेऽपि [illegible]
[illegible] । यदि [illegible]
१० [illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible] ईश्वरादि [illegible]
[illegible]
[illegible] ईश्वरोऽपि [illegible]
१५ [illegible] इति [illegible]
[illegible] ईश्वरादि [illegible]
[illegible]"-[
[illegible] । यदि [illegible]
[illegible]
२० [illegible] । तथा चाह—

"[illegible] ।
[illegible]" ॥

"न व्यवसानिरीनोऽयं क्रमेणाप्युपपद्यते ।
व्यवसायिकिरतोऽन्यथैव भावो होकः कथं भवेत्" ॥ [ ]

एवं कालस्यापि पर्यायेण वसन्ताद्यभिव्यक्तिप्रवृत्तौ अयमेव दोषः । भावास्तु शीतोष्णादिपरिणति-
भाजः प्रतिक्षणविशरारवः कथंचित् काल इत्यभिधानाभिधेयाः प्राग् व्यवस्थापिताः । अथ न क्रीडा-
र्था भगवतः प्रवृत्तिः किन्तु पृथिव्यादिमहाभूतानां यथा स्वकार्येषु स्वभावत एव प्रवृत्तिस्तथा ईश्व- ५
रस्यापि इति, अयुक्तमेतत्, एवं हि तद्व्यापारमात्रभाविनामशेषभावानां युगपद् भावो भवेत् अविक-
लकारणत्वात् सहकार्यपेक्षाऽपि न नित्यस्य संगता इत्युक्तम् । पुरुषवादिनां तु केवलस्यैव पुरुषस्य
जगत्कारणत्वेन अभ्युपगमात् तदपेक्षा दूरापास्तैव । पृथिव्यादिमहाभूतानां तु स्वहेतुबलायाताऽपरा-
परस्वभावसद्भावाय तदुत्पाद्यकार्यस्य युगपदुत्पत्त्यादिदोषः संभवी । न च यथा ऊर्णनाभः स्वभावतः
प्रवृत्तोऽपि न स्वकार्याणि युगपद् निर्वर्तयति तथा पुरुषोऽपीति वाच्यम्, यत ऊर्णनाभस्यापि प्राणि- १०
भक्षणलाम्पट्यात् स्वकार्ये प्रवृत्तिर्न स्वभावतः अन्यथा तथाप्यस्य दोषस्य समानत्वात् न ह्यसौ निर्वे-
कस्वभावः अपि तु स्वहेतुबलमाप्यपरापरकादाचित्कतन्तुमानिति तद्भाविनः कार्यस्य क्रमवत्प्रवृत्तिरप-
पत्तेय । न च यथा कथंचिद् अबुद्धिपूर्वकमेव पुरुषो जगन्निर्वर्तने प्रवर्तते, प्राकृतपुरुषस्येवमस्य
हीनतया प्रेक्षापूर्वकारिणामनपेक्ष्यवचनताप्रसक्तेः । एवं प्रजापतिप्रभृतीनामपि जगत्कारणत्वेनाभी-
ष्टानां निरासो द्रष्टव्यः न्यायस्य समानत्वात् । तत कालाद्येकान्ताः प्रमाणतः संभवन्तीति तद्वादो १५
मिथ्यावाद इति स्थितम् । न एव अन्योन्यसव्यपेक्षा निरपेक्षैकान्तव्यपोहेन एकानेकस्वभावाः कार्य-
निर्वर्तनपटवः प्रमाणविषयतया परमार्थसन्त इति तत्प्रतिपादकस्य शास्त्रस्यापि तत्स्वरूपमिति
तद्वादः सम्यग्वादतया व्यवस्थितः ॥ ५३ ॥

[आत्मन्यनेकान्तरूपस्य नास्तित्वादिवादषट्कस्य मिथ्यारूपत्वकथनम्]

यथैते कालाद्येकान्ता मिथ्यात्वमनुभवन्ति व्याहारोपपत्ता न तु न एव सम्यक्त्वं प्रतिपद्यन्ते २०
तथा आत्मापि एकान्तनित्याऽनित्यत्वादिधर्माध्यासितो मिथ्यात्वम् अनेकान्तरूपतया तु अनुभू-
यमानः सम्यक्त्वं प्रतिपद्यत इत्याह—

णत्थि ण णिच्चो ण कुणइ कयं ण वेएइ णत्थि णिव्वाणं ।
णत्थि य मोक्खोवाओ छम्मिच्छत्तस्स ठाणाइं ॥ ५४ ॥

---

१ तत्त्वसं० पञ्जि० पृ० ७८ पं० १०।
२ "अथ स्वभावतो वृत्तिरविचारित ... [illegible]
[illegible]

नास्ति आत्मा एकान्तत इति बृहस्पतिमतानुसारी। अस्ति आत्मा किन्तु प्रतिक्षणविशरारु- तया चित्तसंततेर्न नित्य इति बौद्धाः। अस्ति आत्मा नित्यो भोक्ता न तु करोति इति सांख्याः त एव प्राहुः कर्ता असौ न भोक्ता प्रकृतिवत् कर्तुर्भोक्तृत्वानुपपत्तेः। यद्वा येन कृतं कर्म नासौ तद् भुङ्क्ते क्षणिकत्वाद् चित्तसंततेः इति बौद्धाः क्षणिकत्वात् चित्तसंततेः कृतं न वेदयते इति बौद्ध ५ एव आह। कर्ता भोक्ता च आत्मा किन्तु न मुच्यतेऽसौ चेतनत्वात् अभव्यवत्—रागादीनामात्मस्व- रूपाऽव्यतिरेकात् तदक्षये तेषामपि अक्षयात् इति याज्ञिकः। निर्हेतुक एवासौ मुच्यते तत्स्वभावता- व्यतिरेकेण अपरस्य तत्र उपायस्य अभावात् इति मण्डली प्राह। एतानि षड् मिथ्यात्वस्य स्थानानि षण्णामप्येषां पक्षाणां मिथ्यात्वाधारतया व्यवस्थितेः।

तथाहि—एतानि नास्तित्वादिविशेषणानि साध्यधर्मिविशेषणतया उपादीयमानानि किं प्रति- १० क्षव्युदासेन उपादीयन्ते, आहोस्वित् कथंचित् तत्संग्रहेण इति कल्पनाद्वयम्। प्रथमपक्षे अध्यक्षवि- रोधः स्वसंवेदनाध्यक्षतश्चैतन्यस्य आत्मरूपस्य प्रतीतेः कथंचित् तस्य परिणामनित्यताप्रतीतेश्च शरी- रादिव्यापारतः कर्तृत्वोपलब्धेश्च स्वव्यापारनिर्वर्तितभक्त-सूपादिभोक्तृत्वसंवेदनाच्च पुद्गललक्षणविल- क्षणतया रागादिविविक्ततया च शमसुखरसावस्थायां कथंचित् तस्य उपलब्धेश्च स्वोत्कर्षतरतमादि- भावतो रागाद्यपचयतरतमभावविधायिसम्यग्ज्ञान-दर्शनादेरुपलम्भाच्च। अनुमानतोऽपि विरोधः १५ तथाभूतज्ञानकार्यान्यथानुपपत्तितः चैतन्यलक्षणस्य आत्मनः सिद्धिः घटादिवद् रूपादिगुणतः ज्ञान- स्वरूपगुणोपलम्भात् कथंचित् तदभिन्नस्य आत्मलक्षणस्य गुणिनः सिद्धिरिति कथं नानुमानविरोधः? इतरधर्मनिरपेक्षधर्मलक्षणस्य विशेषणस्य तदाधारभूतस्य च विशेष्यस्य अप्रसिद्धेः अप्रसिद्धविशेषण- विशेष्योभयदोषदुष्टश्च पक्षः। 'आत्मा' इति वचनेन तत्सत्ताभिधानम् 'नास्ति' इत्यनेन च तत्प्रतिषेधा- भिधानमिति पदयोः प्रतिज्ञावाक्ये व्याघातः लोकविरोधश्च तथाभूतविशेषणविशिष्टतया धर्मिणो २० लोकेन व्यपह्रियमाणत्वात् स्ववचनविरोधश्च तत्प्रतिपादकवचनस्य इतरधर्मसापेक्षतया प्रवृत्तेः। हेतु- रपि इतरनिरपेक्षैकधर्मरूपोऽसिद्धः तथाभूतस्य तस्य क्वचिद् अनुपलब्धेः सर्वत्र तद्विपरीत एव भावाद् विरुद्धश्च। दृष्टान्तश्च साध्यसाधनधर्मविकलः तथाभूतसाध्यसाधनधर्माधिकरणतया कस्यचिद् धर्मिणः अप्रसिद्धेः। तन्न प्रथमः पक्षः। नापि द्वितीयः स्वाभ्युपगमविरोधप्रसङ्गात् साधनवैकल्यापत्तेश्च तथाभूतस्य अनेकान्तरूपतया अस्माभिरप्यभ्युपगमात्। तस्माद् व्यवस्थितमेतत् एकान्तरूपतया २५ षडपि एतानि मिथ्यात्वस्य स्थानानि ॥ ५४ ॥

[आत्मन्येकान्तरूपस्यास्तित्वादिवादषट्कस्य मिथ्यारूपत्वकथनम्]

न केवलं 'नास्ति' इत्यादिरूपमिथ्यात्वस्थानानि तद्विपर्ययेणापि एकान्तवादे तथैव तानीति दर्शयन्नाह—

अत्थि अविणासधम्मी करेइ वेएइ अत्थि णिव्वाणं।
२० अत्थि य मोक्खोवाओ छम्मिच्छत्तस्स ठाणाइं ॥ ५५ ॥

'अस्ति आत्मा' इति पक्षः पूरणादेर्वादिनः। 'स च अविनाशधर्मी' इत्येषा प्रतिज्ञा कपिलमतानु- सारिणः। 'कर्तृ-भोक्तृस्वभावोऽसौ' इति मतं जैमिनेः। 'तथा [illegible]' इति [illegible]- [illegible]अनुसारिणः। 'अस्ति निर्वाणम्' 'अस्ति च मोक्षोपा[illegible] [illegible] पूर्वेण [illegible]रिणः सार्वज्ञिकः। एतं च अभ्युपगमा एकान्ताभ्युप[illegible] २५ [illegible] तथाभ्युपगमी च [illegible] तत्र भावात् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible]

[illegible]

पाठे इतरधर्माऽजहद्वृत्त्या प्रवर्तमाना एते षट् पक्षाः सम्यक्त्वस्य आधारतां प्रतिपद्यन्ते इति व्याख्येयम्। न च 'स्यादस्ति आत्मा' 'स्यान्नित्यः' इत्यादिप्रतिज्ञावाक्यम् अध्यक्षादिना प्रमाणेन बाध्यते स्व-परभावाभावोभयात्मकभावावभासकाध्यक्षादिप्रमाणव्यतिरेकेण अन्यथाभूतस्य अध्यक्षादेरप्रतीतेः तेन अनुमानाऽभ्युपगम-स्ववचन-लोकव्यवहारविरोधोऽपि न प्रतिज्ञायाः अध्यक्षादिप्रमाणबलेये सदसदात्मके वस्तुनि कस्यचिद् विरोधस्यासंभवात्। न चाप्रसिद्धविशेषणः पक्षः लौकिक-परीक्षके- ५
स्तथाभूतविशेषणस्याविप्रतिपत्त्या सर्वत्र प्रतीतेः अन्यथा विशेषणव्यवहारस्य उच्छेदप्रसङ्गात् अन्यथाभूतस्य तस्य क्वचिदपि असंभवात् तथाभूतविशेषणात्मकस्य धर्मिणः सर्वत्र प्रतीतेर्नाप्रसिद्धविशेष्यतादोषः। नापि अप्रसिद्धोभयता दूषणम् तथाभूतद्वयव्यतिरेकेणान्यस्याग्रहणतः प्रमाणाविषयत्वात्। हेतुरपि नाऽप्रसिद्धः तत्र तस्य सत्त्वप्रतीतेः, विपक्षे सत्त्वासंभवाद् नापि विरुद्धः अनैकान्तिकताऽपि अत एवायुक्ता। दृष्टान्तदोषा अपि साध्यादिविकलत्वादयो नात्र संभविनः प्रसिद्धत्वादि- १०
दोषवत्त्वेव साधने तेषां भावात्। न च अनुमानतः अनेकान्तात्मकं वस्तु तद्वादिभिः प्रतीयते अध्यक्षासिद्धत्वात् यस्तु प्रतिपन्नेऽपि ततस्तस्मिन् विप्रतिपद्यते तं प्रति तत्प्रसिद्धेनैव न्यायेन अनुमानोपन्यासेन विप्रतिपत्तिनिराकरणमात्रमेव विधीयते इति न अप्रसिद्धविशेषणत्वादेर्दोषस्यावकाशः। प्रतिक्षणपरिणाम-परभागादीनां तु उत्तरविकाराऽर्वाग्भागदर्शनान्यथानुपपत्त्या अनुमाने न अध्यक्षादिबाधा असदादाध्यक्षस्य सर्वात्मना वस्तुग्रहणाऽसामर्थ्यात् स्फटिकादौ च अर्वाग्भाग-परभागयो- १५
रध्यक्षत एवैकदा प्रतिपत्तेः। न च स्थैर्यग्राहकाध्यक्षं प्रतिक्षणपरिणामानुमानेन विरुध्यते अस्य तदनुग्राहकत्वात् कथंचित् प्रतिक्षणपरिणामस्य तत्प्रतीतस्यैव अनुमानतोऽपि निश्चयात्॥ ५५॥

[एकान्तवादिनः साधर्म्येण वा वैधर्म्येण वैकान्तधर्मयुक्तधर्मिसाधनाशक्तताभिधानम्]

अनेकान्तव्यवच्छेदेन एकान्तावधारितधर्माधिकरणत्वेन धर्मिणं साधयन्नेकान्तवादी न साधर्म्यतः साधयितुं प्रभुः नापि वैधर्म्यतः इति प्रतिपादयन्नाह— २०

साहम्मउ व्व अत्थं साहेज्ज परो विहम्मओ वा वि।
अण्णोण्णं पडिकुट्ठा दोण्णवि एए असव्वाया॥ ५६॥

समानस्तुल्यः साध्यसामान्यान्वितः साधनधर्मो यस्य असौ सधर्मा साधर्म्यदृष्टान्तापेक्षया साध्यधर्मी तस्य भावः साधर्म्यम् ततो वा अर्थं साध्यधर्माधिकरणतया धर्मिणं साधयेत् परः अन्वयिहेतुप्रदर्शनात् साध्यधर्मिणि विवक्षितं साध्यं यदि वैशेषिकादिः साधयेत् तदा तत्पुत्रत्वादे- ५५
रपि गमकत्वं स्यात् अन्वयमात्रस्य तत्रापि भावात्। अथ वैधर्म्याद् विगतलक्षणाभूतः साधनधर्मो यस्मात् असौ विधर्मा तस्य भावो वैधर्म्यम् ततो वा व्यतिरेकिणो हेतोः प्रकृतं साध्यं साधयेत् उभाभ्यां वा-'वा' शब्दस्य समुच्चयार्थत्वात्—तथापि तत्पुत्रत्वादेरेव गमकत्वप्रसक्तिः श्यामत्वाभावे तत्पुत्रत्वादेरन्यत्र गौरपुरुषेऽभावाद् उभाभ्यामपि तत्साधने अत एव साध्यसिद्धिप्रसक्तिः स्यात्।

[प्रसङ्गाद् हेत्वाभाससंख्याविषया चर्चा] १०

अथात्र कालात्ययापदिष्टत्वादिदोषसद्भावाद् न साध्यसाधकताप्रसक्तिः, न, असिद्ध-विरुद्धाऽनैकान्तिकहेत्वाभासव्यतिरेकेणापरहेत्वाभासासंभवात्। न च त्रैरूप्यलक्षणयोगिनोऽसिद्धत्वादिहेत्वाभासता एतत्कथादेरिव अनित्यत्वसाधने संभवति, अस्ति च भवदभिप्रायेण त्रैरूप्यं प्रकृतहेतावपि कुतोऽस्य हेत्वाभासता?

अथ भवतु अयं दोषः येषां त्रैरूप्येऽविनाभावपरिसमाप्तिः नास्माकं पञ्चलक्षणहेतुवादिनाम् १५
प्रकरणसमादेरपि हेत्वाभासत्वोपपत्तेः त्रैलक्षण्यसद्भावेऽपि असत्प्रतिपक्षत्वादेर्हेतुलक्षणस्य असंभवेन तदाभासत्वसंभवात्। "यस्मात् प्रकरणचिन्ता स प्रकरणसमः" (न्यायद० १ २ ७) इति प्रकरणसमस्य लक्षणाभिधानात्—प्रक्रियेते साध्यत्वेनाधिक्रियेते अनिश्चितौ पक्ष प्रतिपक्षौ यौ तौ प्रकरणम् तस्य चिन्ता संशयात् प्रभृत्यानिश्चयाद् आलोचनस्वभावा यतो भवति स एव निर्णयार्थम्

1 "यस्मात् प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थमपदिष्टः प्रकरणसमः" इति मुद्रिते न्यायसूत्रे।

सिद्धेः तस्मात् संदिग्धसाध्यधर्मा धर्मी हेतोराश्रयत्वेन वक्तव्य इति यदि अनैकान्तिकस्तत्र वर्तमानो
हेतुर्धूमादिरपि तर्हि तथाविध एव स्यात् तस्यापि एवं संदिग्धव्यतिरेकित्वात् यदि हि विपक्षवृत्तित्वेन
निश्चितो यथाऽगमकस्तथा संदिग्धव्यतिरेक्यपि अनुमानप्रामाण्यं परित्यक्तमेव भवेत् ततोऽनुमेय-
व्यतिरिक्ते साध्यधर्मवति वर्तमानः साध्याभावे चानैकान्तिको हेतुः साध्याभाववत्येव तु वर्तमानः
५ पक्षधर्मत्वे सति विरुद्ध इत्यभ्युपगन्तव्यम्। यश्च विपक्षाद् व्यावृत्तः सपक्षे च अनुगतः पक्षधर्मो
निश्चितः स स्वसाध्यं गमयति प्रकृतस्तु यद्यपि विपक्षाद् व्यावृत्तस्तथापि न स्वसाध्यसाधकः प्रतिब-
न्धस्य स्वसाध्येनानिश्चयात् तदनिश्चयश्च न विपक्षवृत्तित्वेन किन्तु प्रकरणसमत्वेन एकशाखाप्रभव-
त्वादेस्तु कालात्ययापदिष्टत्वेन इति, असदेतत्; यतो यदि धर्मिव्यतिरिक्ते धर्म्यन्तरे हेतोः स्वसाध्येन
प्रतिबन्धोऽभ्युपगम्यते तदा धर्मिण्युपादीयमानोऽपि हेतुः साध्यस्योपस्थापको न स्यात् साध्यधर्मिणि
१० साध्यमन्तरेणापि हेतोः सद्भावाभ्युपगमात् तद्व्यतिरिक्त एव धर्म्यन्तरे तस्य साध्येन प्रतिब-
न्धग्रहणात्। न चान्यत्र स्वसाध्याविनाभावित्वेन निश्चितः अन्यत्र साध्यं गमयेत् अतिप्रसङ्गात्। अथ
यदि साध्यधर्मान्वितत्वेन साध्यधर्मिण्यपि हेतुरन्वयप्रदर्शनकाल एव निश्चितस्तदा पूर्वमेव साध्यध-
र्मस्य साध्यधर्मिणि निश्चयात् पक्षधर्मताग्रहणस्य वैयर्थ्यम्, असदेतत्; यतः प्रतिबन्धप्रसाधकेन
प्रमाणेन सर्वोपसंहारेण साधनधर्मः साध्यधर्माभावे क्वचिदपि न भवतीति सामान्येन प्रतिबन्धनिश्चये
१५ पक्षधर्मताग्रहणकाले यत्रैव धर्मिण्युपलभ्यते हेतुस्तत्रैव स्वसाध्यं निश्चाययतीति पक्षधर्मताग्रहणस्य
विशेषविषयप्रतिपत्तिनिबन्धनत्वान्नानुमानस्य वैयर्थ्यम् न हि विशिष्टधर्मिण्युपलभ्यमानो हेतुस्तद्ग-
तसाध्यमन्तरेण उपपत्तिमान् अन्यथा तस्य स्वसाध्यव्याप्तत्वायोगात्। न चैवं तत्र हेतूपलम्भेऽपि
साध्यविपर्ययसद्भावानिश्चयः येन संदिग्धव्यतिरेकिता हेतोः सर्वत्र भवेत् निश्चितस्वसाध्याविनाभूत-
हेतूपलम्भस्यैव साध्यधर्मिणि साध्यप्रतिपत्तिरूपत्वात् न हि तत्र तथाभूतहेतुनिश्चयात् अपरस्तस्य
२० स्वसाध्यप्रतिपादनव्यापारः अत एव निश्चितप्रतिबन्धकहेतुसद्भावे धर्मिणि न विपरीतसाध्योपस्थाप-
कस्य तल्लक्षणयोगिनो हेत्वन्तरस्य सद्भावः तयोर्द्वयोरपि स्वसाध्याविनाभूतत्वात् नित्याऽनित्यत्वयोश्च
एकत्र एकदा एकान्तवादिमतेन विरोधात् असंभवात् तद्द्वयस्यापकहेत्वोरपि असंभवस्य न्यायप्रा-
प्तत्वात् संभवे वा तयोः स्वसाध्याविनाभूतत्वात् नित्याऽनित्यत्वधर्मयुक्तत्वं धर्मिणः स्यादिति कुतः
प्रकरणसमस्यागमकता? अथान्यतरस्यात्र स्वसाध्याविनाभावविकलता तर्हि तत एव तस्यागमकता
२५ इति किमसत्प्रतिपक्षतारूपप्रतिपादनप्रयासेन? किञ्च, नित्यधर्मानुपलब्धिः प्रसज्यप्रतिषेधरूपा,
पर्युदासरूपा वा शब्दानित्यत्वे हेतुः? न तावत् आद्यः पक्षः अनुपलब्धिमात्रस्य तुच्छस्य साध्यासा-
धकत्वात्। अथ द्वितीयः तदा अनित्यधर्मोपलब्धिरेव हेतुरिति यद्यसौ शब्दे सिद्धा कथं नानित्यता-
सिद्धिः? अथ चिन्तासंबन्धिना पुरुषेणासौ प्रयुज्यत इति न तत्र निश्चिता तर्हि कथं न संदिग्धा-
सिद्धो हेतुर्वादिनं प्रति प्रतिवादिनस्तु असौ स्वरूपासिद्ध एव नित्यधर्मोपलब्धेस्तत्र तस्य सिद्धेः। यदपि
३० 'उभयानुपलब्धिनिबन्धना यदा द्वयोरपि चिन्ता तदेकदेशोपलब्धेरन्यतरेण हेतुत्वेन उपादाने कथं
चिन्तासंबन्ध्येव द्वितीयः तस्याऽसिद्धतां वक्तुं पारयति' इत्याद्यभिधानम्, तदपि असंगतम्; यतो
यदि द्वितीयः संशयापन्नत्वात् तत्रासिद्धतां नोद्भावयितुं समर्थः प्रथमोऽपि तर्हि कथं संशयितत्वादेव
तस्य हेतुतामभिधातुं शक्तो भवेत्। अथ संशयितोऽपि तत्र हेतुतामभिदध्यात् तर्हि असिद्धतामप्य-
भिदध्यात् भ्रान्तेरुभयत्राविशेषात्। यदपि 'साधनकाले नित्यधर्मानुपलब्धिः अनित्यपक्ष एव वर्तते न
३५ विपक्षे' इत्याद्यभिधानम् तदपि असंगतम्; विपक्षाद् एकान्ततोऽस्य व्यावृत्तौ पक्षधर्मत्वे च स्वसा-
ध्यसाधकत्वमेव अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकव्यवच्छेदेन अपरत्र वृत्तिनिश्चये गत्यन्तराभावात् न हि
योऽनित्यपक्ष एव वर्तमानो निश्चितो वस्तुधर्मः स तत्र साधयतीति वक्तुं युक्तम्। अथ द्वितीयोऽपि
वस्तुधर्मस्तत्र तथैव निश्चितः, न; परस्परविरुद्धधर्मयोस्तदविनाभूतयोर्वा एकत्र धर्मिण्ययोगात् योगे
वा नित्यानित्यत्वयोः शब्दाख्ये धर्मिणि एकदा सद्भावाद् अनेकान्तरूपवस्तुसद्भावोऽभ्युपगतः स्यात्
४० तमन्तरेण तद्धेत्वोः स्वसाध्याविनाभूतयोस्तत्रायोगात्। अथ द्वयोस्तुल्यबलयोरेकत्र प्रवृत्तौ
विषयप्रतिबन्धान्न स्वसाध्यसाधकत्वम्, असदेतत्; स्वसाध्याविनाभूतयोर्धर्मिणि तयो
स्वसाध्यसाधकत्वमिति कुतस्तत्सद्भावे परस्परविषयप्रतिबन्धः? तत्प्रतिबन्धो हि तयो

---

१ साध्यधर्ममन्तरे—वा० बा०। २ पृ० ७१० पं० १६। ३-न्धेश्चरू- ।

तत्कृतिः स्यात् च त्रैरूप्याभ्युपगमे विरोधात् अमुना भावाऽभावयोः परस्परपरिहार-स्थितलक्षण-
त्वेनैकत्रायोगात्। अथ द्वयोरन्योन्यव्यवच्छेदरूपयोः एकत्रायोगात् अनित्यधर्मानुपलब्धेर्नित्यध-
र्मान्यथोः बाधा, न; अनुमानस्यानुमानान्तरेण बाधाऽयोगात्। तथाहि—तुल्यबलयोर्वा तयोर्बा-
ध्यबाधकभावः अतुल्यबलयोर्वा ? न तावत् आद्यः पक्षः द्वयोस्तुल्यत्वे एकस्य बाधकत्वम् अपरस्य
बाध्यत्वमिति विशेषानुपपत्तेः। न च पक्षधर्मत्वाद्यभावादेरेकस्य विशेषः तस्यानभ्युपगमात् ५
अभ्युपगमे वा तत एव एकस्य दुष्टत्वात् किञ्चिद् अनुमानबाधया। तन्न पूर्वः पक्षः। नापि द्वितीयः
; अतुल्यबलत्वं तयोः पक्षधर्मत्वादिभावाभावकृतम्, अनुमानबाधाजनितं वा ? न तावत् आद्यः
पक्षः तस्यानभ्युपगमात् अभ्युपगमे वाऽनुमानबाधावैयर्थ्यप्रसक्तेः। नापि द्वितीयः तस्यामपि विचा-
रसद्भावात् न हि द्वयोस्त्रैरूप्यात् तुल्यत्वे एकस्य बाध्यत्वम् अपरस्य च बाधकत्वम् इति व्यवस्थापयितुं
शक्यम्। तत्र अनुमानबाधाकृतमपि अतुल्यबलत्वम् इतरेतराश्रयदोषापत्तेः परिस्फुटत्वात्। एतेन १०
स्वपरपक्षान्यतरस्यापि प्रकरणसमस्य व्युदासः कृतो द्रष्टव्यः न्यायस्य समानत्वात्। यदपि 'अत्र
साधारणतयाऽसिद्धत्वदोषद्वयनिरासार्थमन्यतरशब्दाभिधेयत्वं पक्ष-सपक्षयोः साधारणं हेतुत्वेन
विवक्षितम् अन्यतरशब्दात् तथाविधार्थप्रतिपत्तेः तस्य तत्र योग्यत्वात्' इत्यभिधानम्, तदपि असंग-
तम्, यतः पक्षानियमेन फलसंबन्धो विवक्षितो भवति तत्रैव लोके 'अन्यतर'शब्दप्रयोगो दृष्टः यथा
'देवदत्त-यज्ञदत्तयोरन्यतरं भोजय' इत्यत्र अनियमेन देवदत्तः यज्ञदत्तो वा भोजनक्रियया संबध्यते १५
इति 'अन्यतर'शब्दप्रयोगः न चैवं शब्दः पक्ष-सपक्षयोरन्यतरः तस्य पक्षत्वेन 'अन्यतर'शब्दवाच्यत्वा-
योगात्। यदपि 'यदा पक्षधर्मत्वं प्रयोक्ता विवक्षति तदा 'अन्यतर'शब्दवाच्यः पक्षः' इत्याद्यभिधा-
नम्, तदपि असंगतम्; एवंविवक्षायामस्य कल्पनासमारोपितत्वे अनर्थरूपतया लिङ्गत्वानुपपत्तेः न
हि कल्पनाविरचितस्यार्थस्य त्रैरूप्यं वा उपपत्तिमत् अतिप्रसङ्गात् तत्त्वे वा अन्यस्य गमकतानिबन्ध-
नस्याभावात् नरशृङ्गतुल्यं स्यात् इति उक्तं प्राक्। कालात्ययापदिष्टस्य [illegible] लक्षणमसंगतमेव न हि २०
प्रमाणप्रसिद्धत्रैरूप्यसद्भावे हेतोर्विषयबाधा संभविनी तयोर्विरोधात् साध्यसद्भाव एव हेतोर्धर्मिणि
सद्भावत्रैरूप्यम् तदभाव एव च तत्र तत्सद्भावो बाधा भावाभावयोश्च एकत्र एकस्य विरोधः। किञ्च,
अध्यक्षाऽऽगमयोः कुतो हेतुविषयबाधकत्वमिति वक्तव्यम्, स्वार्थासंभवे तयोरभावात् इति चेत्
हेतावपि सति त्रैरूप्ये तत् समानमित्यसावपि तयोर्विषये बाधकः स्यात् दृश्यते हि चन्द्रार्कादिस्थै-
र्यादि अध्यक्षं देशान्तरप्राप्तिलिङ्गप्रभवगत्यनुमानेन बाध्यमानम्। अथ तस्यैवमाध्यक्षस्य तदा- २५
ऽभासत्वाद् बाध्यत्वं तर्हि एकशाखाप्रभवत्वानुमानस्यापि तदाभासत्वाद् बाध्यत्वमित्यभ्युपगन्त-
व्यम्। न चैवमस्तीति वक्तव्यम् यतस्तस्य तदाभासत्वं किमध्यक्षबाध्यत्वात्, उत त्रैरूप्यवैकल्यात् ?
न तावत् आद्यः पक्षः इतरेतराश्रयदोषसद्भावात्—तदाभासत्वे अध्यक्षबाध्यत्वम् ततश्च तदाभास-
त्वमिति एकाऽसिद्धौ अन्यतराऽप्रसिद्धेः। नापि द्वितीयः त्रैरूप्यसद्भावस्य तत्र परेणाभ्युपगमात्
अनभ्युपगमे वा तत एव तस्यागमकत्वोपपत्तेरध्यक्षबाधाभ्युपगमवैयर्थ्यात्। न चाबाधितविषयत्वं ३०
हेतुलक्षणमुपपन्नम् त्रैरूप्यव्यवस्थितस्यैव तस्य गमकाङ्गतोपपत्तेः। न च तस्य निश्चयः संभवति,
स्वसंबन्धिनोऽबाधितत्वनिश्चयस्य तत्कालभाविनः असम्यगनुमानेऽपि सद्भावात् उत्तरकालभाविनः
असिद्धत्वात्, सर्वसंबन्धिनस्तात्कालिकस्य उत्तरकालभाविनश्चासिद्धत्वात्। न हि अर्वाग्दृशा 'सर्वत्र
सर्वदा सर्वेषामत्र बाधकस्याभावः' इति निश्चेतुं शक्यम्, तन्निश्चयनिबन्धनस्याभावात् नानुपलम्भ-
निबन्धनः सर्वसंबन्धिनस्तस्यासिद्धत्वात्, आत्मसंबन्धिनः अनैकान्तिकत्वाच्च संवादस्तन्निब- ३५
न्धनः प्राग् अनुमानप्रवृत्तेस्तस्यासिद्धेः अनुमानोत्तरकालं तन्निश्चयाभ्युपगमे इतरेतराश्रयदोषप्रसक्तेः।
तथाहि—अनुमानात् प्रवृत्तौ संवादनिश्चयः ततश्चाबाधितत्वावगमे अनुमानप्रवृत्तिरिति परिस्फुट-
मितरेतराश्रयत्वम्। न चाविनाभावनिश्चयादपि अबाधितविषयत्वनिश्चयः, पञ्चलक्षणयोग्यविनाभा-
वपरिसमाप्तिवादिनामबाधितविषयत्वानिश्चये अविनाभावनिश्चयस्यैव असंभवात्। यदि च प्रत्यक्षा-
ऽऽगमबाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तस्यैव कालात्ययापदिष्टत्वम् तर्हि 'मूर्खोऽयं देवदत्तः, त्वत्पुत्र- ४०
त्वात्, उभयाभिमतत्वत्पुत्रवत्' इत्यस्यापि गमकता स्यात्। न हि सकलशास्त्रव्याख्यातृत्वलिङ्गजनि-
तानुमानबाधितविषयत्वमन्तरेण अन्यद् अध्यक्षबाधितविषयत्वम् आगमबाधितविषयत्वं वा अगम

१-त्वात्–भा० मा०

फलानिबन्धनमस्मास्ति। न चानुमानस्य तुल्यबलस्यान्यानुमानं प्रति बाधकता संभविनी इति
व्यम्, निश्चितप्रतिबन्धलिङ्गसमुत्थस्यानुमानस्यानिश्चितप्रतिबन्धलिङ्गसमुत्थेन अतुल्यबलत्वात्
एव न साधर्म्यमात्राद् हेतुर्गमकः अपि तु आश्रितव्यतिरेकात् साधर्म्यविशेषात्। नापि …
त्रात् किन्तु अङ्गीकृतान्वयात् तद्विशेषात्। न च परस्परानुविद्धोभयमात्रादपि अपि तु …
५ रूपाजहद्वृत्तिसाधर्म्य-वैधर्म्यरूपवत्वात्। न च प्रकृतहेतौ प्रतिबन्धनिश्चायकप्रमाणनिबन्धनं …
निश्चितमिति, तदभावादेव अस्य हेत्वाभासत्वम्। पुन… [illegible]
दात्। यदा च पक्षधर्मत्वाद्यनेकवास्तवरूपात्मकमेकं लिङ्गमभ्युपगमविषयस्तदा तत् …
वस्तु प्रसाधयतीति कथं न विपर्ययसिद्धिः? न च साध्यसाधनयोः परस्परतो धर्मिणश्च …
पक्षधर्मत्वादिधर्मयोगो लिङ्गस्य उपपत्तिमान्, संबन्धासिद्धेः। न च समवायादेः संबन्धस्य …
१० एकार्थसमवायादिः साध्य-साधनयोः धर्मिणश्च सम्बन्धः संभवी, एकान्तपक्षे तादात्म्य-त… …
क्षणोऽप्यसौ अयुक्त एव इति 'पक्षधर्मत्वम्' इत्यादि हेतुलक्षणमसंगतमेव स्यात्। …
दिकं हेतोस्त्रैरूप्यमभ्युपगम्यते कथं न परवादाश्रयणम् एकस्य हेतोरनेकधर्मात्मकस्य अभ्युपगमा…
न च यदेव पक्षधर्मस्य सपक्ष एव सत्त्वम् तदेव विपक्षात् सर्वतो व्यावृत्तत्वमिति वाच्यम्, …
व्यतिरेकयोर्भावाभावरूपयोः सर्वथा तादात्म्यायोगात् तत्त्वे वा केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी
१५ सर्वो हेतुः स्यात् न त्रिरूपवान् व्यतिरेकस्य च अभावरूपत्वात् हेतोस्तद्रूपत्वे अभावरूपो हे…
स्यात्। न चाभावस्य तुच्छरूपत्वात् स्वसाध्येन, धर्मिणा वा संबन्ध उपपत्तिमान्। न च विप…
सर्वत्रासत्त्वमेव हेतोः स्वकीयं रूपं व्यतिरेकः न तुच्छाभावमात्रमिति वक्तव्यम्, यतो यदि सप…
एव सत्त्वं विपक्षाद् व्यावृत्तत्वम् न ततो भिन्नमस्ति तदा तस्य तदेव सावधारणं नोपपत्तिमत् वस्तुभ…
तान्याभावमन्तरेण प्रतिनियतस्य तस्य तत्राऽसंभवात्। अथ ततः तद् अन्यद् धर्मान्तरम् तर्हि एक…
२० रूपस्य अनेकधर्मात्मकस्य हेतोस्तथाभूतस्य साध्याविनाभूतत्वेन निश्चितस्य अनेकान्तात्मकवस्तुप्रति-
पादनात् कथं न परोपन्यस्तहेतूनां सर्वेषां विरुद्धता एकान्तविरुद्धेनानेकान्तेन व्याप्तत्वात्?

किञ्च, हेतुः सामान्यरूपो वा उपादीयेत परैः, विशेषरूपो वा? यदि सामान्यरूपस्तदा त…
व्यक्तिभ्यो भिन्नम्, अभिन्नं वा? न तावद् भिन्नम् 'इदं सामान्यम् अयं विशेषः, अयं तद्वान्' इति
वस्तुत्रयोपलम्भानुपलक्षणात् तथा च सामान्यस्य भेदेन अभ्युपगन्तुमशक्यत्वात्। न च समवाय-
२५ वशात् परस्परं तेषां भेदेन अनुपलक्षणम् यतः समवायस्य 'इह' बुद्धिहेतुत्वमुपगीयते, न च भेदग्रह-
णमन्तरेण 'इह इदमवस्थितम्' इति बुद्ध्युत्पत्तिसंभवः। किञ्च, "नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिः"
[ ] इति काणादानां सिद्धान्तः न च सामान्यनिश्चयः संस्थानभेदावसायमन्तरेण
उपपद्यते यतः दूरात् पदार्थस्वरूपमुपलभमानो नागृहीतसंस्थानभेदः अश्वत्वादिसामान्यमुपलब्धुं
शक्नोति, न च संस्थानभेदावगमस्तदाधारोपलम्भमन्तरेण संभवतीति कथं नेतरेतराश्रयदोषप्रसङ्गः।
३० तथाहि—पदार्थग्रहणे सति संस्थानभेदावगमः तत्र च सामान्य-विशेषावबोधः तस्मिंश्च सति पदार्थ-
स्वरूपावगतिः इति व्यक्तमितरेतराश्रयत्वम् चक्रकप्रसङ्गो वा। किञ्च, अश्वत्वादेः सामान्यभेदस्य
स्वाश्रयसर्वगतत्वे कर्कादिव्यक्तिशून्ये देशे प्रथमतरमुपजायमानाया व्यक्तेः अश्वत्वादिसामान्येन
योगो न भवेत् व्यक्तिशून्ये देशे सामान्यस्य अनवस्थानात् व्यक्त्यन्तरादनागमनाच्च …
तद् अभ्युपगन्तव्यम् एवं च कर्कादिभिरिव शावलेयादिभिरपि तद् अभिव्यज्येत।
३५ तदभिव्यक्तौ सामर्थ्यम् न शावलेयादीनामिति वाच्यम्, यतः यया प्रत्यासत्त्या …
अवस्थापयन्ति तथैव ता एव 'अश्वः अश्वः' इति … [illegible]
द्भिन्नसामान्यप्रकल्पनया? न च स्वाश्रयेन्द्रियसंयोगात् प्राक् … [illegible]
परैरनाधेयातिशयम् तमपेक्ष्य स्वावभासि ज्ञानं जनयति, प्राक्त… [illegible]
न्तरानुत्पादे च तदयोगात् तथाभ्युपगमे च क्षणिकताप्रसक्तिः …
४० ततो भेदः संबन्धासिद्धितः तत्सद्भावेऽपि प्राग्वत् तस्य …
स्यात्। तथा च सामान्यस्य व्यक्तिभ्यो भेदेन अप्रतिभासमानस्य …
प्रतिव्यक्ति सामान्यस्य सर्वात्मना परिसमाप्तत्वाभ्युपगमात् …

1 साधारणं वा॰ बा॰ मां॰ मो॰ विना। …

तरे वृत्त्यनुपपत्तेस्तदनुरूपप्रत्ययस्य तत्रासंभवात् असाधारणता च हेतोः स्यात् । यदि च
ारणरूपा व्यक्तयः स्वरूपतः तदा परसामान्ययोगादपि न साधारणतां प्रतिपद्यन्त इति व्यर्था
न्यप्रकल्पना स्वतः असाधारणस्य अन्ययोगादपि साधारणरूपत्वानुपपत्तेः स्वतस्तद्रूपत्वेऽपि
ना सामान्यकल्पना इति व्यक्तिव्यतिरिक्तस्य सामान्यस्य अभावात् असिद्धलक्षणो हेतुः इति
ततः साध्यसिद्धिः ? अथ व्यक्त्यव्यतिरिक्तं सामान्यं हेतुः तदपि असंगतमेव व्यक्त्यव्यतिरिक्तस्य ५
क्तिस्वरूपवद् व्यक्त्यन्तराननुगमात् सामान्यरूपतानुपपत्तेः व्यक्त्यन्तरसाधारणस्य वस्तुनः 'सामा-
म्' इत्यभिधानात् तत्साधारणत्वे वा न तस्य व्यक्तिस्वरूपाऽव्यतिरिच्यमानमूर्तिना सामान्यरूपतया
दाव्यतिरिच्यमानस्वरूपस्य विरोधात् । तत्र व्यक्त्यव्यतिरिक्तमपि सामान्यं हेतुः व्यक्तिस्वरूपवत्
साधारणत्वेन गमकत्वायोगात् अत एव न व्यक्तिरूपमपि हेतुः । न चोभयं परस्परानन्तुविद्धं हेतुः
भयदोषप्रसङ्गात् । न अनुभयम् अन्योन्यव्यवच्छेदरूपाणामेकाभावे द्वितीयविधानात् अनुभयस्य १०
साधारणत्वेन गमकत्वायोगात् ... सामान्यम् अवस्तुरूपत्वात् साध्येन अप्रतिबन्धात्
...भयदोषप्रसङ्गात् । न अनुभयम् ... बुद्धिप्रकल्पितं च सामान्यम् ... विभ्रद् एकमेव पदार्थस्वरूपं
...प्रसरेण हेतुत्वायोगात् बुद्धिप्रकल्पितं च ... पदार्थान्तरानुवृत्तव्यावृत्तरूपमात्मानं तथाभूतसाध्यसिद्धिनिबन्धनमभ्युप-
...सिद्धत्वाच्च न हेतुः । तस्मात् पदार्थान्तरानुवृत्त... हेतुत्वेन उपादीयमानं तथाभूतसाध्यसिद्धिनिबन्धनमभ्युप- १५
...प्रतिपत्तुर्भेदाभेदप्रत्ययप्रसूतिनिबन्धनं हेतुत्वेन उपादीयमानं ... तदेव कथमनुवृत्तिमात्मन्यति, यच्च अनुवर्तते तत्
...न्तव्यम् । न च यदेव रूपं रूपान्तराद् व्यावर्तते तदेव ... भेदाभेदरूपतया अध्यक्षतः प्रतीयमाने वस्तु १५
...कथं व्यावृत्तिरूपतामात्मसात्करोतीति इति वक्तव्यम् ।
...रूपे विरोधासिद्धेरिति असकृद् आवेदितत्वात् ।

किञ्च, एकान्तवाद्युपन्यस्तहेतोः किं सामान्यं साध्यम्, आहोस्विद् विशेषः, उत उभयं परस्पर-
...वेक्षितम्, उतस्विद् अनुभयमिति विकल्पाः । तत्र न तावत् सामान्यम् केवलस्य तस्य असंभवात्
...अर्थक्रियाकारित्वविकलत्वाच्च । नापि विशेषः तस्य अननुयायित्वेन साधयितुमशक्यत्वात् । नापि २०
...उभयपक्षोक्तदोषानतिवृत्तेः । नापि अनुभयम् तस्य असतो हेतुव्यापकत्वेन साध्यत्वायोगात्,
...अपि अन्योन्यप्रतिकुष्टौ प्रतिक्षिप्तौ द्वावपि एतौ सामान्य-विशेषवादिनौ
...सत्ता... साधयितुमशक्यत्वात् ॥ ५६ ॥

तदेव आह गाथापश्चार्धेन अन्योन्यप्रतिकुष्टौ ... ... निराकरणम्]

...सद्वादाविति । इतरेतरनिर्मुक्तस्य एकस्य ... सामान्य-विशेषयोः स्वरूपमनूद्य तस्य निराकरणम्]

[परस्परभिन्नं सामान्य-विशेषयोः स्वरूपं परस्परविविक्तमनूद्य निराकुर्वन् आह—

सामान्य-विशेषयोः स्वरूपं ...

दव्वट्ठियवत्तव्वं सामण्णं पज्जवस्स य विसेसो ।

एए समोवणीआ विभज्जवायं विसेसेंति ॥ ५७ ॥

द्रव्यास्तिकस्य वक्तव्यं वाच्यम् विशेषनिरपेक्षं सामान्यमात्रम्, पर्यायास्तिकस्य पुनः ...
...आकारविविक्तो विशेष एव वाच्यः एतौ च सामान्यविशेषौ अन्योन्यनिरपेक्षौ ... अनेकान्तवादं ...
...प्राधान्येन वा एकत्र उपनीतौ प्रदर्शितौ विभज्यवादम् ... लभेते इति यावत्—विशेषे साध्ये अनुमानाभ...
...तिशयाते ... ततः तौ अतिशयं लभेते इति यावत्—विशेषे साध्ये उभयदोषानतिवृ...
...सामान्ये साध्ये सिद्धसाधनतया साधनवैफल्यतः, प्रधानोभयरूपे साध्ये उभयदोषानति...
...अनुभयरूपे साध्ये उभयाभावतः साध्यत्वायोगात् । तस्माद् विचारास्पदीभूतसामान्यविशेषोभया...
...साध्यधर्माधारसाध्यधर्मिणि अन्योन्यानुविद्धसाध्यधर्मधर्म्यात्मकसाध्यप्रयोगमेव हेतुप्रदर्शनमेवं ...
...यादपक्षोक्तदोषावकाशः. ... अत एव गाथापश्चार्धेन एतौ सामान्य विशेषौ समुपनी...
...परस्परव्यवस्थया 'स्यात्'पदप्रयोगतो धर्मिणि अवस्थापितौ विभज्यवादम् ...
...विशेषपक्षः निराकृतः एवमेव तयोरन्यमत्ताभावात् अन्यथा अनुमानविषयस्य ...
...अपि दर्शयति ॥ ५८ ॥

[अनेकान्तरूपतया वस्तु साधयतो वादिनोऽन्यवादाभिधानम्]

यत्र अनुमानविषयतया अभ्युपगम्यमानं साध्य दूषणवादिन अवधारा एव ...
...पारं हेतुविषयतया अभ्युपगत ... दर्शयन्

...न्तौरिति ... ...

इति, "धर्माधर्मक्षयंकरी दीक्षा" [ ] इत्यादिकमधीत्य 'सूत्रधरा वयम्' इति श[illegible]
मात्रसंतुष्टा वर्तयन्तः अविकोविदसामर्थ्याः अविकोविदम् अज्ञं सामर्थ्यं येषां ते तथाऽवि[illegible]
सूत्रव्यापारविषया इति यावत् । किमित्येवं ते ? इत्याह—यथाश्रुतमेव अविभक्ता [illegible]
प्रतिपत्तिरेषामिति कृत्वा सूत्राभिप्रायव्यतिरिक्तविषयविप्रतिपत्तित्वात् इतरजनवद् अज्ञा इत्य[illegible]
५ प्रायः । अथवा स्वयूथ्या एव एकनयदर्शनेन कतिचित् सूत्राणि अधीत्य केचित् 'सूत्रधरा वयम्' [illegible]
गर्विता यथावस्थितान्यनयसव्यपेक्षसूत्रार्थापरिज्ञानाद् अविदितात्मविद्वत्स्वरूपा इति गाथा[illegible]
प्रायः ॥ ६१ ॥

[निरपेक्षैकनयप्रवृत्तानां दोषोद्भावनम्]

अथ एषामेकनयदर्शनेन प्रवृत्तानां यो दोषस्तमुद्भावयितुमाह—

१० सम्मद्दंसणमिणमो सयलसमत्तवयणिज्जणिद्दोसं ।
अत्तुक्कोसविणट्ठा सलाहमाणा विणासेंति ॥ ६२ ॥

सम्यग्दर्शनमेतत् परस्परविषयाऽपरित्यागप्रवृत्तानेकनयात्मकम् तच्च 'स्यादस्ति' इत्या[illegible]
सकलधर्मपरिसमाप्तवचनीयतया निर्दोषम्, एकनयवादिनस्त्वविषये [illegible]
आत्मोत्कर्षेण विनष्टाः स्याद्वादाभिगमं प्रति अनाद्रियमाणा 'वयं सूत्रधराः' इत्यात्मा[illegible]
१५ श्लाघमानाः सम्यग्दर्शनं विनाशयन्ति—तदात्मनि न व्यवस्थापयन्तीति यावत् ॥ ६२ ॥

[न शासनभक्तिमात्रेण नाप्यास्तिकज्ञानमात्रेणानेकान्तप्ररूपणाकुशल इति कथनम्]

अथ न ते आगमप्रत्यनीकाः तद्भक्तत्वात् तद्देशपरिज्ञानवन्तश्चेति कथं तद् विनाशयन्तीति[illegible]
मत्राह—

ण हु सासणभत्तीमेत्तएण सिद्धंतजाणओ होइ ।
२० ण वि जाणओ वि णियमा पण्णवणाणिच्छिओ णामं ॥ ६३ ॥

न च शासनभक्तिमात्रेणैव सिद्धान्तज्ञाता भवति—न च तद्ज्ञानवान् [illegible]
वान् भवति [illegible] विशिष्ट[illegible]विषयव्यवस्थापनेः तद्भक्तिमात्रेण [illegible]
[illegible]वम् । मार्गानुसारि[illegible]मात्रानुरक्त[illegible]मायं तु तदपि न [illegible]
[illegible]निमित्त[illegible]वैव तस्य [illegible] । न च जीवादितत्त्वैकदेशज्ञाता[illegible]
२५ नियमतो[illegible]प्रज्ञापनायां निश्चितो भवति [illegible]
[illegible] । तथाहि—[illegible]
[illegible] आगमविदः [illegible] "मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्र[illegible]
सर्वपर्यायेषु" [तत्त्वार्थ० १-२७] इति वचनात् ।

[[illegible]]

३० [illegible] बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षाख्याः सप्त पदार्थाः । [illegible]
[illegible] धर्माधर्माकाशकालपुद्गलभेदेन [illegible]
[illegible]

१- [illegible] २ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] उत्क्षेपणाऽपक्षेपणादीनि च कर्माणि, सामान्य-विशेष-समवायाश्च
[illegible] तेषां तदात्मकत्वेन
[illegible] त्यन्तरत्वेन द्रव्य-गुण-कर्म-
[illegible] ततो जीवाजीवाभ्यां पृथग् आत्यन्तरत्वेन द्रव्य-गुण-कर्म-
[illegible] अन्यथा [illegible] । एवम् प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव-
[illegible] विशेष-समवायां न वाच्याः । एवम् प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्तावयव- ५
[illegible]-निर्णय वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानीनि च न पृथग् अभिधानी-
[illegible] । तथा,

"प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः ।

तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि" ॥ [सांख्यका० का० २२] इति

[illegible] पदार्थाः पुनरुक्तेति न वक्तव्यम् । तथा, दुःख-समुदा(द)य-मार्ग-निरोधाख्यानि आर्य- १०
[illegible]ानि इति न वक्तव्यम् । तथा पृथिवी आपः तेजः वायुः इति तत्त्वानि इति न वक्तव्यम् । तत्प्रभेद-
[illegible] अभिधानेऽपि न दोषः [illegible] एव अघटमानत्वात् राशिद्वयेन सकलस्य जगतो
[illegible] प्राक् प्रतिपादितत्वात्, अबाधित-
[illegible] विद्याऽविद्याद्वयभेदाद् द्वैतकल्पना-
[illegible] अन्यथा निर्विषयत्वेन उभयोर-
[illegible] विपर्यस्ताऽविपर्यस्तज्ञानयोरिव १५
[illegible]अपि [illegible] । [illegible] न हि द्वयोर्निरालम्बनत्वे [illegible]
[illegible] तत्प्रतिभासस्य अघटमानत्वात् न [illegible]
[illegible] ततो नाद्वयं वस्तु, नापि तद्व्यतिरिक्तमस्ति ।

अथ आस्रवादीनामपि अनुपपत्तिः राशिद्वयेन सकलस्य व्याप्तत्वात्, न, ततस्तेषां कथंचिद्
[illegible] सकारणसंसार-मुक्तिप्रतिपादनपरत्वात् तथाभि-
[illegible] विप्रतिपत्तिनिरासार्थत्वाद् वा तद्-
[illegible]प्रतिपादनार्थत्वात् अनयोरेव तथापरिणतयोः [illegible] विप्रतिपत्तिनिरासार्थत्वाद् वा तद्- २०
[illegible] मुक्तिहेतुत्वप्रदर्शनार्थत्वात् [illegible] काय-वाग्-मनोव्यापारः स च
[illegible] अनेन वा क्रमेण [illegible] आस्रवः [illegible] तस्योपपत्तिः । प्राक्
[illegible] । तथाहि—आस्रवति कर्म येनः स आस्रवः [illegible] कथं तस्योपपत्तिः । प्राक्
[illegible] अनुकूलता । तथाहि—[illegible] प्रतीतिविषयत्वात् । अथ [illegible]भावे [illegible] अतिप्रसङ्गात्, असद्-
[illegible] जीवाजीवाभ्यां कथंचिद् भिन्नः तथैव प्रतीतिविषयत्वात् । अथ [illegible] अतिप्रसङ्गात्, असद्-
[illegible] न तस्य बन्धहेतुता न हि यद् यद्धेतुकं तत् तदभावेऽपि भवति [illegible] प्रवाहापेक्षया
[illegible] पूर्वोत्तरापेक्षया अन्योन्य कार्यकारणभावनियमात् । न च इतरेतराश्रयदोषः प्रवाहापेक्षया
[illegible] अनेकप्रकारोऽपि द्रव्य- २५
[illegible] द्विविधः उत्कर्षाऽपकर्षभेदेन अनेकधा [illegible]
[illegible] । पुण्यापुण्यबन्धहेतुतया चासौ द्विविधः [illegible] [प्र० का० गा० १९] इति
[illegible] कम्मं जोगनिमित्तं [प्र० का० गा० १९] इति
[illegible] सकषायस्य आत्मनः कर्मवर्गणापुद्गलैः
[illegible] संभवतीति [illegible] । तन्निमित्तः [illegible] प्रदेशभेदेन चतुर्धा पुनः
[illegible] एकान्तवादिनां च नायं संभवतीति [illegible] प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशभेदेन चतुर्धा पुनः
[illegible] प्राक् प्रतिपादितत्वात् । तन्निमित्तः [illegible] अनेकविधः
[illegible] सामान्येन एकविधोऽपि प्रकृति-[illegible]प्रकृतिभेदाद् अनेकविधः
[illegible] बन्ध. स च सामान्येन एकविधोऽपि पुनरपि [illegible] नारकादिफलनिर्वर्तकत्वाद् ३०
[illegible] ज्ञानावरणीयादि-मूलप्रकृतिभेदाद् [illegible]विधः पुनरपि [illegible] नारकादिफलनिर्वर्तकत्वात् ।
[illegible] तीर्थकरत्वादिफलनिर्वर्तकत्वात् प्रशस्तः अपरश्च [illegible]
[illegible] च [illegible] तीर्थकरत्वादिफलनिर्वर्तकत्वात् प्रशस्तः [illegible] सातवेदनीयफलनिर्वर्तकत्वात् ।
[illegible] प्रशस्ताऽप्रशस्ताध्यवसायपरिणामोद्भूतस्य कर्मणः शुभ तु [illegible]

[illegible] ।

१ [illegible] । २ [illegible] ।

३ न्यायद० १-१ [illegible] । ४ [illegible] । तथाप-

[illegible] ॥ १ ॥—षड्द० मु० ।

५ [illegible] गमावेशेऽपि त्रिवि-

[illegible] मनोदण्डादित्रिविधदण्डस्य [illegible] अर्थसंगतिः

[illegible] 'कुण्डाद्यसुत्यादि' इति पाठः [illegible]

६ आश्रय—मू० [illegible] । [illegible] ज्ञानस्य विपर्ययोऽज्ञानं [illegible] × ×

[illegible] प्रकृतिबन्ध [illegible] दक्षिणबन्धेति

[illegible] । ८ मू० [illegible] ।

९ 'ज्ञानेन [illegible] × × [illegible] मादरद० मू० ६९] इत्यादिना साख्या [illegible]

[illegible] प्रकृतिबन्धो नाम [illegible] ।

[illegible] ।

[ध्यानचतुष्कस्य सभेदप्रभेदं व्यावर्णनम्]

अप्रशस्तश्च आत्मपरिणामो द्विविधः आर्त-रौद्रभेदात् आमुहूर्तस्थायी आक्रन्द-
परिदेवन-शोचन-परविभवविस्मय-विषयसंगादिकश्च संवेद्य आत्मनः
परिणामविशेष आर्तध्यानशब्दवाच्यो बाह्यः आभ्यन्तरश्च
५ उत्पन्नस्य च विनाशाध्यवसायः मनोज्ञसंप्रयोगस्य उत्पत्तिकल्पनाध्यवसायः उत्पन्न-
संकल्पाध्यवसानम् इत्येतत् चतुर्विधमार्तध्यानम् अमनोज्ञसंप्रयोगश्च
शीताऽऽतप-व्यालादिजनितो बाह्यः वात-पित्त-श्लेष्मादिप्रादुर्भूतोऽभ्यन्तरः शारीर-
दाऽरति-शोक-जुगुप्सा-दौर्मनस्यादिप्रभवो मानसः अयममनोज्ञसंप्रयोगः कथं
इति संकल्पप्रबन्ध आर्तध्यानम् कृष्ण-नील-कापोतलेश्याबलाधायकं प्रमादाधिष्ठानम्
१० गुणस्थानात् तिर्यग्-मनुष्यगतिनिर्वर्तकम् उत्कर्षाऽपकर्षभेदात् क्षायोपशमिकभावक-
रूपत्वात्। एवं रुद्रे भवं रौद्रं हिंसाऽनृत-स्तेय-संरक्षणाऽऽनन्दभेदेन चतुर्विधम्
नन्दो रुचिर्यस्मिन् तद् हिंसानन्दम् एवमुत्तरत्रापि योज्यम् एतदपि बाह्याध्यात्मभेदात्
परुषनिष्ठुरवचनाक्रोशनिर्भर्त्सनताडनपरदारातिक्रमाभिनिवेशादिरूपं बाह्यम्—
ऽनुमानगम्यं बाह्यम्; आध्यात्मिकं हिंसायां संरम्भ-समारम्भादिलक्षणायां
१५ संकल्पाध्यवसानम्-संकल्पश्चिन्ताप्रबन्धस्तस्याध्यवसानम्—तीव्रकषायानुरञ्जनं प्रथमं
नाम। परेषामनेकप्रकारैर्मिथ्यावचनैर्वञ्चनं प्रति संकल्पाध्यवसानं मृषानन्दं नाम
प्रति अनेकोपायैर्यत् तत् स्तेयानन्दम्। परिग्रहे 'मम एव इदं स्वम् अहमेव अस्य'
अभिनिवेशः तदपहर्तृविघातेन संरक्षणं प्रति संकल्पाध्यवसानं संरक्षणानन्दम्।
कृष्णादिलेश्याबलाधायकं प्राक् प्रमत्तगुणस्थानात् प्रमादाधिष्ठानं
२० नरकगतिफलनिर्वर्तकं पापध्यानद्वयमपि हेयम्।

उपादेयं तु प्रशस्तं धर्म-शुक्लध्यानद्वयम्। तत्र पर्वतगुहा-जीर्णोद्यान-
[illegible] अवकाशे मनोविक्षेपनिमित्तशून्ये शय्योपयोगरहिते उचिते शिलातलादौ
[illegible] ऊर्ध्वस्थानस्थो वा [illegible] प्राणाऽपानप्रचारः—अतिप्राणनिरोधे
[illegible] एकाग्रमनानुगतः—निश्चलोऽयमादिकरणप्रचारो हृदि ललाटे मस्तके नाभ्यां वा
२५ मनोवृत्तिं प्रणिधाय मुमुक्षुर्ध्यायेत् प्रशस्तं ध्यानम्। तत्र बाह्याध्यात्मिक [illegible]
[illegible] धर्म्यम्। तच्च द्विविधम् बाह्यम् आध्यात्मिकं च। सूत्रार्थ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
३० [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
३५ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

सली' इत्यादिरागहेतुविरोधानुचिन्तनं वैराग्यविचयम् । 'प्रेत्य स्वकृतकर्मफलोपभोगार्थं पुनः
ी भव भ च शरदमदीयकमद् मूत्र-पुरीषाऽऽन्त्रतन्त्रनिबद्धदुर्गन्धजठरपुटकोटरादिषु
ायनंतनम् न चात्र किंचिद् जन्तोः स्वकृतकर्मफलमनुभवतः चेतनमचेतनं वा सहायभूतं
ी प्रतिपत्ते' इत्यादि भवसंक्रान्तिदोषपर्यालोचनं भवविचयम् । 'भवन-वन-सरित्-समुद्र-
दयः पृथिवीवलयनिभाः ताऽपि घनोदधि-घनवात-तनुवातप्रतिष्ठा तेऽपि आकाशप्रतिष्ठाः ५
ानप्रतिष्ठम् तत्र अधोमुखमाकारसंस्थानं वर्णयन्ति अधोलोकम्' इत्यादि च संस्थानानु-
नं संस्थानविचयम् । अतीन्द्रियत्वाद् हेतूदाहरणादिविरहेऽपि बुद्ध्यतिशयतारकिविकलैः पर-
-बन्ध-मोक्ष-धर्माऽधर्मादिभावेषु अत्यन्तदुरवबोधेषु आप्तप्रामाण्यात् तद्विषयं तद्वचनं तथैवेति
ादिविचयम् । आगमविषयविप्रतिपत्तौ तर्कानुसारिबुद्धेः पुंसः स्याद्वादप्रकाशकागमस्य कष-च्छेद-
शुद्धितः समाश्रयणीयगुणानुचिन्तनं हेतुविचयम् । एतच्च सर्वं धर्मध्यानम् श्रेयोहेतुत्वात् १०
संवररूपम् अनुभाव्यप्रत्यनीकत्वात् "आस्रवनिरोधः संवरः" [तत्त्वार्थ० ९-१] इति
ात् । गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षादीनां चाश्रवप्रतिबन्धकारित्वात् । अयमपि जीवाऽजीवाभ्यां
चेद्भिदः भेदाभेदैकान्ते दोषोपपत्तेः । न चायमेकान्तवादिनां घटते मिथ्याज्ञानात् मिथ्या-
न निरोधानुपपत्तेः । संवरश्च द्विविधः सर्व-देशभेदात् । पीत-पद्मलेश्याबलाधानमप्रमत्त- १५
पन्न अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाणं स्वर्गापवर्गनिबन्धनभेदेन धर्मध्यानं प्रतिपत्तव्यम् ।

कषायदोषमलापगमात् शुचित्वम् तदनुयोगात् शुक्लं ध्यानम् । तच्च द्विविधम्-शुक्ल-परमशुक्ल-
म् । तत्र पृथक्त्ववितर्कसवीचारम् एकत्ववितर्कावीचारं चेति शुक्लं द्विधा । परमशुक्लमपि सूक्ष्म-
प्रतिपाति व्युपरतक्रियानिवर्ति चेति द्विधा । बाह्याध्यात्मिकभेदाच्च एतदपि द्विविधम्-गात्र-दृष्टि-
स्पन्दाभावः जृम्भोद्गारक्षवथुविरहः अनभिव्यक्तप्राणाऽपानप्रचारत्वमित्यादिगुणयोगि बाह्यम्
मनुमेयम् आत्मनश्च स्वसंवेद्यम्-आध्यात्मिकं तु पृथग्भावः पृथक्त्वम्-नानात्वम्, वितर्कः-श्रुत-२०
म्-द्वादशाङ्गम्, वीचारः-अर्थ-व्यञ्जन-योगसंक्रान्तिः-व्यञ्जनम्-अभिधानम् तद्विषयोऽर्थः मनो-
वाग्लक्षणो योगः संक्रान्तिः परस्परतः परिवर्तनम् पृथक्त्वेन वितर्कस्य अर्थ-व्यञ्जन-योगेषु
ानिर्वीचारः यस्मिन् अस्ति तत् पृथक्त्ववितर्कसवीचारम् । तथाहि—उत्तमसंहननो ध्यायति
संक्रमितपुद्गलकार्यसामर्थ्यः संहननादोपचितव्याक्षेपः कर्मप्रकृतीः स्थित्यनुभागादिभिर्ह्रासयन्
संवरसामर्थ्यतो मोहनीयमचिन्त्यसामर्थ्यमदोषमुपशमयन् क्षपयन् वा द्रव्यपरमाणुम् भावपर-२५
। शेषमपहाय द्रव्य-पर्यायार्थाद् व्यञ्जनम् व्यञ्जनाद् वा अर्थम् योगात् योगान्तरम् व्यञ्जनात्
तमान्तरं च संक्रामन् पृथक्त्ववितर्कवीचारं शुक्ललेश्यमुपशमक-क्षपकगुणस्थानभूमिकमनन्त-
तीर्थ(ङ्कर) क्षायोपशमिकभूमिकं प्रायः पूर्वधरनिषेव्यमाश्रितार्थ व्यञ्जनयोगसंक्रमणं श्रेणिभेदात्
पर्यन्तमप्रमादं शुक्लध्यानमवलम्बते एतच्च निर्जरारूपम् आत्मस्थितकर्मक्षयकारणतयाऽऽ
ः "तपसा निर्जरा च" [तत्त्वार्थ० ९-३] इति वचनात् ध्यानस्य चान्तरोक्तकृत्स्नतपोरूपत्वात् ३०
वीयाभ्यां कथंचिद्भावाभिन्ना द्रव्यतुल्यवियोगवत् वियुक्तात्मनो वियोगस्य कथंचिद् अभेदात्
यवादे तु पूर्ववत् पश्चादपि अवियोगः अतद्धर्मत्वात् वियोगो वा पूर्वमपि तत्समाचरणाद् अतु-
वियोगाभाव एव न हि बन्धाभावे तद्विनाशः संभवी तस्य वस्तुधर्मत्वात् न हि अतुल्योः
गामावे तद्वियोग इति व्यवहारः । तस्माद् निर्जराया अपि एकान्तवादे अनुपपत्तिः । एकत्वेन
ो यस्मिन् तद् एकत्ववितर्कम् विगतार्थ व्यञ्जन योगसंक्रमत्वात् अवीचारं द्वितीय शुक्लध्यानम् ।
ऽ—एकपरमाणौ एकमेव पर्यायमालम्बत्वेन आदाय अन्यतरैकयोगबलाधानमाश्रितव्यतिरि-
ाधैर्य व्यञ्जनयोगसंक्रमविषयचिन्ताविशेषरहितं बहुतरकर्मनिर्जरारूपं निःशेषमोहनीयक्षयानन्तर
ज्ञानविघातिकर्मप्रत्यर्थ्यमननसमर्थमकषायछद्मस्थवीतरागगुणस्थानभूमिक क्षपको द्वितीय शुक्ल

१ पीत पद्मादि... — प्र० १० पृ० ...
... अत्र मूलतत्त्वे ... 'क्रि...' ... पाठो मुद्रितो दृश्यते-अ० ९-४१ । ... सर्वार्थसिद्धि ...
... पाठो मुद्रितः अतन परन्तु ...
... -अ० ९ ४१ ।
...ति' इति पाठोऽस्माभिः स्वीकृतः ...

न वा कश्चित् भेदनिबन्धनत्वात् प्रवृत्तेः सामान्यस्य अनर्थक्रियाकारित्वात् च प्र[illegible]
योगात् । यद्यपि स्यात् यदाऽयं प्रतिपत्ता वाक्यमश्रुतपूर्वं शृणोति तदा पदार्थ[illegible]
नामर्थं सामान्यलक्षणमेव प्रतिपद्यते या तु वाक्यार्थप्रतीतिः सा अनेक-सन्निधानार्थ[illegible]
विशेष्यमाणत्वात् पदार्थप्रतीतिरसतिनिबन्धना न पुनस्तावो वाक्यात् तथापि तत्र [illegible]
५ न्धानतिरसेः वाक्यमेव च प्रवृत्ति-निवृत्तिव्यवहारक्षमम् न पदम् तत्र [illegible]
निरादकत्वेनाप्रवृत्त्यङ्गत्वात् । मा चेत्र न विरतामतिभागिनमर्थं प्रतिपादयन्ति [illegible]
मदृनन्ति प्रवृत्तिप्रतिबन्धादपि वाक्यविशेषात् यथोक्तस्यास्य वाक्यार्थप्रतीतेः ।
प्रत्येन संख्या वाक्यानां चिन्तामनादृत्य पदमेव अनुमानेऽस्ताभीनिरणा । उक्तं च

"वाक्यार्थे तु पदार्थेभ्यः संबन्धानुगमात् कृते ।
१० बुद्धिरूपतयो तस्मात् भिन्ना साऽप्यनुभूयते" ॥

[श्लो० वा० वाक्या० श्लो० १०९] तथा,

"वाक्येऽप्यदृष्टेऽपि सर्वे हेतु पदार्थनिगमाच्छया प्रतीतिः ।
वस्तुन्यासन्नविशेषणीनां क्रियाः पदार्थेष्वभिमानात्" ॥

[श्लो० वा० वाक्या० श्लो० १११] इति,

१५ [illegible]

[illegible]

२० [illegible]

[illegible]

धेत्तु पूर्वपदानुरञ्जितं पदमेव वाक्यम्, पदार्थ एव पदार्थान्तरविशेषितो वाक्यार्थो [illegible] । दे—'दण्डी' 'छत्री' इत्यादिव्यपदेशे यथा पुरुष एव [illegible] । शीत्' 'पचति' 'पक्ष्यति' इत्यादिकालत्रयविशिष्टः क्रियाविशिष्टश्च देवदत्त एव प्रतीयते— शीत्' इत्यादिशब्दानां देवदत्तशब्देन सामानाधिकरण्यात्—न तु [illegible] । अथ [illegible] त्यपदिष्टपुरुष एव प्रतीयते तदा 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' 'ग्रामं गच्छ' [illegible] कर्तव्यः' इति [illegible] लोट्-कृत्यप्रयोगेषु कस्यार्थस्य प्रतीतिः ? अत्रापि कर्मणि नियुक्तः क्रियाविशिष्टोऽनेकस्तदि- [illegible] देवदत्त एव प्रतीयते केवलं वर्तमानादिः कालो न विशेषणत्वेन अत्र अवतिष्ठते । अथ [illegible] नार्थातिरिक्तापूर्वातिसोपपत्तिप्रतिपादने कथं पुरुषः प्रवर्तते ? यथा हि देवदत्तः 'पचति' इत्यादि- [illegible] प्रवर्तते तथा 'जुहुयात्' इत्यस्मादपि सैव प्रवर्तन प्रवृत्तिनिमित्तस्य अवबोधात्, अपरे- । 'जुहुयात्' इत्यादिवाक्यजनितविज्ञानस्यैव प्रवर्तकत्वात् [illegible] १० [illegible] नुरूपं ज्ञानं पुरुषं स्वर्गादिसाधने नियोजयत् उपलभ्यते न 'पचति' आदिवाक्यजन्यम् । दि—विध्यादिवाक्यजनितज्ञानानन्तरमिच्छा तदनन्तरं प्रयत्नः तदनन्तरं च पुरुषस्य [illegible] र्थः परिस्पन्दः ततोऽपि फलपर्यन्तत्वात् स्वर्गफलप्राप्तिः इत्यभिधानात् । तेऽपि [illegible] [illegible] विशेषण-विशेष्ययोरत्यन्तभेदे अभेदे वा विशेषणानुरागस्य [illegible] यार्थकल्पनादेरनुपपत्तेः अत एव 'अपाक्षीद् देवदत्तः' इत्यादौ न कालक्रियादिविशिष्ट[illegible] १५ पादेः पुरुषात् भेदे संबन्धासिद्धितो व्यवच्छेदकत्वानुपपत्तेः अभेदेऽपि एकस्य [illegible] [illegible] रूपताऽसंगतेः अन्यथा अतिप्रसङ्गात् कल्पनारचितस्य तद्रूपस्य सर्वथाविशेषात् [illegible] [illegible] अन्यनिमित्तत्वात् विरोधादिदोषस्य च तत्र प्रागेव प्रतिनिर्दिष्टत्वात् । एतेन [illegible] [illegible] वाक्यजनितविज्ञानस्य प्रवर्तकत्वमेकान्तवादिप्रकल्पितं प्रतिक्षिप्तम् [illegible] [illegible] तिपादनात् । यदपि अत्र

"संसर्गमोहितधियो विविक्तं धातुगोचरात् ।
भावात्मानं न पश्यन्ति ये तेभ्यः स विविच्यते" ॥ [ ]

[illegible] प्रतिपादयन्ति—भाव एव साध्यतया [illegible] [illegible] भूतं भावमाख्यातमाश्रितम्" [ ] इति वचनात् [illegible] [illegible] तया प्रतीयते [illegible] [illegible] [illegible] । अपि च, असौ भावः [illegible] पुरुषं प्रेरयेत् [illegible] [illegible] ? न तावद् निष्पन्नः तस्य सद्भावस्य सिद्धत्वात् । [illegible] [illegible] योगात् । न च [illegible]

[illegible] भावः साध्यत्वेन [illegible] पुरुषं [illegible] [illegible] त्वम् न भावस्य स्यात् तथाभ्युपगमेऽपि दोष [illegible] [illegible] । तथाहि—यद्यपि सर्वाः क्रियाः प्रयोजनवत्त्वेन [illegible] [illegible] तत् एकान्ततो विद्यमानं कथं पुरुषं प्रेरयेत् ? न हि [illegible] २५ [illegible] प्रयोजनमनुद्दिश्य प्रेरकसद्भावेऽपि [illegible] । न च [illegible] [illegible] वाञ्छितामुत्पादयितुमसौ प्रवर्तते, आत्मसंबन्धिताया [illegible] [illegible] दुःखविरहसुखस्वभावलक्षणं प्रयोजनम् [illegible] [illegible] ऽपि प्रयासः सफलः । न च प्रयोजनमविद्यमानं पुरुषं प्रेरयति [illegible] [illegible] तया तत् तत्र प्रेरयतीति चेत्, ननु साऽपि यदि [illegible] [illegible] त् । न च विद्यमानस्य कार्यरूपता संभवति तस्य [illegible] ३० [illegible]

१-वर्तेत मु० । २-वर्तेत मु० । ३-वर्तेत मु० ४० । ४ [illegible] ११ ५० ४०

न प्रेरकत्वम् अभावस्यापि स्वरूपेण विद्यमानत्वात्। न च स्वर्गाभावः पुरुषार्थत्वेन च परस्परविविक्तोभयरूपतयाऽपि कार्यतायाः प्रेरकत्वम् उभयदोषानुषङ्गात्, ताऽभ्युपगमे परपक्षाभ्युपगमप्रसक्तिः फलानुभवपर्यायाव्यतिरिक्तस्य फलारम्भतया परिणामात् कारण-फलपर्याययोः कथंचिद् अभेदात् एकस्यैव
५ विवृत्तेः फलस्य भावाभावरूपतया प्रवर्तकत्वात् अन्यथा सर्वव्यवहारोच्छेदप्रसक्तेः।

अन्ये तु विधेः प्रवर्तकत्वमभ्युपपद्याः त्रिकालशून्यो विधिरेव प्रवर्तकस्वभावः मानः कर्मणि पुरुषं नियोजयति स च प्रेषणाऽध्येषणादिव्यतिरिक्तस्तद्नुगतश्च अध्येषणा सत्कारपूर्वको नियोगः प्रेषणा तु न्यत्कारपूर्वको नियोग ऽध्येषणादिशब्दवाच्यः। न चास्य प्रेरकत्वम् व्यभिचारात्। तथाहि
१० पुरुषप्रवृत्तिरुपलभ्यते तद्भावेऽपि चाध्येषणातः इति न प्रेषणादेः पुरुषप्रवर्तकत्वम् विधिर्भाव्यनिष्ठभावकव्यापारस्वभावभावनानुगते स्वर्गादिफलसंपादके धात्वर्थे तदुक्तम्—

"विधावनाश्रिते साध्यः पुरुषार्थो न लभ्यते।
श्रुतः स्वर्गादिवाक्येन धात्वर्थः साध्यतां व्रजेत्" ॥
१५ [श्लो० वा० औत्पत्तिकसू० श्लो०

अपरे तु मन्यन्ते धात्वर्थमात्रे फलपर्यालोचनानिरपेक्षो विधिः पुरुषं प्रेरयति प्रत्ययाभिधेयः इति।

सर्वे पक्षे अयुक्तयादिनः यतः विधिर्न अलब्धसत्ताकः पुरुषं प्रेरयति कुसुमादेरिव प्रेरकत्वासंभवात् संभवे वा विद्यमानताप्रसक्तेः। न च
२० प्रतिपादयितुं प्रभवति प्रतिपादने वा अविद्यमानविषयत्वेन केशोण्डुकादिज्ञानवद् न च अविद्यमानेन सह लिङ्प्रत्ययस्य संबन्धः तदभावात् तस्य अवाचकत्वं स्यात्। अथ विधिः प्रेरकस्तदा त्रिकालशून्यता तस्य व्याघातेन वर्तमानकालताप्राप्तेः लिङ्प्रत्ययगम्यता सांप्रतकाले च तस्मिन् प्रत्यक्षादेरप्यवतारात् चोदनैव धर्मे प्रमाणम् प्रमाणान्तर वक्तव्यं स्यात् प्रत्यक्षादेरत्र प्रवृत्तौ अवधारणत्रयस्यापि अनुपपत्तिः। न च सामान्यात्
२५ [illegible]

[illegible]

निर्वर्तकत्वम् प्रवर्तकत्वं चेष्यते यद्यपि तथापि अभिमतफलार्थी अन्वेषणादेः इष्यतो वा
। न च कार्यत्वेनाभिलषितानभिधानम् प्रवर्तकत्वमनुपपन्नम् यथासंभवं प्रवर्तकत्वोपपत्तेः यदा अन्वे-
ष्टा तदा तत्र प्रवर्तकत्वम् यदा तु प्रवृत्ता तदा तस्या एव। न हि एतावन्मात्रेऽपि तुल्यप्रवर्तनीयः
नां रूपाभावो न च्योऽपि तत्पदोपात्तपरिणामित्वकारणानां प्रतिपद्यन्ते न च तद्व्यतिरिक्तोऽन्यः
। तद परिणामित्वस्वरूपमात्रादयति। किञ्च, धात्वर्थोऽपि यदि धातुना परिनिष्पन्नोऽभिधीयते ५
न विधेः पुरुषप्रवर्तकत्वमभ्युपगन्तव्यम् धात्वर्थस्य निष्पन्नत्वात्। सामान्यरूपार्थवादिनां
तद्विशेषस्य कथं पुरुषव्यापारसाध्यत्वम् सामान्यस्य नित्यतया साध्यत्वानुपपत्तेः।
विशेष उत्पाद्यो धातुवाच्यः तेन सह नित्यतया संबन्धायोगात् न हि अनित्येन नित्यः संबन्धो
अभ्युपेयते वा वाच्यवाचकसंबन्धानां चैव नित्यत्वाभ्युपगमात्। अपि च, विधेः
त्वे कारकत्वं स्यात् न प्रामाण्यम् इच्छा-प्रयत्नादेरिव तथात्वे तदनुपपत्तेः प्रवर्तकत्वं च १०
त्वाद् अनुपपन्नम्। एवं 'ब्राह्मणो न हन्यात्' इति प्रतिषेधविधिरपि प्रतिक्षिप्तो द्रष्टव्यः।
—स्वयं पुरुषं च प्रेरयतीति वक्तव्यम् नञर्थे, भावनायाम्, धात्वर्थे वा? तत्र यदि नञर्थे
पुरुषं प्रवर्तयति, तदयुक्तम्, नञर्थस्य अभावरूपत्वात् तत्र विधेः प्रेरकत्वासंभवात्। न हि
ात्मके नञर्थे कश्चित् प्रेरकत्वमुपपद्यते। अथ पथप्रवृत्तं पुरुषं निवर्तयति प्रतिषेधविधिः,
मेतत्, प्रतिषेधेनैव निवर्तितत्वाद् विधेस्तत्र वैयर्थ्यप्रसङ्गात्। अथ प्रतिषेधनिषिद्धस्य अनिवृत्तेस्तत्र १५
प्रार्थयते विधिनिषिद्धेऽपि यदि न निवर्तते तदा किमाचरणीयम्? अथ भावनायां विधेः
त्वम्, अयुक्तमेतत्, रागत एव तस्यामस्य प्रवृत्तेः विधेर्वैयर्थ्यात्। न च धात्वर्थेऽपि तमसौ
यति, तथापि रागादेवास्य प्रवृत्तेः। विधिर्हि अप्रवृत्तप्रवर्तकः रागात् प्रवृत्तस्य च प्रवर्तने
त्वायोगात्। अथ नञ्संबद्धभावनायां विधिः प्रवर्तयति, न; नञर्थसंबद्धायास्तस्या अभावरूप-
प्रवृत्तिविषयत्वानुपपत्तेः। अथ नञर्थविशिष्टधात्वर्थे प्रतिषेधविधिना पुरुषः प्रवर्त्यते, नैतत् २०
त्, तस्यापि नञर्थविशिष्टस्य अभावरूपत्वात् प्रवृत्तिविषयत्वायोगात्। न च भावनायां हनन-
स्यायां रागात् प्रवर्तमानः पुरुषः प्रतिषेधपर्युदस्तायां विधिना नियुज्यते, अभावविशिष्टाया
वाया विधिविषयत्वायोगात्। न चासौ हननाभावविशिष्टां विधिविषयतां प्रतिपद्यते, अभावस्य
पारकत्वतया भावनां प्रति व्यवच्छेदकत्वायोगात्। न च हन्तिर्नञुपहितः। अभक्ष्याऽस्पर्शनीय-
न हननव्यतिरिक्तधात्वर्थान्तराभिधायकत्वात् तदवच्छिन्नां भावनां प्रकाशयति सा च विधेर्गो- २५
ां प्रतिपद्यते इति वक्तव्यम्, यतो भावनायां हननव्यतिरिक्तधात्वर्थमात्रविशिष्टायां विधेः
कत्वमेव न निवर्तकत्वम् प्रवर्तकत्वैकरूपत्वेन तस्याऽभ्युपगमात् तच्च यथा तस्य न संभवति
प्रतिपादितमेव। तत्र मीमांसकाभिप्रायेण विधेः प्रवर्तकत्वम् निवर्तकत्वं वा संभवति। तेन—

"साधने पुरुषार्थस्य संगिरन्ते धर्मविदः।
बोधविधौ समापन्नम्" [ ] इत्याद्यसंगतार्थाभिधानम्। ३०

पे [illegible] भावनां वाक्यार्थत्वेन प्रतिपादयन्ति भावना हि भाव्येऽर्थे स्वर्गादिके पुरुषस्य व्यापारः
[illegible]" [ ] इति वचनात् सा च 'किं केन कथम्'
[illegible] पूर्णमास्यादिना भावयेत्, कथम् इति इतिकर्त-
[illegible] भावना पदार्थप्रतिपाद्या पदानां वाक्यार्थप्र-
तिपादने सामर्थ्याभावात् [illegible] निवृत्तव्यापाराणि न वाक्यार्थबोधक्षमाणि ३५
आकाङ्क्षासंनिधियोग्यतावच्छिन्नानां पदार्थानामेव अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां वाक्यार्थबोधकत्वप्रतिपत्तेः।
हि—पदश्रवणाभावेऽपि यदा श्वेतगुणं द्रव्यं पश्यति अश्वजातिं च 'हेषा'शब्दाद् अनुमिनोति
यां च खुरविक्षेपादिशब्देन च बुध्यते तदा 'श्वेतोऽश्वो धावति' इति अवगच्छति। उक्तं च—

"पश्यतः श्वेतमारूपं 'हेषा'शब्दं च शृण्वतः।
पदविक्षेपशब्दं च श्वेताश्वो धावतीति धीः"॥

[श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३५८] ४०

---

१ अत्र 'निवर्तितत्वाद् विधेस्तत्र' इति पाठः संभाव्यते। २ विधेर्वि-(-धेर्वै-)-क०।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

पद । तथा, परीषहेषु अचेलपरीषहस्य यतेरुपदेशात् । तथा, "नगिणस्स वा वि मुण्डस्स"
] इत्याद्यागमे बहुशो यतेर्वस्त्रादिपरित्यागो भगवद्भिः प्रतिपादित इति । तत् प्रतिषिद्धं
दिग्रहणमाचरन्तः परतीर्थिका इव कथं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रलक्षणमुक्तिमार्गसमन्विताः
म्बरा इति ।

द्धान्तिना पूर्वपक्षं प्रतिविधाय निर्ग्रन्थानां धर्मोपकरणतया वस्त्रपात्रादिधारणस्य समर्थनम्] ५

अत्र प्रतिविधीयते—'यत् तावद् रागाद्यपचयनिमित्त-इत्यादिप्रयोगोपादानम्, तत्र रागाद्यप-
निमित्तं किमेकदेशनैर्ग्रन्थ्यम्, आहोस्वित् सर्वथा नैर्ग्रन्थ्यम् इति ? यदि सर्वथा नैर्ग्रन्थ्यं रागाद्यप-
निमित्तम् तत्र तथाभूतनैर्ग्रन्थ्यस्य मुक्तव्यतिरेकेण असंभवात् मिथ्यात्वाऽविरति-प्रमाद-कषाय-
[illegible] ग्रन्थत्वात् तदभावस्य च आत्यन्तिकस्य निर्दोषतो मुक्तेषु एव
भावात् ततश्च कथं तस्य रागाद्यपचयहेतुतेति कथं न विशेषणासिद्धो हेतुः । अथ देशनैर्ग्रन्थ्यं १०
रागाद्यपचयनिमित्ततयाऽत्र विवक्षितं तदाऽपि वक्तव्यम्—किं तत् सम्यग्ज्ञानादितारतम्येन
चीयमानम् आहोस्विद् बाह्यवस्त्राद्यभावरूपम् ? तत्र यदि आद्यः पक्षः स न युक्तः तथाभूतस्य
सम्यग्ज्ञानादिविपक्षत्वेन वस्त्रादिग्रहणस्य असिद्धेः हेतोर्विशेष्यासिद्धताप्रसक्तेः । नापि द्वितीयः
राद्यभावस्य रागाद्यपचयनिमित्तत्वासिद्धेः हेतोर्विशेषणासिद्धतादोषात् । न च वस्त्राद्यभावो
रागाद्यपचयहेतुत्वेन सिद्ध इति वक्तव्यम् अतिशयरागवद्भिः पाशुपतादिभिर्व्यभिचारात् । न च १५
पुरुषत्वे सति वस्त्राभावो रागाद्यपचयहेतुः पशुविकलनाहलैर्व्यभिचारात् । न च आर्यदेशोत्पत्ति-
पुरुषत्वे सति असौ तद्धेतुरिति वक्तव्यम् तथाभूतकामुकपुरुषैर्व्यभिचारात् । न च व्रतपरिलम्बा-
पुरुषत्वे सति असौ तन्निमित्तम् तथाभूतपाशुपतैर्व्यभिचारात् । न च 'जैनशासनप्रतिपन्न-
भूतपुरुषत्वे सति' इति विशेषणोपादानात् अदोषः, उन्मत्तदिगम्बरैर्व्यभिचारात् । न च 'अनु-
त्वे सति' इत्यपरविशेषणात् दोषाभावः मिथ्यात्वोपेतद्रव्यलिङ्गाभ्यस्तदिग्वाससा [illegible]-२०
तात् । न च सम्यग्दर्शनादिसमन्वितपुरुषत्वे सति असौ तद्धेतुः [illegible] तत्र सामर्थ्येन
[illegible]सामर्थ्यतोऽनुपादानप्रसक्तेः । न च विशिष्टधृतसंहननविकलानाम् [illegible]
[illegible]धर्मोपकरणाभावे यतियोग्याहारपरिहार इव [illegible]
[illegible]विशेषणोपपत्तिरिति विशेष्यसद्भावो विशेषणस्य [illegible] एव । [illegible]
[illegible]पूर्वकत्वात् तस्यां च रागादेरवश्यंभावित्वात् [illegible]
[illegible] सकाशान्निवृत्तिलक्षणेन [illegible]
[illegible] कथं तद्भावबाधकत्वेन उपदिश्यत इति नः [illegible]
[illegible]तयात्वप्रसक्तेः । न च आहारग्रहणस्य [illegible]
[illegible] मूर्छाविषयत्वे तस्य 'परिग्रह' [illegible] "मूर्छा परिग्रहः" [illegible]
वचनात् । अथ [illegible]
किन्तु [illegible] १५
[illegible] तर्हि वस्त्रादिधर्मोपकरणग्रहणेऽपि [illegible] । [illegible]
[illegible]पूर्वकमेव [illegible], न; आहार[illegible] । [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] तथा, [illegible] २०
[illegible] शीतादिबाधोपजायमानार्तध्याननिषेधार्थ [illegible]

[illegible]
१०-११०१ । अ० २ । पृ० ११० द्वि०-११५ द्वि० ।
[illegible]
११ प० ५०

इत्याद्यागमप्रामाण्यात् । स्तुतिकृताऽपि उक्तम्—

"बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरं स्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्" [स्वयंभूस्तो० ८३

इति । तत्र वस्त्र-पात्रादिविकलस्येदानींतनयतेः सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानं संभवतीति कथं तस्य धर्मोपकरणत्वम्? एवं 'यः स्वीकृतग्रन्थः' इत्यादिप्रयोगेऽपि [illegible]

५ त्वप्रतिपादनात् 'स्वीकृतग्रन्थश्च मोक्षाध्वनि संचरन् वस्त्राद्युपकरणवान्' इति हेतुरसिद्धः, तथाविधवस्त्राद्युपकरणधारिणां चौरादिभ्य उपद्रवः संभवति, [illegible] चौराग्राह्यत्वात् । अथ अधमचौरास्तथाभूतमपि गृह्णन्तीति तदग्राह्यत्वं तस्यासिद्धम्, पुस्तकाद्यपि मोक्षाध्वसंचारिणा न ग्राह्यं स्यात् तत्रापि अस्य दोषस्य समानत्वात् । अथ भगवता प्रतिषिद्धम्, न; तत्प्रतिषिद्धपुस्तकादिग्राहिणामिदानींतनऋषीणां [illegible]

१० अयतित्वप्रसक्तेः । ज्ञानाद्युपष्टम्भहेतुत्वेन तद्ग्रहणे पात्रादावपि तत एव ग्रहणप्रसक्तिः । पाथेयाद्युपकरणरहितस्य अध्वगस्यापि अभीष्टस्थानप्राप्तिः संभविनी इति दृष्टान्तोऽपि एव सर्वस्य विशिष्टफलारम्भिणस्तदुपकरणरहितस्य तत्फलाऽप्रसाधकत्वात् । तथाहि—यो यद्विकलो नासौ तत् साधयति, यथा कृष्याद्युपायविकलः तत्फलम्, फलवस्त्रादिधर्मोपकरणोपायविकलश्च मुनिर्भवद्भिरभ्युपगम्यत इति । न च [illegible]

१५ चारित्राण्येव तदुपाय इति वक्तव्यम्, 'वस्त्रादिधर्मोपकरणविकलस्य क्षायिकज्ञानादेरेव इति उक्तत्वात् । 'यो यद्विनेयः' इत्यादिकोऽपि प्रयोगोऽनुपपन्नः, 'सर्वथा [illegible] त्यात्' इत्यस्य हेतोरसिद्धत्वात् भगवत एव परित्यक्तवस्त्रत्वानुपपत्तेः—

"सव्वे वि एगदूसेण णिग्गया जिणवरा" [आवश्यकसू० गा० २२७]

इत्याद्यागमप्रामाण्यात् । न च अस्यान्यार्थत्वम्, आचाराद्यङ्गेषु तैस्तैः [illegible]

२० श्रामण्यप्रतिपत्तिसमये प्रतिपादितत्वात् । न चैवं तदा सर्ववस्त्रपरित्यागावेदकस्तत्र श्रूयते । योऽपि—

"वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगामं तु" [ ]

इत्यागमः सोऽपि न श्रामण्यप्रतिपत्तिसमयभाविभगवन्नग्नत्वावेदकः किन्तु तदुत्तरकालं प्रभुत्वं भगवति आवेदयति न हि अनेन आगमेन भगवतो वस्त्रवैकल्यमावेद्यते ।

२५ किञ्च, यदि 'यो यद्विनेयः स तल्लिङ्गधारी तदा भवतामिव भगवतोऽपि कमण्डलु-[illegible] क्षधारित्वप्रसक्तिः । अथ न दैवचरितमाचरितुं शक्यत इति तद्गृहीतटङ्किकादिग्रहः अस्माभिः तिरेकेण महाव्रतधारणं कर्तुमशक्तैराश्रीयते तर्हि—

"जारिसयं गुरुलिङ्गं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं" [ ]

इत्याद्यभिनिवेशस्त्यज्यताम् । यदपि 'न च वस्त्राद्युपकरणाग्रहवत्सु प्रव्रज्यापरिणामः संभवति'

३० दभिधानम् तदपि असंगतम्, परिग्रहाग्रहवत्सु प्रव्रज्यापरिणामस्य अस्माभिरपि अनिष्टेः । न च सावद्ययोगविरतिप्रतिज्ञानिर्वाहनिमित्तवस्त्रादिधर्मोपकरणयोगिषु परिग्रहाग्रहवत्त्वम् अन्यथा योगिष्वपि परिग्रहाग्रहवत्त्वं स्यात् । अथ तत्र परित्यक्तुं शक्यत इति, अविधानेन [illegible] अनेकभवानुबन्धितदनुरक्तिप्रसक्तिः विधानपरित्यागस्तु तस्य प्रस्तुतविधिनैव तर्हि [illegible] त्यागेऽपि अयमेव विधिः अन्यथा प्रव्रज्यापरिणामस्य प्रकृष्टफलनिर्वर्तकस्य [illegible]

३५ असंभवात् मतसंभवे च शरीरत्यागवद् वस्त्रादित्यागस्यापि स्वतः सिद्धत्वात् [illegible] तत्परित्यागस्येव प्राक् तु तत्परित्यागो महार्णवयानमध्यासीनयानपरित्यागवद् अपायहेतुरेव । 'श्वेतभिक्षवो महाव्रतपरिणामवन्तो न भवन्ति' इत्यादिप्रयोगे 'परिग्रहाग्रहयोगित्वात्'

१-चार (चरे) इत्य-भां० मां० ।-चरत्त्व-वृ० वा० बा० ।

२ "वदन्तीति । न य नाम अन्नलिंगे वो गिहिलिंगे कुलिंगे वा" ॥—आवश्यकसू० पृ० ११० । विशेषा० पृ० १०२२, १०१३ ।

३ न इत्य-भां० मां० ।

४ "न हि ऐंद्र पुढवीए मेयरो अणगरगो वा" ॥ इत्युत्तरार्धम् ।—विशेष० व० टी० पृ० १०१३ ।

५-[illegible]-भा० ए० वि० विना ।

स्वसंविदा स्वात्मनि अन्यैरनुमानादवनीयते; ननु सा स्त्रियां तथैव किं नावसीयते ... प्रतिपाद्यते । अथ तासां भगवता ... अभ्युपेतम्; तासां तस्य भगवता—

"यो कप्पइ निग्गंथस्स निग्गंथीए वा ... पडिगाहित्तए" [

इत्यागमेन वस्तुतः प्रतिपादनात् ...—

"अट्ठारस पुरिसेसुं वीसं इत्थीसु" [ ]

इत्यागमेन विधानाच्च । ...

[illegible]

कर्मपरीहारनिबन्धनाध्यवसायविकलो न भवति नासौ अविद्यमानाधःसप्तमनरकप्राप्त्यविकलकारण-
कर्मबीजभूताध्यवसायः, यथोभयसंप्रतिपत्तिविषयः पुरुष इति वैधर्म्यदृष्टान्तः । असदेतत्,
यतोऽत्रापि प्रयोगे साध्य-साधनयोः प्रतिबन्धाभावाभावतो हेतोर्विवक्षितसाध्यसिद्धिः । तथाहि—
ध्योक्ताध्यवसानं निवर्तमानमपसरतः अशेषकर्मक्षयाध्यवसायनिवर्तकं कारणं वा भवद् भवेत्
व्यापकं वा ? अन्यस्य निवृत्तावपि अपरनिवृत्तेरप्रतिबन्धाभावात् अन्यथा अश्वनिवृत्तावपि गवादे- ५
र्विशेषेण निवृत्तिप्रसक्तेः । आह च न्यायवादी—

> "तस्मात् तन्मात्रसंबन्धः स्वभावो भावमेव वा ।
> निवर्तयेत् कारणं वा कार्यमव्यभिचारतः" ॥ [ ] इति ।

न तावत् कारणं यथोक्ताध्यवसानमशेषकर्मक्षयाध्यवसानस्य येन तन्निवृत्त्या तस्यापि निवृत्तिः
त्। कारणत्वे वा यत्र अशेषकर्मक्षयाध्यवसानं योगिनि संभवति तत्र अधःसप्तमनरकपृथिवीप्राप्त्य- १०
कारणस्य बीजभूताध्यवसानसद्भावात् कार्यस्य कारणाव्यभिचारित्वात् तस्य नरकप्राप्तिसद्भाव इति
प्रसक्तिः । न च योगिनि अशेषकर्मक्षयनिबन्धनमध्यवसानं जनयदपि नरकप्राप्तिनिबन्धनकर्मबी-
तमध्यवसानं नरकप्राप्तिलक्षणं स्वकार्यं न जनयतीति वाच्यम्, अविकलकारणस्य अवश्यंतया
र्यनिर्वर्तकत्वात् अन्यथा अविकलकारणत्वायोगात् । न च यदेव तथाभूतकर्मनिर्वर्तनसमर्थ
तदेवाष्टमध्यवसायनिबन्धनं भवति, भावाभावयोरेकस्मिन्नेकदा विरोधात् तन्निर्वर्तकस्य हेतोः १५
रपान्तरमप्राप्नुवतस्तन्निर्व(निवर्त)र्तकत्वविरोधात् न हि यदेव यद्यङ्गुलिद्रव्यस्य ऋजुरूपोत्पादकम्
तदेव तस्य विनाशकं संभवति एकनिमित्तयोरेकदा भावाभावयोर्विरोधात् । नापि तत् तस्य
कम् येन तत्तन्निवर्तमानं तदपि आदाय निवर्तेत, व्यापकत्वे वा यत्र अशेषकर्मक्षयनिबन्धना-
वसायसद्भावस्तत्र व्यापकस्य अवश्यंभावित्वात् अन्यथा तस्य तद्व्यापकत्वायोगात् योगिनस्तदध्य-
वसायतोऽधःसप्तमनरकप्राप्तिप्रसङ्गोऽनिष्टसन्दृयस्य एव स्यात् । न च यत्र क्लिष्टतराध्यवसायसद्भा- २०
व अतिशुभतराध्यवसायेन भाव्यमिति प्रतिबन्धसंभवः तन्दुलमत्स्येन व्यभिचारात् । न च
वज्रातियोगित्वे सति अव्यभिचारः उत्तमसंहननेन चारित्रप्राप्तिकालावधौ कुसमयभाविना सर्व-
सिद्धिसंपन्नेन तथाविधक्लिष्टपरिणामवता पुरुषेण व्यभिचारात् । न च यत्र अतिशुभतरः परिणाम-
त्रापि अशुभतरपरिणामेन भाव्यमित्यत्रापि प्रतिबन्धः तथाविधयोगिना व्यभिचारात् ।

किञ्च, स्त्रीणां सप्तमनरकपृथ्वीप्राप्तिनिबन्धनकर्मबीजाध्यवसायाभावः कुतः प्रतिपन्नः ? आप्ता- २५
त् इति चेत् अशेषकर्मक्षयप्रदानिभूतशुभाध्यवसायसद्भावोऽपि तत एव अभ्युपगन्तव्यः । न
अतीन्द्रिये वस्तुविषयेऽर्थे असद्वादेरस्मादृशः आप्तागमाद् ऋते अन्यत् प्रमाणमस्ति । न च दृष्टेष्टाविरो-
धवचनमसत्यवर्तानुसारिजातिविकल्पैर्योधामनुभवति तेषां आप्ताऽनाप्तव्यापादकमतंगजविकल्पवद्
स्तुसंस्पर्शित्वात् । उक्तं च भर्तृहरिणा—

> "अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा । ३०
> ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते" ॥ [ ]

अत्र वस्तुनि आगमनिरपेक्षमनुमानं प्रवर्तितुमुत्सहते, पक्षधर्मादेर्लिङ्गरूपस्य प्रमाणान्तरतः प्रति-
पत्तेः प्रतिपत्तौ वा साध्यस्यापि प्रतिबन्धग्राहिणा प्रमाणेन प्रतिपत्तेर्नैकान्ततोऽतीन्द्रियता भवेत् ।
गमानुसारि चानुमानं प्रकृते वस्तुनि संवादकमेव न बाधकमिति प्रदर्शितम् । न च आप्तवचनं
निर्वाणप्रतिपादकमप्रमाणम् सप्तमनरकप्राप्तिप्रतिषेधकं प्रमाणमिति वक्तव्यम् उभयत्र आप्तप्रणीत- ३५
त्वादेः प्रामाण्यनिबन्धनस्य अविशेषात् । न च एकमाप्तप्रणीतमेव न भवति, इतरत्रापि अस्य समान-
त्वात् पूर्वापरोपनिषद्वाशीपदपदार्थप्रयोजनार्थप्रतिपादकाऽवान्तरवाक्यसमूहात्मकैकमहावाक्यरूप-
स्य अर्हदागमस्य एकत्वात् तथा चान्तरवाक्यानां केषांचिद् अप्रामाण्ये सर्वस्यापि आगमस्य
प्रामाण्यप्रसक्तेः अङ्गदुष्टत्वे तदात्मकाङ्गिनोऽपि दुष्टत्वापत्तेः । न च प्रदर्शितवाक्यात्मकः सर्वज्ञप्रणी-
तागमत्वेन अस्मान् प्रति असिद्ध इति वक्तव्यम् नास्तिक-मीमांसकान् प्रति
प्रणीतत्वेन असिद्धेः । या च तान् प्रति तस्य तत्प्रणीतत्वावेदिका युक्तिः सा इतरत्रापि.

पूर्वापरैकवाक्यत्व-दृष्टादृष्टाबाधितार्थत्वादेरविशेषात्। अथ स्त्रीणां [illegible]
नद्वयस्यासंभवाद् न निर्वाणप्राप्तिः संभविनी, ननु कुतस्तद्वयस्य तत्राभावगतिः? पू[illegible]
सद्भावात् "आद्ये पूर्वविदः" [तत्त्वार्थ० ९-३९] इति वचनप्रामाण्याद्। [illegible]
तासां तदनधिकारित्वादिति चेत् तर्हि प्राक्तनभवानधीतपूर्वाणां वर्तमानतीर्था[illegible]
५न तद् भवेत् तदध्ययनासंभवात् आद्यशुक्लध्यानद्वयासंभवतः [illegible]
दोषतत्त्वावबोधस्वभावकेवलज्ञानाभावे न मुक्तिर्थासंगतिः स्यादिति भवितव्यमिति [illegible]
योगागम्यसामर्थ्ययोगावसेयभावेषु अतिसूक्ष्मेष्वपि तेषां [illegible]
योगात् पूर्वधरस्येव बोधातिरेकसद्भावाद् आद्यशुक्लध्यानद्वयप्राप्तेः कैवल्यावाप्ति[illegible]
सिद्धिरिति न दोषः तदध्ययनमन्तरेणापि विशिष्टक्षयोपशमसमुद्भूतज्ञानात् पूर्वविद[illegible]
१०निर्ग्रन्थीनामपि एवं द्वितयसंभवे न कश्चिद् दोषमुत्पश्यामः अभ्युपगमनीयं [illegible]
मरुदेवीस्वामिनीप्रभृतीनां जन्मान्तरेऽपि अनधीतपूर्वाणां न मुक्तिप्राप्तिर्भवेत्। [illegible]
प्रसिद्धा सिद्धप्राभृतादिग्रन्थेषु गृहिलिङ्गसिद्धानां प्रतिपादनात्। न च ते अप्र[illegible]
प्रणीतत्वेन तेषां प्रामाण्यस्य साधितत्वात्। अथ मायागारवादिभूयस्त्वाद् भवतां [illegible]
नैः सदा तासां तद्भूयस्त्वासंभवात् प्राक् [illegible] पुरुषाणामपि तत्संभवोऽविरुद्धः। अथ [illegible]
१५[illegible] ताः इति न मुक्तिभाजः, न; सत्यस्य कायगम्यत्वात् तस्य च तासु [illegible]
[illegible]सिद्धिः। इदपत्ने हि [illegible] ताः [illegible] कुर्वाणाः [illegible]
[illegible] श्रुताध्ययनादपरं [illegible] तत्र [illegible]
न मुक्तिप्राप्तिप्रतिबन्धकम् तदवस्थायां तु तस्य तासामपि अभाव एव।

अथ लोकवद् लोकोत्तरेऽपि धर्मे पुरुषस्य उत्तमत्वात् मुक्तिप्राप्तिः न स्त्रीणाम्
२०[illegible] मुक्तिप्राप्त्यप्रतिबन्धकत्वात् अन्यथा तीर्थकृद्गणधरा[illegible]
[illegible] मुक्तिप्राप्त्यभावो भवेत्। अथ [illegible]
[illegible] पुरुषत्वात् [illegible] समानत्वेन [illegible]
[illegible] न तासां मुक्तप्राप्तिसिद्धिः [illegible]
[illegible]। अथ

२५ "[illegible]" [आवश्यकनि० [illegible]]

[illegible]

[[illegible]]

[illegible]

निषेधं स्यात् । यच्च मेरुमस्तकादिषु तदभिषेकादौ इन्द्रादिभिस्तस्य विहितत्वात् अस्मदादिभिरपि
नुपश्चादिभिः प्रयोजनैस्तत् तत्र विधीयते तर्हि तत एव आभरणादिभिर्विभूषादिकमपि
यम् तदनुकरणादेः समानत्वात् । एवमन्यदपि आगमबाह्यं स्वमनीषिकया परपरिकल्पित-
म-युक्तिप्रदर्शनेन प्रतिषेद्धव्यम् न्यायदिशः प्रदर्शितत्वात् । तदेवम् अनधीताऽश्रुतयथावस्थितपरि-
तागमतात्पर्या दिव्यागम इव आगमतो विलोपयन्तीति व्यवस्थितम् ॥ ६५ ॥ ५

[बहुश्रुतत्वादिदर्पात् तात्पर्यापरिज्ञानादनिश्चितशास्त्रार्थस्य सिद्धान्तप्रत्यनीकत्वकथनम्]

यत एवं ततः—

जह जह बहुस्सुओ संमओ य सिस्सगणसंपरिवुडो य ।
अविणिच्छिओ य समए तह तह सिद्धंतपडिणीओ ॥ ६६ ॥

यथा यथा बहुश्रुतः स्वयंगपरिभावितार्थानेकशास्त्रश्रवणमात्रतः तथाविधाऽपराऽविदित- १०
अभिप्रायजनसंमतश्च शास्त्रसारेण अत एव श्रुतविशेषानभिज्ञैः शिष्यगणैः समंतात्
वृतश्च अविनिश्चितश्च समये तथाविधपरिवारदर्पात् समयपर्यालोचनेऽनादृतत्वात्
तथा सिद्धान्तप्रत्यनीकः यथावस्थितवस्तुस्वरूपप्रकाशकार्हदागमप्रतिपक्षः निस्सारप्र-
णेता अन्यागमेभ्योऽपि भगवदागममधः करोतीति यावत् ॥ ६६ ॥

[क्रियाप्रधानानां ज्ञानयोगमसाधयतां क्रियाफलानुभवाभावकथनम्] १५

तस्मात् शास्त्रमधीत्य तदर्थावधारणे विधेयम् अवधृतश्च तदर्थो नय-प्रमाणाभिप्रायतो यथावत्
भावनीयः अन्यथा तत्फलपरिज्ञानविकलताप्रसक्तिरित्याह—

चरण-करणप्पहाणा ससमय-परसमयमुक्कवावारा ।
चरण-करणस्स सारं णिच्छयसुद्धं ण याणंति ॥ ६७ ॥

चरणं श्रमणधर्मः— २०

"वय-समणधम्म-संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ ।
णाणाइतियं तव-कोहनिग्गहाई चरणमेयं ॥ [ओघनि० गा० २]

वचनात् । व्रतानि हिंसाविरमणादीनि पञ्च, श्रमणधर्मः क्षान्त्यादिर्दशधा, संयमः पञ्चाश्रव-
णादिः सप्तदशभेदः, वैयावृत्त्यं दशधा आचार्याराधनादि, ब्रह्मगुप्तयो नव वसत्यादयः,
दित्रितयं ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि, तपो द्वादशधा अनशनादि, क्रोधादिकषायषोडशकस्य [२]
ग्रह इति अष्टधा चरणम् । करणं पिण्डविशुद्ध्यादिः—

"पिंडविसोही समिई भावण-पडिमाइ-इंदियनिरोहो ।
पडिलेहण-गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु" ॥ [ओघनि० गा० ३]

वचनात् । तत्र पिण्डविशुद्धिः त्रिकोटिपरिशुद्धिराहारस्य—

"संसट्ठमसंसट्ठा उद्धड तह अप्पलेविया चेव । २०
उग्गहिया पग्गहिया उज्झियधम्मा य सत्तमिया" ॥ इति

धा, समितिः ईर्यासमित्यादिः पञ्चधा, भावना अनित्यत्वादिका द्वादश, प्रतिमा मासादिका
भिक्षूणाम् दर्शनादिका एकादश उपासकानाम्, इन्द्रियनिरोधः चक्षुरादिकरणपञ्चकसंयमः
लेखनं मुखवस्त्रिकाद्युपकरणप्रत्युपेक्षणमनेकविधम्, गुप्तिः मनो-वाक्-कायसंवरणलक्षणा
अभिग्रहा वसतिप्रमार्जनादयोऽनेकविधाः—एतयोश्चरण-करणयोः प्रधानास्तदनुष्ठान- २५
राः स्वसमय-परसमयमुक्तव्यापाराः अयं स्वसमयः अनेकान्तात्मकवस्तुप्ररूपणात् अयं
समयः केवलनयाभिप्रायप्रतिपादनात् इत्येतस्मिन् परिज्ञानेऽनादृता अनेकान्तात्मकवस्तुतत्त्वं
न्त् अनवबुध्यमानाः तदितरव्यवच्छेदेन इति यावत् । चरणकरणयोः सारं फलम् निश्च-

---

१-स्वरूप-भां० मां० । २ ओघनि० पृ० ५ । ३ ओघनि० पृ० ६ । ४ उववाइ आ० टी० वि० ।
धकटी० पृ० ९७५ द्वि० पं० ४ । ५ भिक्षूणां द्वादशानामपि प्रतिमानां स्वरूपनिरूपणं पञ्चाशकमूलेऽवगन्तव्यम्-
५७—२५१ गा० १—५० ।

सामान्यस्य एकत्वात् तद्विवक्षायां यदेव घटादिद्रव्यम् 'स्याद् एकम्' इति प्रथमभङ्गविषयः।

तदेव देश-काल-प्रयोजनभेदात् नानात्वं प्रतिपद्यमानं तद्विवक्षया 'स्याद् अनेकम्' इति द्वितीयभङ्गविषयः।

तदेव उभयात्मकमेकदा एकशब्देन यदा अभिधातुं न शक्यते तदा 'स्याद् अवक्तव्यम्' इति ५ तृतीयभङ्गविषयः।

यदेव [illegible] असाधारणेन एकमाकाशम् तदेव [illegible] भेदाद् अनेकं भवति तद्वर्तिना [illegible] प्रदेशाभेदापेक्षयाऽपि न तद् अनेकम् [illegible] -भिन्नयोरपि [illegible] तथाविवक्षायाम् 'स्याद् एकं च अनेकं च' इति चतुर्थभङ्गविषयः।

१० यदेव [illegible] प्रसिद्धं तद् एकस्मिन् [illegible] एकम् [illegible] [illegible] भिन्नं च [illegible] अभावात् अवक्तव्यं चेति [illegible] 'स्याद् एकम् अवक्तव्यं च' इति पञ्चमभङ्गविषयः।

यदेव [illegible] अनेकम् [illegible] 'स्याद् अनेकम् अवक्तव्यं च' इति षष्ठभङ्गविषयः।

१५ यदेव [illegible] चेति 'स्याद् एकम् अनेकम् अवक्तव्यं च' इति [illegible]।

[illegible]

२० [illegible]

२५ [illegible]

३० [illegible]

३५ [illegible]

किञ्चिद् अंशत्यागे उत्पत्तिस्वभावत्वात् स्थितेः, न च विनष्ट उत्पत्तिं प्रति हेत्वन्तरापेक्षा विनाशस्य उत्पत्त्यात्मकत्वात् ततः पूर्वापरस्वभावपरित्यागावाप्तिलक्षणं परिणाममासादयन् भावो व्यवतिष्ठते इति प्रत्यक्षादिप्रमाणगोचरमेतत्। अतः शब्द-विद्युत्-प्रदीपादेरपि निरन्वयविनाशकल्पना असंगतैव तेषामादौ स्थितिदर्शनात् अन्तेऽपि तत्स्वभावानतिक्रमात् न हि भावः स्वं स्वभावं परित्यजति प्रागपि तत्स्वभावपरित्यागप्रसक्तेः अन्ते च क्षयदर्शनात् प्रागपि नश्वरस्वभाववत् आदौ उत्पत्तिसमये ५ स्थितिदर्शनात् अन्ते स्थितिः किं नाभ्युपेयते? न च विद्युत्-प्रदीपादेस्तैजसरूपपरित्यागात् तामसरूपस्वीकरणे किञ्चिद् विरुद्धं भवेत्। न च स्वभावभेदस्तावेकत्वविघातकृत् ग्राह्यग्राहकाकारसंवेदनवत् वेद्यवेदकाकारविवेकपरोक्षापरोक्षसंवित्तिवद्वा। यथा च ध्वंसहेतोस्तत्तत्करणविरोधात् अकिञ्चित्करत्वम् तथा स्थित्युत्पादहेत्वोर्विनाशधर्मणः स्वतोऽभूताकरणाभावात् स्वत एव स्थितिस्वभावस्य स्थितिहेतोरानर्थक्यात्। अथ स्थितिहेतुः अपातं करोतीत्युच्यते तर्हि पातं न करोतीति प्रसक्तम् एवं १० च अकिञ्चित्करत्वमेव तस्य। यदि वा अर्थान्तरं ततोऽपातः तर्हि तस्य करणे विनश्वरस्वभावः किं न
[illegible] स्थितेः। तथा उत्पत्तिहेतु-
[illegible] भावरूपत्वात्। अथ अभावं
[illegible] त्करः स्यात्? न हि अभावस्य
भावीकरणे भावस्य वा अभावीकरणे कश्चिद् विशेषः संभवी अत एव तेषामन्यतमस्य सहेतुकत्वमहेतु- १५ कत्वं वा अभ्युपगच्छन् सर्वेषां तद् अभ्युपगन्तुमर्हतीति अविशेषात्। न च भिन्नयोगक्षेमत्वात् कार्य-कारणयोरैक्यमनुपपन्नम् स्वभावभेदेऽपि एकत्वप्रतिपत्तेः सर्वसंवित्क्षणानामेकदोत्पत्तिविनाशवतामभिन्नयोगक्षेमत्वेऽपि च परस्परतः पृथग्भावसिद्धेः। अथ अत्र अभिन्नयोगक्षेमपक्षेऽपि प्रतिभासभेदाद् भेदस्तर्हि यत्र प्रतिभासाभेदस्तत्र भिन्नयोगक्षेमत्वेऽपि अभेदः प्रतिभासभेदाभेदयोर्वस्तुभेदाभेदव्यवस्थापकत्वात् समुदायस्य च देश-कालभेदाभावात् मरुदेव संविस्यात्मनोत्पत्तेरेकत्वं च प्रसज्येत। यदि २० च स्वभावभेदो वस्तुभेदलक्षणम् तदा संतानान्तरयोरिव विषयविषयिरूपायाः संवित्तेरेकत्वेऽपि प्रत्यक्षेतरयोर्वा असौ विद्यत इति नानात्वं भवेत्। यदि पुनः स्वभावभेदाविशेषेऽपि विवक्षितज्ञानक्षणाकारयोरेव तादात्म्यम् न पुनः संतानान्तरसंवित्तीनामिति प्रत्यासत्तेः कुतश्चिद् व्यवस्थाप्यते तर्हि परस्यापि विवक्षितैकार्थोपादानोपादेयभूतयोरेव भवस्ययोस्तादात्म्यं कथंचिद् एततो न कश्चिद् दोषः प्रसक्तिमान्। निराकृतश्च अनेकधा एकान्तवादः तत्प्रसाधकहेतूनां सर्वेषामनेकान्तव्याप्ततया २५ विरुद्धताप्रदर्शनात् तत्प्रदर्शनं च एकान्तवादिनिग्रहस्थानमनेकान्तवादिविजयस्यैवेतरपराजयाधिकरणप्राप्तिलक्षणत्वात्—

"विरुद्धं हेतुमुद्भाव्य वादिनं जयतीतरः" [ ]

इत्यस्य वचसो न्यायानुगतत्वात्।

[प्रासङ्गिकी निग्रहस्थानस्वरूपपर्यालोचना] ३०

यदि पुनः असाधनाङ्गवचनं वादिनः पराजयाधिकरणमभ्युपगम्येत तदा वादाभ्युपगमं विधाय तूष्णींभावमात्रेण असाधनाङ्गस्य अवचनात् वादिनो विजयः किं न स्यात्? प्रतिवादिनोऽपि स्वपक्षसिद्धिमकुर्वतः कथं न विजयस्तत एव भवेत्। अथ साधनाङ्गावचनमपि निग्रहस्थानं तर्हि वादिप्रतिवादिनोर्यौगपद्येन निग्रहाधिकरणता भवेत् तूष्णींभावाविशेषात्। तूष्णींभावोपलम्भेन इतरो विजयवानिति चेत्, नन्वेवमितरजयस्य अन्यतरपराजयाधिकरणतैव प्राप्ता। न च स्वपक्षसिद्धिम ३५ कुर्वन् इतरोपलम्भमात्रेण जयप्राप्तिः तदप्राप्तौ च कथं तदितरस्य पराजयः? यदपि 'इष्टस्यार्थस्य सिद्धि(द्धेः) साधनं तस्याङ्गं स्वभाव-कार्याऽनुपलम्भलक्षणं हेतुत्रयं पक्षधर्मत्वादि वा त्रैरूप्यं तस्य अवचनं निग्रहस्थानं वादिनः' इत्युक्तम्, तदपि अचारु प्रतिवादिनोऽपि पक्षधर्मत्वादेरन्यतमस्य अनुक्तौ असमर्थने वा विजयाप्राप्तेः तदप्राप्तौ च वादिनो निग्रहस्थानानुपपत्तेः इतरजयनान्तरीयकत्वात् इतरपराजयस्य। एवं हेत्वाभासादेरसाधनाङ्गस्य वचनं वादिनो निग्रहस्थानमिति प्रतिक्षिप्त- ४० मुक्तन्यायात् द्रष्टव्यम्। अथ ततः साध्यसिद्धेरभावात्। तस्य निग्रहस्थानमेव न भ्रूविक्षेपादेर-

१ स्थाणुना-भां० मां० विना। २-यस्यैव-बा० बा० का०। ३ विजयश्रा-इ०।

साधनाङ्गकरणस्य तत्र एव तत्प्राप्तेः। ततो वादिनमसाधनाङ्गमभिदधानम् कुर्वाणं वा स्वपक्षसिद्धिं विदधदेव प्रतिवादी तत्पक्षप्रतिक्षेपेण निगृह्णाति इत्येतदेव न्यायोपेतमुत्पश्यामः। एवं प्रतिवादिनो दोषमनुद्भावयतो न निग्रहस्थानम् तावता स्वपक्षसिद्धिमकुर्वाणस्य वादिनो [illegible] तत्साधनस्य सदोषत्वसंभवात् तस्य सदोषत्वेऽपि तदुद्भावनासमर्थत्वात् प्रतिवादिनो निग्रहस्थानं तदिति चेत्, न; दोषवत्साधनाभिधानाद् वादिनोऽपि पराजयाधिकरणत्वात् प्रत्येकं पुनः पराजयप्राप्तेः अत एव प्रतिवादिनो दोषस्यानुद्भावनमपि न निग्रहस्थानम्। यच्च वादिप्रतिवादिनोरन्यतरं पक्षादिवचनाधिक्योद्भावनं प्रतिवादिपक्षासिद्धौ असाधकतमम् तत् सर्वं न वादिनः पराजयाधिकरणम् अन्यथा तत्पादप्रसारिकाद्युद्भावनमपि तस्य पराजयाधिकरणं स्यात्। अथ पक्षादिवचनस्य असाधनाङ्गत्वात् तदुद्भावने वादिनस्तत्परिज्ञाननिबन्धनपराजयाधिकरणता तर्हि 'यत् सत् तत् सर्वं क्षणिकम्' इति व्याप्तिवचनादेव शब्दस्यापि क्षणिकत्वसिद्धौ 'संश्च शब्दः' इत्यभिधानं तत्र एव तस्य पराजयाधिकरणं भवेत्। न च शब्दे शब्दविप्रतिपत्तिरेव तन्निरासाय सत्त्वाभिधानं तत्र अपुनरुक्तं भवेत् तद्विप्रतिपत्तौ वा तत्साधकहेतु(नो)रसिद्ध्यादिदोष[illegible] अभ्युपगमात् तत्साध्यस्यानुपपत्तिः। यदि च संक्षिप्तवचनात् साध्यसिद्धौ तद्विस्तराभिधानं निग्रहस्थानं तर्हि [illegible] क्षणक्षयसिद्धौ कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वाद्यभिधानं कथं न निग्रहस्थानं स्यात्? कथं वा 'कृतक'-'प्रयत्नानन्तरीयक'त्वादिषु [illegible] तत्र स्यात्? 'यत् सत् तत् सर्वं क्षणिकम्' इत्यादिसाधनवाक्यमभिधाय पक्षादिवचनवत् तत्सामर्थ्यमपि निग्रहस्थानं प्रसक्तम् [illegible] तत्र एव [illegible] तत्साध्याविनाभूतस्य हेतोः प्रदर्शनमात्रात् साध्यसिद्धेः [illegible] तद्वचनं निग्रहस्थानं परस्य प्रसक्तम् अनुपलब्धौ '[illegible]' इति [illegible] निग्रहस्थानम् [illegible] व्याधि-भूत-[illegible] [illegible]। यदि तु [illegible] तदा [illegible] 'यत् सत् [illegible]' इत्यत्र [illegible] 'यत् सत् तत् सर्वं क्षणिकम्' इति सामान्येन व्याप्तिसिद्धेः [illegible]ानुमानं नानर्थकं स्यात्।

किञ्च, देश-काल-स्वभाव-विप्रकृष्टार्थानुपलब्धेरभावासिद्धौ 'सर्वत्र सर्वदा सर्वो धूमोऽग्निजन्यैव [illegible]' इति व्याप्तिसिद्धेः [illegible] स्यात्। न च [illegible]

[illegible]

[illegible]

निगृह्यते इत्यभ्युपगमसर्वार्हं असद्भूतदोषोद्भावनेनापि निरस्तीकरणात् आत्मोत्कर्षसंभवात् प्रतिवादिनो विजयप्राप्तेः वादिनो निर्दोषसाधनाभिधायिनोऽपि पराजयप्रसक्तिः। अथ समर्थस्यापि साधनस्य असमर्थनेन स्वपक्षसिद्धेरभावात् वादिनोऽपराजयो न्यायप्राप्त एव, न; उभयत्र पराजयप्रसक्तेः। न हि अभूतदोषपक्षोपलयनिगमनाद्युद्भावनमात्रेण प्रतिवादिना प्रकृतं वस्तुतत्त्वं प्रसाधयन् स्वपक्षसाधनसामर्थ्यविकलेन वादी निगृह्यते इति न्यायोपपन्नम्। अथ प्रतिवादी अपि असाधनाङ्गस्य ५ साधनाङ्गत्वेन उपादानात् स्वपक्षसिद्धिमकुर्वन् मिथ्याभिनिवेशी निगृह्यते इति चेत्, न; उभयोर्निग्रहप्राप्तेरित्युक्तत्वात्। तस्माद्—

"असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः। निग्रहस्थानमन्य[1]द्धि न युक्तमिति नेष्यते" ॥ [ ]

इत्यादिवादन्यायलक्षणमेकान्तवादिनां सर्वमसंगतमुक्तन्यायात् सर्वस्य चै[2]कान्तसाधनाङ्गत्वात् तस्य असत्त्वेन साधयितुमशक्यत्वात् अनेकान्तस्य च निर्दो[3]षत्वेन तत्र दोषोद्भावनस्य अदोषोद्भावन- १० रूपत्वात् दोषानुद्भावनस्य च निर्दो[4]षे पराजयानधिकरणत्वात् तदुद्भावनस्यैव तत्र निग्रहार्हत्वात् इत्यलं पिष्टपेषणेन इति व्यवस्थितम् मिथ्यादर्श[5]नसमूहमयत्वं भविकत्वं वा। न विद्यते मृतं मरणं यस्मिन् असौ अमृतो मोक्षः तं सारयति गमयति प्रापयतीति वा तस्य अनन्यमोक्षकारणत्वात् मोक्षप्रतिपादकत्वाच्च। 'अमयसारस्स' वा इति पाठे अमृतवत् स्वाद्यते इति अमृतस्वादम् अमृततुल्यमिति यावत्। तथा रागाद्यशेषशत्रुजेतृपुरुषविशेषैरुच्यत इति जिनवचनम् तस्य अनेन १५ विशिष्टपुरुषप्रणीतत्वनिबन्धनं प्रामाण्यं निगमयति। क्षीराश्रवाद्यनेकलब्ध्याद्यैश्वर्यादिमतो भगवत इत्यनेनापि विशेषणेन तस्य वैदिकसंपद्विशेषजनकत्वमाह। संविग्नैः संसारभयोद्वेगादिभिर्भूतमोक्षाभिलाषैःमपहस्तितराग-द्वेषाऽहंकारकालुष्यैः 'इदमेव जिनवचनं तत्त्वम्' इत्येवं [6] सुखेन अवगम्यते यत् तत् संविग्नसुखाभिगम्यम्। एतेनापि विशिष्टपुरुषातिशयसंवित्समन्वितयतिवृषनिषेव्यत्वमस्य प्रतिपादयति। एवंविधगुणाध्यासितस्य जिनवचनस्य सामायिकादिबिन्दुसारपर्यन्तश्रुताम्भोधेः २० कल्याणमस्तु इति प्रकरणसमाप्तौ अन्त्यमङ्गलसंपादनार्थं विशिष्टां स्तुतिमाह।

॥ इति तत्त्वबोधविधायिन्यां संम्मतिटीकायां तृतीयं[7] काण्डं समाप्तम् ॥

इति कतिपयसूत्रव्याख्यया यद् मयाऽऽप्तं कुशलमतुलमस्मात् [8]सम्मतेर्भव्यसार्थः।
भयभयमभिभूय प्राप्नुतां ज्ञानगर्भं विमलमभयदेवस्थानमानन्दसारम् ॥

पुष्यद्गाम्भीर्यवादिद्विरदघनघटाकुम्भपीठ-
प्रध्वंसोद्भूतमुक्ताफलविशदयशोराशिभिर्यस्य तूर्णम्।
गन्तुं दिग्दन्तिदन्तस्थलनिहितपदं व्योमपर्यन्तभागान्
सत्पथब्रह्माण्डभाण्डोदरनिबिडभरोत्पिण्डितैः संप्रतस्थे ॥ २५

प्रद्युम्नसूरेः शिष्येण तत्त्वबोधविधायिनी। तस्यैषाऽभयदेवेन [9]संम्मतेर्वि[10]वृतिः कृता ॥

अङ्कतो ग्रन्थप्रमाणं २५००० । ३०

[11]भ्यादिमदमर्दनप्रकटसम्मतिव्याजतो निवेदितजगत्त्रयस्फुरितसान्द्रकीर्तिद्रुमः।
समस्तजगतीतले गुणवतां शिरोमणिवरो जयत्यतुल्यभाग(?)भयदेवसूरिः प्रभुः ॥

१-न्यद्धि गु-बृ० आ० हा० वि०। २-कान्ते स्ना-बृ० हा०। ३-षोद्भव-बृ० हा०। ४-निर्दोष ए-बृ०। ५-णीततत्त्व-बृ० वा० भा०।-णीतनत्वतत्त्व-भां० मां०। ६ इत्येव सु-बृ० पं०। ७-गाम्यं तेना-आ० हा० वि०। ८ प्रतिक्रमण-वा० बा०। ९ सम्मति-वा० बा०। सम्मति-भां० मां० आ० हा०। १०-तीयका-बृ० भां० मां०। ११ सम्मते-भां० मां०। १२-मतिभू-बृ०। १३ सम्म-भां० १४ इद पद्यं आ० हा० वि० प्रतिषु नास्ति।

परिशिष्टानि

सन्मतिमूलगाथानामकाराद्यनुक्रमः ।

श्वेताम्बर-दिगम्बरजैनाचार्यैः स्वे स्वे ग्रन्थे समुद्धृतानां यथोपलब्धानां च सन्मतिगाथानां सूचिः ।

जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण

सन्मतिप्रकरण	विशेषावश्यक
१,११	गाथा १५४८
१,११	११२५
१,६	२६४०
३,१५	१४१
३,४२	७७४
३,४७	२२६५
३,५२	२१०४
३,४६	२१३५

सिंहक्षमाश्रमण

सन्मति०	नयचक्रटीका (लिखित प्रेसकोपी)
१,३१	पृ० २
१,४७	८
१,२८	५०
३,६६	११२ अने १०३२
१,३	३५६
३,५८	६६०
१,४७	७४८
१,६	७६०
१,५	६२८
१,५ अने ३,४५	९०१

सिद्धसेनगणी (गन्धहस्ती)

सन्मति०	तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति
१,२८ अने १,३०	अ० १ पृ० ७१-५१

हरिभद्र

सन्मति०	पञ्चवस्तु
३,५३	गाथा १०४६
	उपदेशपद
३,५३	पृ० १४०
	दशवै० टीका
३,५२	पृ० ३२
१,१८	२८

शीलाङ्क

सम्मति०	आचाराङ्गटीका
१,३१	पृ० ८०
१,३२	८५
३,४५	१४७
१,३१	१७१
	सूत्रकृताङ्गटीका
३,५३	पृ० २११
१,३२	,,
१,३१	,,
१,३४	,,
१,३५	,,

वादिवेताल शान्तिसूरि

सन्मति	उत्तराध्ययनपाइयटीका
१,३ अने १,६	पृ० २१
३,४७	६७

हेमचन्द्र

सन्मति०	प्रमाणमीमांसा
३,४६	पृ० ४०

मलधारी हेमचन्द्र

सन्मति०	विशेषाव० टीका
३,५२	पृ० ११
१,४७	,,
१,३	१२४६

मल्लिषेण

सन्मति	स्याद्वादमंजरी
३,४७	पृ० १११

विद्यानन्दी

सन्मति०	तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
३,४५	पृ० ३

अनन्तवीर्य

सन्मति०	सिद्धिविनिश्चयटीका (लिखित)
३,५०	पृ० ३२४

अमृतचन्द्र

सन्मति०	पञ्चास्तिकायटीका
३,६७	पृ० २५०

यशोविजयोपाध्यायैः स्वरचिता अनेके ग्रन्थाः सन्मतिप्रकरणमाश्रित्यैव कृता इति सूचनाय तत्तद्ग्रन्थोद्धृतानां सन्मतिगाथानां सूचिः।

सन्मति॰	शास्त्रवार्तास॰ टीका	३,५७	२५६ प्र॰	१,३५	११
१,३५	पृ॰ २५२ द्वि॰	३,३८	३६ प्र॰	१,८	१२
१,४७	११५ प्र॰	३,९	२६१ द्वि॰	१,९	„
१,३७	२५३ प्र॰	३,१०	„	१,१०	११
१,२९	„	३,२९	२७४ प्र॰	१,११	„
१,११	२३१ द्वि॰	३,३	२५ प्र॰	१,१२	„
१,४९	११५ द्वि॰	३,१२	२६१ द्वि॰	१,१३	„
१,५२	११६ प्र॰	३,४०	२३५ प्र॰	१,१४	„
१,५०	११५ द्वि॰	३,२७	२३३ द्वि॰	१,१५	„
१,४४	२५८ प्र॰	३,४४	५८ प्र॰	१,१६	„
१,९	२४२ प्र॰	३,८	२६१ प्र॰	१,२१	११
१,९८	२३० द्वि॰	३,३४	२३१ द्वि॰	१,२२	१२
	२४३ „	३,३३	२३० द्वि॰	१,२३	„
१,२१	११० प्र॰	३,५६	२५६ प्र॰	१,२४	„
१,५२	११६ प्र॰	सन्मति॰	नयोपदेश	१,२५	„
१,१०	२२१ द्वि॰	१,११	पृ॰ ३५ द्वि॰	१,२६	१४
१,५१	११६ प्र॰	१,३१	३ द्वि॰	१,२७	„
१,९	१११ प्र॰	१,४१	१२ द्वि॰	१,२८	११
१,१२	२२४ प्र॰	१,१५	३६ द्वि॰	१,५	१०२
१,४२	२५८ प्र॰	१,५३	८८ प्र॰	१,४१	१०८
१,५४	११६ प्र॰	१,१४	३५ द्वि॰	१,५१-५४	१११
१,४८	११५ प्र॰	१,१८	२८ द्वि॰	१,३६	११०
१,४०	१५३ द्वि॰	१,३	२२ प्र॰	१,३७-३८	११६
१,४८	„ द्वि॰	१,१०	३१ प्र॰	१,३९	११३
१,३५	१०२ प्र॰	१,९	३० द्वि॰	१,४०	११४
१,३६	„ द्वि॰	१,१२	३५ द्वि॰	१,४१	„
१,३९	३६ प्र॰	१,८	३० द्वि॰	१,४३	११९
२,२२	२१९ द्वि॰	१,५८	१५ द्वि॰	१,५-६	११०
२,५३	७९ द्वि॰	१,३७	१२ प्र॰	१,७	११३-११८
२,३९	२६० प्र॰	१,३५	„	१,८-१५	११३
[illegible]	२५९ द्वि॰	१,३६	३६ प्र॰	१,१३	११२
[illegible]	„	१,३०	७३ द्वि॰	२,२२	„
[illegible]	२६१ द्वि॰	१,५३	९९ द्वि॰	१,३१	११४
[illegible]	२६१ द्वि॰	[illegible]	६९ प्र॰	१,३३-३०	„
[illegible]	[illegible] प्र॰	[illegible]	६९ द्वि॰	१,४३	१११
[illegible]	[illegible] द्वि॰	[illegible]	९९ द्वि॰	१,४४-४६	११२
[illegible]	[illegible] प्र॰	[illegible]	३५ द्वि॰	[illegible]	११४
[illegible]	[illegible] द्वि॰	[illegible]	७५ द्वि॰	१,५०	११४
[illegible]	„	[illegible]	[illegible]	[illegible]	११०
	[illegible]		([illegible])	१,१०-२३	„
	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१,६०	

सन्मति०	न्यबिन्दु	१,११		१५८ प्र०	१,१३	२ १२
१,८	पृ० ३५१ द्वि०	१,१९		१५१ प्र०	१,१८	६ २१
१,१५	"	१,१०		१६६ प्र०	१,३०	२ १२
२,११	३५८ द्वि०	१,३		१५४ द्वि०	१,४१	५ ६
२,११	"	१,३६		१६६ प्र०	१,१२	२ ११
२,१२	१६६ द्वि०	१,१२		१६१ द्वि०	१,१४	६ १६
२,२४	१६१ द्वि०	१,११		"	१,११	६ २०-२१
२,४	१५५ प्र०	१,७		१५६ द्वि०	सन्मति०	महावीरस्तव
२,१४	१५१ प्र०	१,८		१५७ प्र०	१,२८	पृ० ५४ प्र०
२,५	१५६ प्र०	सन्मति०	द्रव्यगुणपर्यायनो रास		१,८	४२ द्वि०
२,१०	१६० द्वि०	१,४०	ढा० ११	गा० १०	१,२९	१६ द्वि०
२,११	१६१ द्वि०	१,४१	४	११	१,६	५६ प्र०
२,१०	१५८ प्र०	१,३५	६	१४-१५	१,३५	५४ द्वि०
२,११	१६२ द्वि०	१,३६	६	१४-१५	सन्मति०	धर्मपरीक्षा
२,१८	१६२ द्वि०	२,३१	६	२१	१,१	पृ० ८६
२,३०	"	"	१४	१६	१,४१	८८
२,३१	१६१ प्र०	२,१७	६	१२	१,४८	"
२,३५	१६१ द्वि०	२,३२	६	११	१,३७	१४०
२,६	१५७ प्र०	२,१४	२	१२	सन्मति०	गुरुतत्त्वविनिश्चय
२,३२	१६१ प्र०	२,३०	१	२	१,३८	पृ० ११ द्वि०
२,३१	१६० द्वि०	२,३५	२	१२	१,५४	१६० प्र०
२,३६	१५६ प्र०	२,११	२	१२	१,३७	१७ द्वि०

सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः ।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
		अ	
अंतरेण			
अङ्कमला	३	१४	६३५
[illegible]	३	१८	६४५
[illegible]	२	१७	६१६
[illegible]	३	२६	६४०
[illegible]	३	२४	६३८
[illegible]	२	२०	
[illegible]	१	१६,४७	४१७,४५१
[illegible]	३	५१	
[illegible]	३	१५	६१५
	२	४१	६२५
[illegible]	३	६,१६	६१०
[illegible]	२	४१	६२५
[illegible]	३	६	६१०
[illegible]	३	१६	६१७
[illegible]	३	११	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	[illegible]
अगेग	३	११	
अगेगकरणं	३	११	[illegible]
अगेगन्ते	१	१४	[illegible]
अगेय	१	११	[illegible]
अगेगवत्तासगुणा	१	११	[illegible]
अगोरम	१	१	
अगोरमगुर्दं	१	१	[illegible]
अण्णं	३	१	[illegible]
अण्णत्तं	२	११	[illegible]
	३	६	[illegible]
अण्णयरे	१	५४	[illegible]
अण्णयरो	३	११	[illegible]
अण्णा	१	५१	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

सन्मतिमूलगाथागताः शब्दाः।

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
…र	१	१९	४१८
…रुप्पेसु	१	१७	
…उभ	१	१७	३१७,३१८,
…उभवाईसा	१	५	३४९,३६६,
…मुप्पुय			३७८
			३१७
उजुसुयवयणविच्छेदो	१	५	६४०
उडु	३	२९	६४०
उड्डगईयं	३	२९	४१९,४२९,
उण	१	२१,२८,३०, ४१	४३०
	३	१०,१९,२१, ६४	६३४,६३६, ६३७,७४६
			६३३
	२	१४	१०३
उणा	१	२	४०९
उवेउं	१	११	६४५
उप्पज्जंति	३	३७	६४५
उप्पज्जमाण	३	३७	६४५
उप्पज्जमाणकालं	३	३७	६३३
उप्पण्णं	२	३६	६०८,६२१
उप्पण्णो	२	५,३१	६४१,६४९
उप्पाओ	३	३२,४०,४२	६५०
	१	१२	४१०,४१५
उप्पाय	१	१२	
उप्पायट्ठिइभंगा	३	३८	६४६
उप्पायत्था	३	३८	६३१
उप्पायवाउग्गला	३	७	६४६
उप्पायमंतो	३	३८	६४९
उप्पायं	३	४१	६४९
उप्पायसमा	३	४१	६४३
उप्पाया	३	३५	
उप्पायाई	१	१६	६३४
उभय	२	४०	४७६
उभयत्थ	१	१६	४४६,४४७
उभयवायपण्णवओ	१	३८,३९,४०	६३३
उभयहा	२	३९	६५६
उयाहरणं	३	४९	
उवएण	३	५०	
उवया	२	२९	६२०
उवउत्तो	३	२९	६३८
उवएसम्मि	२	९	६०८
उवओग'	१	८	
उवओगो			

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
उवगयाणं	१	१	११३,१५०
			१६६
	१	१६	
उवणीओ	३	२२,५८	६३७,७२६
उवणीयं	३	५१	७०९
उवणीया	२	२७	
उवलंभो	२	३३	६२२
उवयण्णं	२	३६	६३३
उवसमियाई	२	९	५६६
उवसमियाईभावं	२	३६	६३३
उवसमियाईलक्खणवि-सेसओ	३	५५	
उवाओ	३	४१	६४९
उस्सग्गओ			
ए			
	१	११,१५	४१५,४१६
	३	५५,५७	७२५
एए	१	५३	४५५
एएसु	२	१०	६०६
एक्कसमएण	१	३१	४३०
एग	२	१२,३१	६०८,६२१
	३	१७,४०,४१	६३६,६४९
	३	६	६२०
एगगुण	३	६	६२०
एगगुणाईया	३	११	६३५
एगगुणो	१	३१	४३०
एगदवियम्मि	३	४१	६४९
एगदवियस्स	२	१९	
एगंत	३	१	६२७
	३	१	६२७
एगंतविणिवेसे	२	३९	६३३
एगंतपज्जयपडिसेहे	१	१४	४१६
एगंता	३	५३	७१०
	३	३८	
	३	३३	६४१
एगंतिओ (एगतिओ)	१	१८	४१७
एगंतुच्छेयम्मि	३	३२	६३१
एगंतो	३	१७	६३५
एगपुरिससंबंधो	२	२७	६३६
एगयरम्मि	३	४०	६४९
एगवियाणम्मि	३	४०	६४९
एगमई	२	३१	६३३
एगसमयतहप्पाओ	२	३२	६०९
एगसमयम्मि	३	४१	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
[illegible]	२	२०	६१७
[illegible]	२	२०	६१७
[illegible]	२	२४	६१८
[illegible]	३	६०	७५५
[illegible]	३	६७	७५५
[illegible]	३	६७	७५५
[illegible]	१	४३	
[illegible]	१	२४,३०,५२	४१८,४५५
	२	७,११	६१०
	३	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
अह	१	[illegible]	[illegible]
	२	[illegible]	[illegible]
	३	[illegible]	[illegible]
अइंती	१	१४	[illegible]
	२	५	[illegible]
[illegible]	३	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
णय	१	८,१६,२५ ४२	
	३	४७	६५५
णयवाद	३	२१	६३७
णयवायविसेसगओ	३	२१	६३७
णयवाय	३	६४	७४६
णयवायगहणलीणा	३	६४	७४६
णयवाया	१	२५	४२१
	३	४७	६५५
णयस्स	१	५,१०,११ १७,४२,५२	
णया	१	१३,१४,२१ २२	४१६,४२१
[illegible]	३	१०	६१४
	१	१६	
[illegible]	२	१	४५७
[illegible]	१	१५	
[illegible]	२	४०	६२४
[illegible]	३	१८	६१५
[illegible]	२	९,१६,१७ २२,२७ २६	६१५,६१६ ६१७
[illegible]	३	२२	६१०
[illegible]	३	१०	६११
[illegible]	३	१०	६११
[illegible]	३	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
णिओ	३	५२	[illegible]
णिच्छएण	१	३१	[illegible]
णिच्छिओ	३	६६	[illegible]
णिद्दिट्ठं	२	१९	[illegible]
णिद्दोसं	३	६६	[illegible]
णिमित्तं	१	५४	
	२	२२	[illegible]
	३	२२	[illegible]
णिमित्तो	२	२०	
णिमेणं	१	५	[illegible]
णिय	२	५	[illegible]
णियआवरणक्खय	२	५	[illegible]
णियआवरणक्खयस्सेवे	२	५	[illegible]
णियई	३	५१	[illegible]
णियएहिं	१	३६	[illegible]
णियओ	१	१७	[illegible]
णियत्तेइ	३	१	[illegible]
णियम	२	१०	[illegible]
णियमओ	२	४१	[illegible]
णियमणादित्तं	२	१८	[illegible]
णियमा	१	५२,	
	२	१५,१६,१०	[illegible]
	३	४१,४८,६६	[illegible]
णियमेइ	३	१	[illegible]
णियमेण	१	१०	[illegible]
	२	११	[illegible]
	३	५,१४,३५	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
	३	४८	६५६
दव्वत्थंतरभूया	३	१४	६३८
दव्वं	१	१२,३१,३६	४१०,४३०,४४१
	३	४,६,१८,१९,३०,६०	६३०,६३६,६४०,७२७
°दव्वंतर	३	३,१८	६४६
दव्वंतरनिस्सियं	३	३	६२९
दव्वंतरसंजोगाहि	३	३८	६४६
दव्वपरिणामं	३	१	६२७
दव्वविउत्ता	१	१२	४१०
दव्वस्स	३	२,११	६२७,६३८
दव्वाइं	३	२७	
दव्वाणुगया	३	८	६३३
दव्वे	३	३९	६४६
दसगुणम्मि	३	१५	६३६
दसगुणो	३	१३	
दसतणं	३	१५	६३६
दससु	३	१५	६३६
दहणदओ	३	३०	६४०
दाइंतो	३	५८	७२६
दाइयं	२	३४,३६	६२२,६२३
दाएइ	३	१	६२७
दाएही	१	५४	४५६
°दिट्ठ	१	२८,४५	४३३,४५०
दिट्ठगयओ	१	२८	४३३
दिट्ठी	१	३२,३३	
दुअणुएहि	३	३९	६४६
दुए	२	९	६०८
°दुक्ख	१	१८,४६	४१७
	३	५१	७१०
°दुक्खंत	३	४४	६५१
दुक्खसंपओगो	३	४४	६५१
दुक्खं	३	६८	
°दुगुंछग	१	४६	
°दुगुण	३	१९	६३७
दुगुणमहुरं	३	१९	६३७
दुण्णया	१	१५	४१६
दुण्णिमिओ	३	३६	६५५
°दुद्द	१	४७	
दुद्दपाणियाणं	१	२७	४५२
दुन्निगम्मा	३	६४	७१६
दुन्नेदं	३	३२,३४	[illegible]
दुविहो	३	४३	६५०
दुवे	१	१४	४१६
दुवेण्हं	१	११	४१५
दूरे	३	९	६३४
°देवाउय	२	४२	६२४
देवाउयजीवियविसिट्ठो	२	४२	६२४
°देस	३	६०	७२७
देसणा	३	१२	६३५
देसो	१	३७,३८,३९,४०	४४६,४४७
देहे	१	४८	४५३
°दो	१	११	४१५
	२	३३	६२३
	३	१०,३३,५३,६८	६३४,६४०,७१०
दोण्णवि	३	५६	७२५
दोण्णि	३	४६	६५५
दोण्ह	२	१	४५७
°दोस	१	४६	
	२	४३	
दोसे	३	५०	७०४
दोहिं	१	३६	४४२
	३	४९	६५६
°द्दूणं	३	४३	
ध			
°धम्म	३	४३	६५०
धम्मावाओ	३	४३	६५०
धम्मी	३	५५	७१८
धम्मो	३	१४	
धीरहत्था	३	६५	७४६
न			
न	१	३१,३३	४३३,४४०
	२	३३	६०९
	३	२८,५३,६४,६७	६३९,७१०,७४६
नत्थि	१	९	४०८
	२	६	६००
	३	७,५२	६३०,७१०
°नय	१	४	
°नयपह	३	६३	
नयवाओ	३	४६	६५५
नयस्स	१	१०	

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°पडो	१	४१	
°पडिबद्ध	१	२४	
[illegible]	१	११	४१५
	३	५१	७१०
[illegible]	१	२४	४२१
[illegible]	३	६१	
[illegible]	२	१	४५७
[illegible]	३	६१	७११
[illegible]	१	४७	
[illegible]	३	९	६१४
[illegible]	१	११	४४०
[illegible]	१	११	४२१
[illegible]	१	१४	४४०
	३	७,११,१०,	६०५,६०६ ६१०
[illegible]	२	११	६०६
[illegible]	१	११,५४	४५६
	२	५,१०,१५	६०६,६१०
	३	५,१५,११	६१०,६११, ६४०
[illegible]	३	१००	
[illegible]			
[illegible]	३	१०	६११
[illegible]	३	१०	६११
[illegible]	३	१०	६११
[illegible]	३	५१	७१०
[illegible]	३	५१	७१०
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
पुरिसम्मि	१	११	४११
पुरिससद्दो	१	११	४११,४१०
पुरिसस्स	२	११	६११
पुरिसाउयजीवो	२	४१	६१४
पुरिसो	१	१४	४४०
	३	७,१८,११,	६११,६११ ६१०
°पुन्न	२	११	६११
	३	११	६१९
पुन्नभद्दे	२	९	६०८
पुन्नं	३	५१	७१०
पुन्नकर्म	३	५१	७१० ६१४
पुन्नाहिरुद्दो	३	११	६११
पुन्नागुणो	२	११	६११
पूरेति	३	५१	७१०
°पोग्गलपरिणाम	३	४६	
°पोग्गला	३	६०	
फ			
[illegible]	१	५१	४५५
°फासा	३	८	
ब			
[illegible]	१	११	४१४
[illegible]	१	११,४१	४१४
[illegible]	१	५१	४५१
[illegible]	१	११	४११
[illegible]	१	११	४३४
[illegible]	१	१०	४१६
[illegible]	१	६१	४५०,४०१
[illegible]	१	४०	४१५
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°सम्मद्दंसण	१	२५	
°सम्मद्दंसणं	१	२३	
	३	५१,६२	७०५,७२२
°सम्मद्दंसणणाणचरित्त	३	४४	
सम्मद्दंसणणाणचरित्तपडिवत्तिसंपन्नो	३	४४	६५१
सम्मद्दंसणसद्दं	१	२३,२५	४२१
°सम्मिया	२	२८	६३६
°संविग्ग	३	६६	
संविग्गसुहाहिगम्मसारा	३	६६	
°संसार	१	२०	४१८
संसारमओपवन्नणं	१	२०	४३६
संसारो	१	१७	४१७
°सह	३	५०	
सहोल्लया	३	५०	७०४
°सहा	१	१८	४३६
	३	५०	७०४
सहे	१	१८	४३६
°साहि	२	४०	
साहिवरिमो	२	४०	६२४
[illegible]	२	८	६०७
°सण्णा	१	४५	४५०
	३	६,११,३०	६४०
°सण्णाओ	१	१४,२५	
°सन्न	१	४१	
सन्निवल्लो	१	४१	४४८
°सन्न	३	१४	
सयं	३	४६	६५६
°सद्द	३	३६	७३६
°सद्दं	१	३३,२५	
[illegible]	३	२८	६३६
[illegible]	३	२८	६३६
[illegible]	३	२८	६८०
[illegible]	२	३२	६३१
[illegible]	१	५	३०९,३०८
[illegible]	३	६	
[illegible]	१	३०	
	३	[illegible]	
[illegible]	१	[illegible]	[illegible]
[illegible]	१	३१	
[illegible]	१	७	[illegible]
[illegible]	१	[illegible]	[illegible]

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°सब्भावा	१	३१	४३६
सब्भावासब्भावे	१	४०	४४४
सब्भावे	१	३७,३८	४४६
सब्भूयं	३	५६	७२६
समए	१	३५	४४३
	३	६६	
°समओ	१	२८	४३६
समं	२	९	६०८
	३	१५	६६६
समण्णेइ	३	१	६६८
°समत्त	२	१६	६१५
	३	६२	७३१
°समत्तसुयणाण	२	१६	६१५
समत्तसुयणाणदंसणाविसओ	२	१६	६१५
°समय	१	२,४२	४४६
	३	१७	६६६
समयं	१	३६	
°समयंतर	२	३१	६३१
समयपन्नवणा	१	४२	४४६
°समयपरमत्थ	१	२	१०१
समयपरमत्थवित्थरविहाडजणपज्जुवासणसयन्नो	१	२	१६६,१०३ १०१,१००
समयमाईहिं	१	३६	
°समयम्मि	१	५०	
	२	११,३०	६०६,६१४
	३	४०,४१	६१०,६१५
°समया	३	४७	६५५
समयाविरोहेण	३	२०	६१६
समये	२	३५	६३६
	३	१६	६१५
समा	३	६०	७१७
[illegible]	२	१	५६६
[illegible]	२	९	६०८
समाणओ	१	१०	४१०
	३	५१	७१०
°समुदय	३	१२,११,१०	[illegible]
समुदयओ	३	११	[illegible]
[illegible]	३	१०	[illegible]
[illegible]	३	१२	[illegible]
[illegible]	३	१२	[illegible]
[illegible]	३	१५	[illegible]
[illegible]	१	[illegible]	[illegible]
[illegible]	३	६६	

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
°सुत्तहर	३	६१	७३२
सुत्तहरसद्दसंतुट्ठा	३	६१	७३२
सुत्तासायणमीरुहिं	२	[illegible]	६०७
सुत्तासायणा	२	७०	
सुत्ते	२	३४,३६	६२२,६२३
°सुत्तेण	३	६१	७ ६
सुत्तेसु	२	१८	६१६
°सुद्दं	३	११	६३५
	३	६७	
सुदम्मि	१	४८	४५३
सुद्दणाइओ	१	९	४०८
सुद्धा	१	४	३१५
सुद्धोअगतणभस्स	३	४८	६५६
°सुय	२	११,२७	३१५
°सुयणाण	२	२८	६१९
सुयणाणम्मिया	२	२८	६१९
सुयणाणे	२	२८	६१९
°सुविनिच्छिया	१	२१	४२१
सुविनिच्छियासो	२	२२	६१८
सुवियत्त	२	११	६०९
°सुर	१	१८,२०,४६	४३७
	३	६९	
°सुरं	१	९	
[illegible]	१	१८	४३७
[illegible]	१	१८	४३७
°[illegible]	१	५	
[illegible]	१	५	३४५,३७८
[illegible]	१	३१	
[illegible]	१	५१	४०९
[illegible]	१	३४	४८०
[illegible]	३	१०	६३६
[illegible]	१	१	३०१
([illegible])			३१०
([illegible])			३१०,३११
([illegible])			३११,३१२
([illegible])			३१२
([illegible])			३११
[illegible]			३१८
[illegible]	२	१८	६१८
	१	१०,११,५२	४१०,४८०
		[illegible]	[illegible]
	३	२८,१८,३१	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
			[illegible]
°[illegible]	२	५	६०६

शब्द	काण्ड	गाथा	व्या. पृ.
	ह		
हंदि	१	१२,१५	४१०,४११
	२	[illegible]	६०८
	३	६५	७४६
हंदी	२	१२	
	३	१८	
हवइ	१	११	४१०
	२	२१,३१,३२	६१८,६३१
हवंति	१	३१	४३१
°हियओ	१	२	
हु	१	१५	४११
	३	१७,६१	७३१
°हेउ	२	१९	६३१
	३	४४	
हेउओ	३	४५	६५१
हेउपडिसेअणं	२	१९	६३१
हेउगओ	३	४६	६४०
°हेउवाय	३	४५	६५१
हेउवायपक्खम्मि	३	४५	६५१
हेउवायस्स	३	४४	६५१
हेउविसओवणीयं	३	५८	७११
°हेउविसय	३	५८	७११
होइ	१	९,१८,३१	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
	२	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
	३	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
			[illegible]
[illegible]	२	१	[illegible]
[illegible]	२	१	६०८
	३	[illegible]	[illegible]
[illegible]	३	[illegible]	[illegible]
[illegible]	१	[illegible]	[illegible]
	२	[illegible]	[illegible]
	३	[illegible]	[illegible]
		[illegible]	[illegible]
			[illegible]
[illegible]	३	[illegible]	[illegible]

५

सन्मतिटीकागतान्यवतरणानि ।

अ

अगृहीतविशेषणा च विशेष्ये बुद्धिर्नोपजायते ।
[ ] पृ. ४७६ (४)*

अगृहीतस्य चाभावात् प्रमेयाभावनिर्णयः ।
तद्वद्‌दोऽप्यन्यथो भावाद्भवस्था दुरुत्तरा ॥
[ ] पृ. ५८७

अगोतो विनिवृत्तश्च गोविलक्षण इष्यते ।
गाव एव ततो नायं गोरगौर्न प्रसज्यते ॥
[तत्त्वसं० का० १०८५] पृ. २१५ (७,८)

अगोनिवृत्तिः सामान्यं वाच्यं यैः परिकल्पितम् ।
गोत्वं वस्त्वेव तैरुक्तमगोपोहगिरा स्फुटम् ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० १] पृ. १८७ (११,११)

अग्निस्वभावः शक्रस्य मूर्धा यद्यग्निरेव सः ।
अथानग्निस्वभावोऽसौ धूमस्तत्र कथं भवेत् ॥
[ ] पृ. ५०

अग्निहोत्रं जुहुयात् । [ ] पृ. ११

अग्नेरूर्ध्वज्वलनम्, वायोस्तिर्यक्पवनम्,
अणुमनसोश्चाद्यं कर्मादृष्टकारितम् ।
[वैशेषिकद० अ० ५-२-१३] पृ. १०५

अचेतनः कथं भावस्तदिच्छामनुवर्तते ।
[ ] पृ. ९६,१११

अज्ञातस्यापि वाक्यस्य प्रवाहोत्थः प्रमाणता ।
प्रमाभावस्त्वसामर्थ्याच्छब्दोऽभावपदेशः ॥
[ ] पृ. ५८७

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[ओघनि० गा० ४८३] पृ. ७५२ (३)

अणंते केवलणाणे अणंते केवलदंसणे ।
[ ] पृ. ६१० (१)

'अत इदम्' इति यतस्तद् दिशो लिङ्गम् ।
[वैशेषिकद० २-२-१०] पृ. ६६६ (१)

अतद्रूपपरावृत्तवस्तुमात्रप्रसाधनात् ।
सामान्यविषयं प्रोक्तं लिङ्गं भेदाप्रतिष्ठितेः ॥
[ ] पृ. २११ (६,७,८)

अतीतानागताकारकालसंस्पर्शवर्जितम् ।
वर्तमानतया सर्वमृजुसूत्रेण दृश्यते ॥
[ ] पृ ३१२

अतीतानागतौ कालौ वेदकारविवर्जितौ ।
कालत्वात् तद्यथा कालो वर्तमानः समीक्ष्यते ॥
[ ] पृ. २१

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा ।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥
[ ] पृ. ७५३

अत्यन्तासम्भविनो न विरोधगतिः । [ ] पृ. ५५८

अत्र द्वौ वस्तुसाधनौ [न्यायबिन्दु० परि० ३ सू० १९]
पृ. ३५१ (२)

अथान्यथा विशेष्येऽपि स्याद् विशेषणकल्पना ।
तथासति हि यत् किंचित् प्रसज्येत विशेषणम् ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ९०] पृ. १९१.

अथान्यदप्रयत्नेन सम्यगन्वेषणे कृते ।
मूलाभावान्न विज्ञानं भवेद् बाधकबाधनम् ॥
[तत्त्वसं० का० २८६९] पृ. १९

अथासत्यपि सारूप्ये स्यादपोहस्य कल्पना ।
गवाश्वयोरयं कस्मादपोहो न कल्प्यते ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ७६] पृ. १९० (८)

अथाऽस्त्यतिशयः कश्चिद् येन भेदेन वर्तते ।
स एव दधि सोऽन्यत्र नास्तीत्यनुभयं परम् ॥
[ ] पृ. २४२ (१४)

अदृष्टं स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते, एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणत्वात्, यो य एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुगुणः स स स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते, यथा वेगः तथा चादृष्टम्, तस्मात् तदपि स्वाश्रयसंयुक्ते आश्रयान्तरे कर्म आरभते इति । न चासिद्धं क्रियाहेतुगुणत्वम्, 'अग्नेरूर्ध्वज्वलनम्, वायोस्तिर्यक्पवनम्, अणु-मनसोश्चाद्यं कर्म देवदत्तविशेषगुणकारितम्, कार्यत्वे सति देवदत्तस्योपकारकत्वात्, पाण्यादिपरिस्पन्दवत्, एकद्रव्यत्वं चैकद्रव्याश्रयत्वात्, एकद्रव्यत्वम्, विशेषगुणत्वात्, शब्दवत्' ।

'एकद्रव्यत्वात्' इत्युच्यमाने रूपादिभिर्व्यभिचारस्तन्निवृत्त्यर्थम् 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्युक्तम् । 'क्रियाहेतुगुणत्वात्' इत्युच्यमाने मुसलहस्तसंयोगेन स्वाश्रयाऽसंयुक्तस्तम्भादिचलनहेतुना व्यभिचारः, तन्निवारणार्थम् 'एकद्रव्यत्वे सति' इति विशेषणम् । 'एकद्रव्यत्वे सति क्रियाहेतुत्वात्' इत्युच्यमाने स्वाश्रयसंयुक्तलोहादिक्रियाहेतुनाऽयस्कान्तेन व्यभिचारः । तन्निवारणार्थम् 'गुणत्वात्' इत्यभिधानम् । [ ] पृ १४१ (२)

* परिशिष्टेऽस्मिन् कोष्ठकान्तर्गता अङ्काः तत्तत्पृष्ठगतटिप्पण्यङ्कसूचकाः ॥

अदृष्टमेवाददृष्टान्तेनाकृष्यमाणलोहदर्शने
सुवर्णलेशो निःशल्यत्वेन तत्क्रियाहेतुः ।
[ ] पृ. १४४

अदृष्टेऽन्यशब्दार्थं स्वार्थस्यांशेऽपि दर्शनात् ।
श्रुतेः सम्बन्धसौकर्यं न चास्ति व्यभिचारिता ॥
[ ] पृ. १६६ (४,५,६)

अदृष्टेऽपोऽर्थ वेदनमात्रम् । [ ] पृ. ३८८ (१५)

अधिगतोऽनुपलब्धत्वात् न वादे मन्यवादिनः ।
[श्लो० वा० निरालम्ब० श्लो० ११६]
पृ. ३७७ (४)

अनधिगतार्थपरिच्छित्तिः प्रमाणम् । [ ] पृ. ५१४

अनर्थ. मनुष्ये [illegible] न स्थिरम्,
तथा पक्ष दृष्टः पक्षपातोऽच्चारः । [ ] पृ. ७२१

[illegible] न [illegible] प्रतीयेत ।
[ ] पृ. २६५

[illegible] हेतुस्थोऽपि तत्त्वम् ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. ११२ (१९,२०)

[illegible] । तथा चाहु—"अनादि [illegible] ।
[ ] पृ. १०८ (१,३,८)

[illegible]
[illegible] ॥
[illegible]] पृ. १०६ (११)

[illegible]

अनेकान्तात्मकताभावेऽपि केशाग्रे [illegible]
सर्वमनेकान्तात्मकमिति प्रतीतावस्य [illegible]
कुनयविशेषितं तत्त्वमिदम् । [
अन्तरङ्ग-बहिरङ्गयोरन्तरङ्गस्यैव बलीयस्त्वम् ।
[ ] पृ. [illegible]

अन्यतरकर्मजः उभयकर्मजः संयोगश्च संयो[illegible]
[वैशेषिकद० ७-२-९] [illegible]

अन्यत्र गो धर्मः [illegible]
[ ] पृ. [illegible]

अन्यत्र हिंसा अनाग्रहेतुः । [ ] पृ. [illegible]

अन्वयाऽनुगमार्थं यत्र तत्र तदैव हि ।
नान्वयाऽनुगमार्थं यत्र तत्र तदैव हि ॥
[ ] पृ. ११,५११

अन्यांशेन शब्देन [illegible] ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. ३१० (७,[illegible]

अन्यैरनियतदृष्टत्वात् [illegible] ।
अन्यथा [illegible] ॥
[तत्त्व० प० [illegible]
पृ. १०७ (८), ३१० ([illegible]

अन्यैव हि सामान्यादिभावनावाच्यान् ।
विशेषोऽन्यथा [illegible] ॥
[ ] पृ. [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. ३१० ([illegible]

[illegible]

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥
[भग० गी० अ० १५ श्लो० १७]

तथा श्रुतिश्च तत्प्रतिपादिका उपलभ्यते—
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक आस्ते ॥
[श्वेताश्व० उ० अ० ३,३]

न च शब्दप्रतिपादकानामप्रामाण्यम्, प्रमाजनकत्वस्य सद्भावात् । तथाहि—प्रमाजनकत्वेन प्रमाणस्य प्रामाण्यं न प्रवृत्तिजनकत्वेन तस्येहास्येव । प्रवृत्ति-निवृत्ती तु पुरुषस्य सुख-दुःखसाधनसाध्यत्वात् समर्थस्याभिलाषाद् भवत इति । अथ विधिवाक्यादीनां प्रामाण्ये न स्वरूपार्थत्वादिति चेत्, तदसत्; स्वार्थप्रतिपादकत्वेन विध्यादीनाम् । तथाहि—श्रुतेः स्वार्थप्रतिपादकत्वेन प्रवर्तकत्वम्, निन्दावाक्यात्तु निवर्तकत्वमिति । अन्यथा हि तदर्थापरिज्ञाने विहित-प्रतिषिद्धयो-रविशेषेण प्रवृत्तिर्निवृत्तिर्वा स्यात् । तथा विधिवाक्यस्यापि स्वार्थ-प्रतिपादनद्वारेणैव पुरुषप्रेरकत्वं दृष्टम्, एवं स्वरूपार्थेष्वपि वाक्येषु स्यात्, वाक्यस्वरूपतया अविशेषात् विशेषहेतोरभावादिति । तथा स्वरूपार्थानामप्रामाण्ये "मेध्या आपः, दर्भाः पवित्रम्, अमेध्यमशुचि" इत्येवंस्वरूपपरिज्ञाने विध्य-ज्ञातायामप्यविशेषेण प्रवृत्ति-निवृत्तिप्रसङ्गः, न चैतदस्ति; मेध्ये-ष्वेव प्रवर्तते अमेध्येषु च निवर्तत इत्युपलम्भात् । तदेवं स्वरूपार्थेभ्यो वाक्येभ्योऽर्थस्वरूपावबोधे सति इष्टे प्रवृत्तिरसंनात् अनिष्टे च निवृत्तिरिति ज्ञायते—स्वरूपार्थानां प्रमाजनकत्वेन प्रवृत्तौ निवृत्तौ वा विधिवद्व्यापारितमिति, अपरिज्ञानात्तु प्रवृत्ति-निवृत्तिप्रसङ्गः । अथ स्वरूपार्थानां प्रामाण्ये "ग्रावाणः प्लवन्ते" इत्येवमादीनामपि यथार्थता स्यात्, न; मुख्ये बाधकोपपत्तेः । यत्र हि मुख्ये बाधकं प्रमाणमस्ति तत्रोपचारकल्पना, तदभावे तु प्रामाण्यमेव । न चेश्वरसद्भावप्रतिपादनेषु किञ्चिदस्ति बाधक-मिति स्वरूपे प्रामाण्यमनुपलम्भ्यमित्याममादपि सिद्धप्रामा-ण्यात् तदवगमः । ईश्वरस्य च ज्ञातृत्वेन स्वविषयग्रहणप्रवृ-त्तानां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठायकता यथा रथादीनामुपरचनाकार-ग्रहणप्रवृत्तानां रविनुप्रकाशः । यथा तेषां कर्तृत्वं प्रयत्नं विना नोपधानाकारग्रहणसामर्थ्यं तथेश्वरं विना क्षेत्रविदो न स्वविषयग्रहणसामर्थ्यमित्यस्ति भगवानीश्वरः सर्वविद् ।
[ ] पृ. ९८-९९ (१,२)

अन्वयेन विना तस्माद्व्यतिरेकः कथं भवेत् ।
[ ] पृ. ५७५

अन्वयो न च शब्दस्य प्रमेयेण निरूप्यते ।
व्यापारेण हि सर्वेषामन्वेतृत्वं प्रतीयते ॥
[श्लो० वा० शब्दप० ८५] पृ ५७५ (२)

सपक्षधर्मस्यापि हेतोर्गमकत्वे पक्षत्रयमपि शब्दे नित्यत्वस्य गमकं स्यात् । [ ] पृ. ५६२ (६)

अपरस्मिन् परं युगपद् अयुगपत् चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ।
[वैशेषिकद० २-२-६] पृ. ६६९ (१)

अथ निष्कलो ह्यनन्तो महीता परपदाचाप्तुं ॥ शुभोलक्षणैः ।
॥ वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥
[श्वेताश्व० ३-१९] पृ. ४९

अपि चैकस्य निरंश-प्रत्येकसमवायिता (ता) ।
निरंशत्वेऽप्यपोहेषु दुर्घटोऽपूर्ववः पदः ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० १६३] पृ. २०१ (१०,११)

अपोद्धारपदस्यायं वाक्यादर्थो विवेचितः ।
वाक्यार्थः प्रतिभाख्योऽयं तेनादावुपजन्यते ॥
[ ] पृ. १८८ (६)

अपोहः शब्दार्थ इत्युक्तम् अव्याप्त्यकरणात् । यत्र द्वैराश्यं भ-वति तत्रेतरप्रतिषेधादितरः प्रतीयते, यथा—'गौः' इति पदाद् गौः प्रतीयमानः अगोर्निषिध्यमानः; न पुनः सर्वस्य एतदस्ति, न ह्यसर्वं नाम किञ्चिदस्ति यत् सर्वशब्देन निवर्तेत । अथ मन्यसे एकादि असर्वं तत् सर्वशब्देन निवर्त्यत इति, तन्न; स्वार्थाभिधानदोषप्रस-ङ्गात् । एवं ह्येकादिव्युदासेन प्रवर्तमानः सर्वशब्दोऽप्रतिषे-धदनभ्यतिरिक्तस्याभिधेयस्यानभ्युपगमादनर्थकः स्यात् । अङ्ग्य-न्देन ह्येकदेश उच्यते; एवं सति सर्वे समुदायशब्दा एकदेशप्रति-षेधरूपेण प्रवर्तमानाः समुदायिव्यतिरिक्तस्यान्यस्य समुदायस्या-नभ्युपगमादनर्थकाः प्राप्नुवन्ति । आद्यादिशब्दानां तु समुदाय-विषयत्वादेकादिप्रतिषेधे प्रतिषिध्यमानार्थान्तरसमुदायाभावादनर्थ-कत्वं स्यात् । [अ० २ आ० २ सू० ६७ न्यायवा० पृ० ३३६ पं० १२-२२] पृ. २०० (१,२,३,४,५)

अपोह्यभेदाद् भिन्नार्थाः स्वार्थभेदगतौ जडाः ।
एकत्राभिन्नकार्यत्वाद् विशेषणविशेष्यता ॥
[ ] पृ. १९९ (९,१०,११)

अग्नेर्धूमो न वह्निसंस्थितेर्निगद्यते ।
[ ] पृ. ११४

अप्रत्यक्षोपलम्भस्य नार्थदृष्टिः प्रसिध्यति ।
[ ] पृ ८१

अप्रामाण्यप्रसक्तिश्च प्रभुणो दूरदर्शिनस्यापि ग्रहणप्रसङ्गः ।
[ ] पृ. १४६ (३)

अप्सु गन्धो रसश्चाग्नौ वायौ रूपेण तौ सह ।
क्षितौ तदसम्पर्शिता ते च न चेरस्य प्रमाणता ॥
[श्लो० वा० अभाव० श्लो० ६] पृ० ५८१ (३,४,५)

अभावगम्यरूपे च न विशेषेऽस्ति वस्तुना ।
विशेषिकमपोह्य वस्तु वाच्यं न तेऽस्त्यतः ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ९१] पृ. १९३

अभावोऽपि प्रमाणाभावः 'नास्ति' इत्यर्थस्यासंनिकृष्टस्य ।
[१-१-५ शाबरभा०] पृ. ५८०

अभिघातादिसंयोगनाशप्रत्ययमन्वितम् ।
विना संसर्गितां याति न विनाशो घटादिभिः ॥
[ ] पृ. ३१० (२२,२३,२४)

अभिधानप्रतिपत्तिरर्थान्तरव्यापारोऽस्ति न ।
शब्दे वाचकसामर्थ्यात् तत्रापि प्रत्ययेन वा ॥
[श्लो० वा० अर्था० श्लो० ५] पृ ५७३

अभ्यासात् पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः ।
केवलं कर्म्ये निषिद्धे च प्रवृत्तिप्रतिषेधयः ॥

[ ] पृ. १५१ (१)

अभ्यासात् प्रतिभाहेतुः शब्दः न तु कदाचिदप्रत्यायकः" ।

[ ] पृ. १८२ (४)

अयं चातोहः प्रतिवस्त्वेक, अनेको वेति वक्तव्यम् । यद्येकस्तदनेकयोरन्यतरसम्बन्धी भेदनेनास्य भवेत् । अथानेक नतः विरुद्धधर्माध्यासकारणभेदनिबन्धन एव स्यात् ।

[न्यायवा० पृ० ११० पं० १६-१७] पृ. २०१ (५)

अयमेव भेदो भेदहेतुर्वा, यदुत विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च, न चेत् भेदको विश्वमेकं स्यात् ॥ [ ] पृ. ३

अयमेव हि भेदो भेदहेतुर्वा विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च ।

[ ] पृ. ३२७.

अयं वेदो वा देव भ्रमो भ्रमी निर्णयः ।

अर्थेन घटयत्येनां नहि मुक्त्वार्थरूपताम् ।
तस्मात् प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरूपता ॥

[ ] पृ. ३११ (१)

अर्थोपयोगेऽपि पुनः स्मार्त शब्दानुयोजनम् ।
अक्षधीर्यद्यपेक्षेत सोऽर्थो व्यवहितो भवेत् ॥

[ ] पृ. ५३५ (१)

अवधीनमभिमतेनिर्वाणे न यत्नः ।
सर्वे च निश्चयरूपा (पुन) सर्वार्थवत् ॥

[तत्त्वसं० का० १] पृ. १०१ (१)

'अवयवी अवयवेषु वर्तते' इति समाधानं ...

[ ] पृ. १११

अवयवेषु क्रिया, क्रियातो विभागः, ततः संयोगविनाशः, ततोऽपि द्रव्यविनाशः । [ ] पृ. १२१

अवस्थाभेदनियमः कः परस्परमपि ।

अत्रान्तरे न्यपि चार्थं न परार्थत्वसाधनता ।
स्वस्वार्थेनैव भेदेन निमित्तान्तरसंभवः ॥
[श्लो० वा० शब्दपरि० श्लो० ११०] पृ. ७१८
अतीतानागतप्रतिबिम्ब प्रधानादेव केवलात् ।
कार्यभेदाः प्रवर्तन्ते तद्रूपा एव भावतः ॥
[तत्त्वसं० का० ७] पृ. २८० (११)
अथाश्वं यथा वा विद्युदाऽऽत्मना यथा ।
[तत्त्वसं० का० १०४१] पृ. २०८ (१६)
अर्थे विकल्पयतो गोदर्शनात् न तदा गोशब्दसंयोजना तत्का-
लानुभवात्, पुनरपि तद्रूपानुभवेन निर्विकल्पकगोदर्शन-
सद्भावस्तदा । [ ] पृ. ५०४ (५,६,७)
अर्थस्वार्थतया पुंसि. तदैषा स्याद्विरोधिता ।
अदृष्टापेक्ष्यमे स्वर्ग गमनमिदं भवेत् ॥
[ ] पृ. ११
अशक्त सारेण प्रतिभासमस्य ।
[ ] पृ. ४८६ (११,१४)
असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम् ॥
[सांख्यका० ९] पृ. २८९
असम्भवो विधिः । [हेतु०] पृ. ११७ (८)
असाधनाङ्गवचनमदोषोद्भावनं द्वयोः ।
निग्रहस्थानमन्यद्धि न युक्तमिति नेष्यते ॥
: [ ] पृ. ७६१ (१)
अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामिति प्रत्याय्यलक्षणम् ।
अपूर्वदेवतास्वर्गैः सममा(मा)हुर्गवादिषु ॥
[वाक्यप० द्वि० का० श्लो० १२१] पृ. २१५ (१७)
आइ विभीतिविज्ञानया । [न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६७]
पृ. १०८
आ.धिकृ(पु)रिष ।
[जीतकल्पभाष्य गाथा १९७२] पृ. ७४६ (४,५)
आत्मलाभे हि भावानां कारणापेक्षिता भवेत् ।
लब्धात्मनां स्वकार्येषु प्रवृत्तिः स्वयमेव तु ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ४८] पृ ७
आत्मा वै श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य. ।
[बृहदा० उ० २-४-५] पृ. ७११
आत्मैकत्वज्ञानात् परमात्मनि लय. प्रकाशते इति श्रुते ।
तथाहि–आत्मैव परमार्थसन्, ततोऽन्यस्य भेदे प्रमाणाभावात्,
प्रत्यक्ष हि पदार्थानां सद्भावमादर्शयत्येव न भेदम् इत्यविद्या-
समारोपित एवाय भेद । [ ] पृ १५५
आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत् तथा ।
वितथैः सदृशा सन्तोऽवितथा इव लक्षिता ॥
[गौडपा० का० २ पृ० ७० वैतथ्यप्रक०]
पृ २०३ (१)
आद्ये परोक्षम् । [तत्त्वार्थ १ ११] । ५१४
१०१ पृ० ५०
आद्ये पूर्वविदः । [तत्त्वार्थ० ९-३९] पृ. ७५४ (१)
आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च मोक्षेऽभिव्यज्यते ।
[ ] पृ. १५१
आप्ताभिहितत्वाविशेषाद् विसंवादकत्वाभावादप्रमाणत्वाभावनि-
श्चयनिमित्ताभावादप्रसंगत्वं प्रयोजनवत्त्वम् प्रेक्षापूर्वकारिणः
प्रति । [ ] पृ. १७२ (११)
आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् आनर्थक्यमतदर्थानाम् ।
[जैमि० १-२-१] पृ. ११, ७४४
आगमेन हि यो मोहादज्ञातमपि बाधकम् ।
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत् ॥
[तत्त्वसं० का० २८७२] पृ. ८
आ सर्वज्ञत्वादेषा बुद्धिः । [ ] पृ. १०० (५)
आस्रवनिरोधः संवरः । [तत्त्वार्थ० ९-१] पृ. ७१५
आहुर्विधातृ प्रत्यक्षं न निषेद्धृ विपश्चितः ।
नैकत्वे आगमस्तेन प्रत्यक्षेण विरुध्यते ॥
[ ] पृ. २७३ (११)

इ

इतरेतरभेदोऽस्य बीजं चेत् यत्र एव नः ॥
[तत्त्वसं० का० १०५] पृ. १८१ (१९,२०)
इत्ययुक्तोऽपोहः विकल्पानुपपत्तेः । तथाहि—योऽयमगो-
ऽपोहो गवि स किं गोव्यतिरिक्तः आहोस्विदव्यतिरिक्तः ? । यदि
व्यतिरिक्तः स किमाश्रितः अथानाश्रितः ? । यद्याश्रितस्तदाऽऽ-
श्रितत्वात् गुणः प्राप्तः, ततश्च गोशब्देन गुणोऽभिधीयते 'न
गौः' इति–'गौस्तिष्ठति' 'गौर्गच्छति' इति न सामानाधिकरण्यं
प्राप्नोतीति । अथानाश्रितस्तदा केनार्थेन 'गोरगोपोहः' इति षष्ठी
स्यात् । 'अथाव्यतिरिक्तस्तदा गौरेवासाविति न किंचित् कृतं
भवति' । पृ. २०१ (१,२,३,४)
[न्यायवा० पृ. ३३, पं० ८-१४]
इत्यादिना प्रभेदेन विभिन्नार्थविकल्पनाः ।
व्याहताः प्रकल्प्यन्ते तथिका (काः) श्रुनयस्तथा ॥
[तत्त्वसं० का० १०२३] पृ २०८ (२७), २०९ (१)
'इदं तावत् प्रष्टव्यो भवति भवान्–किमपोहो वाच्यः अवा-
च्य इति । वाच्यत्वे विधिरूपेण वाच्यः स्यात् अन्य-
व्यावृत्त्या वा । तत्र यदि विधिरूपेण तदा नैकान्तिकः
शब्दार्थः 'अन्यापोह- शब्दार्थः' इति । अथान्यव्यावृत्त्येति पक्ष-
स्तदा तस्याप्यन्यव्यवच्छेदरूपापरेणान्यव्यवच्छेदरूपेणाभिधानम्
तस्याप्यपरेणेत्यनवस्था स्यात् । अथावाच्यस्तदा 'अन्यशब्दार्था-
पोहं शब्दः करोति' इति व्याहन्येत ।
[न्यायवा० पृ० ३३० पं० १८-२१] पृ. २०१ (७)
इदानींतनमस्तित्वं नहि पूर्वधिया गतम् ।
[श्लो० वा० सू. ४ श्लो० २३४] पृ. ५६,३३३
इन्द्रियार्थसंप्रयोगे बुद्धिजन्म प्रत्यक्षम् ।
[जैमि० अ० १-१-४]
इन्द्रियाणि अतीन्द्रियाणि सन्निकर्ष......
[

एकाश्रित्वस्याप्रदेशत्वहेतुः सहता ।
[प्रशस्त० भा० पृ० ११३ पं० ३] पृ. ५११
एकेन तु प्रमाणेन सर्वज्ञो येन कल्प्यते ।
नूनं स चक्षुषा सर्वान् रसादीन् (सर्वान् रसादीन्) प्रतिपद्यते ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११२] पृ. ४३
एको भावस्तत्त्वतो येन दृष्टः सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः ।
सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टा एको भावस्तत्त्वतस्तेन दृष्टः ॥
[ ] पृ. ६१ (७)
एकेको वि य सयविहो ।
[आवश्यकनि० उपक्रमाधिनि० गा० ६६] पृ. ७५७ (४)
एगगुणकालए दुगुणकालए–।
[भगवतीसू० शत० ५ उ० ७ सू० २१७] पृ. ६३५ (४)
एगदवियम्मि—। [प्र० का० गा० ३१] पृ. ६१८ (२)
एगमेगस्स जीवस्स पएसे अणंतेहिं णाणावरणिज्जपोग्गलेहिं आवेढियपरिवेढिए। [ ] पृ. ४५५–४५६ (२)
एगे आया । [स्थाना० प्रथमस्था० सू० १]
पृ. ६६,४५१ (२)
एगे भवं दुवे भवं । [भगवतीसूत्र शतक १८ उ० १०]
पृ. ६१५ (१)

एते च त्रयो भङ्गा गुणप्रधानभावेन सकलधर्मात्मकैक-वस्तुप्रतिपादकाः स्वयं तथाभूताः सन्तो निरवयवप्रतिपत्तिद्वारेण सकलादेशाः, वक्ष्यमाणास्तु चत्वारः सावयवप्रतिपत्तिद्वारेणानेकधर्मात्मकं वस्तु प्रतिपादयन्तोऽपि विकलादेशाः ।
[ ] पृ. ४४५ (११,१२)
एवं त्रिचतुरज्ञानजन्मनो नाधिका मतिः ।
प्रार्थ्यते तावतैवैकं स्वतः प्रामाण्यमश्नुते ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६१] पृ. ८
एवं धर्मैर्विना धर्मिणामुद्देशः कृतः ।
[प्रशस्तपादभा० पृ० २१ पं० १] पृ. ६६१ (२)
एवं परीक्षकज्ञानत्रितयं नातिवर्तते ।
ततश्चाजातबाधेन नाशङ्क्यं बाधकं पुनः ॥
[तत्त्वसं० का० २८७१] पृ. १६
एवं परोक्षसम्बन्धप्रत्यायनाने कृते सति ।
नियमो नाम सम्बन्धः स्वमतेनोच्यतेऽधुना ॥
[ ] पृ. २०
एवं यत् पक्षधर्मत्वं केचिद् हेतोरिहेष्यते ।
तत् पूर्वोक्तान्यधर्मत्वदर्शनाद् व्यभिचार्यते ॥
[ ] पृ. ५७०
एष प्रत्यक्षधर्मश्च वर्तमानार्थतैव च ॥
[श्लो० वा० निरा० श्लो० ११४] पृ. ५१७ (१०)
एषामेन्द्रियकत्वेऽपि न ताद्रूप्येण धर्मता ।
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११] पृ. ५०५ (१०)

औ

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः ।
[मीमां० १–१–५ पृ० ५] पृ. २८९

क

कइविहे णं भंते ! आया पण्णत्ते ?
गोयमा ! अट्ठविहे । तं जहा–दविए आया ।
[भगवतीसू० शत० १२ उ० १०] पृ. ६३१ (१)
कथमद् संवृतिसत्त्वं सांवृतिकस्याकारः ।
[ ] पृ. २७८
कम्मं जोगनिमित्तं । [प्र० का० गा० ११] पृ. ७११ (८)
कर्तुः कार्योपादानोपकरणप्रयोजनसम्प्रदानपरिज्ञानात् ।
[ ] पृ. १०१
कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुर्धर्मः, अधर्मस्तु अप्रियप्रत्यवायहेतुः ।
[प्रशस्तपा० भा० पृ० २७२ पं० ८ तथा पृ० २८० पं० ४]
पृ. ६८५
कर्तृफलदायी आत्मगुण आत्म-मनःसंयोगजः स्वकार्यविरोधी धर्माधर्मरूपतया भेदवान् अप्रत्यक्षो गुणः ।
[ ] पृ. ६८५ (६)
कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम् । [न्यायबिं० १–४] पृ. ५०८ (१)
कल्पनीयास्तु सर्वज्ञा भवेयुर्बहवस्तव ।
य एव स्यादसर्वज्ञः स सर्वज्ञं न बुध्यते ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११५] पृ. ५२
कस्मात् शब्दादिमत्त्वेऽपि नोक्तं यस्मात् तदात्मकम् ।
शाब्दत्वमस्य कस्मात् चेत् स्वभावादिति गम्यताम् ॥
[श्लो० वा० आकृ० श्लो० ४७] पृ. १४० (६)
कस्यचित्तु यदीष्येत स्वत एव प्रमाणता ।
प्रथमस्य तथाभावे प्रद्वेषः केन हेतुना ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ७६] पृ. ६
कः कण्टकानां प्रकरोति तैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामचारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ॥
[ ] पृ. ७१२ (१)
कः शोभेत वरेषेत यदि न स्याद्गृहीतता ।
अशा(क्ष)ता स यतः सर्वं क्षणिकेष्वपि तादृशम् ॥
[हे० बिं० पृ० १२६] पृ. २२६ (१७)
कारणमात्रस्थापकम् । [सप्तदश० ११] पृ. २८४
कारणसंयोगिना कार्यमवश्यं संयुज्यते ।
[ ] पृ. १४६

कारुण्याद् भगवतः प्रवृत्तिः । नन्वेवं केवलः सुखरूपः प्राणिसर्गोऽस्तु, नैवम्; निरपेक्षस्य कर्तुरयं दोषः सापेक्षत्वे तु कथमेकरूपः सर्गः ? यस्य यथाविधः कर्माशयः पुण्यरूपोऽपुण्यरूपो वा तस्य तथाविधफलोपभोगाय तत्साधनान् शरीरादीन् सृजति-धाराऽन्तरापेक्षः सृजति । [ ] पृ. ९९
कार्यं धूमो हुतभुजः कार्यं धर्मानुवृत्तितः ।
[ ] पृ. ५७ (४) ५८
कार्यं धूमो हुतभुजः, कार्यधर्मानुवृत्तितः ।
स तदभावेऽपि भवन् कार्यमेव न स्यात् ॥
[ ] पृ. ६०

कार्यं धूमो हुतभुजः कार्यधर्मानुवृत्तितः ।
सम्भवंस्तदभावेऽपि हेतुमत्तां विलङ्घयेत् ॥
[ ] पृ. ३२२ (१,२,३), ५६९ (३)

कार्यकारणभावादिसम्बन्धानां द्वयी गतिः ।
नियमानियमाभ्यां स्यादनियमादतत्त्वता ॥
[ ] पृ. २१

कार्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमोऽदर्शनान्न न दर्शनात् ॥
[ ] पृ. ७६, ५५८ (१४)

कार्यत्वान्यत्वलेशेन यत् साध्यासिद्धिदर्शनं तत् कार्यसमम् ।
[ ] पृ. ११५ (६)

कार्यस्यैवमयोगाच्च किं कुर्वत् कारणं भवेत् ।
ततः कारणभावोऽपि बीजादेर्नावकल्पते ॥
[तत्त्वसं० का० ११] पृ. २८३ (१४)

कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥
[महाभा० आदिप० अ० १ श्लो० २७३,२७५]
पृ. ७११ (४,५)

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे । [पा० २-३-५] पृ. ६०५ (२)

कालो य होइ सुहुमो । [ ] पृ. ६५५

किं स्याद् सा चित्रतैकस्यां न स्यात् तस्यां मतावपि ।
[ ] पृ. २४१ (१४)

किन्तु [illegible] ।
[illegible] ॥
[तत्त्वसं० का० ६३१] पृ. १८६ (१)

किन्तु [illegible] ।
[illegible] ॥
[तत्त्वसं० का० ११६०] पृ. २२७ (४)

[illegible]
[illegible] । [ ] पृ. ४०३ (९,१०)

[illegible] ।
[illegible] ॥
[तत्त्वसं० का० ११६०] पृ. ४११ (१०-१८)

[illegible]
[illegible] । [ ] पृ. [illegible]

[illegible] ।
[[illegible] ० ११३]
पृ. ६०८ (६,७)

[illegible] । [ ] पृ. ६६०

[illegible] । [ ] पृ. ६०० (४)

[illegible]
पृ. [illegible]

को हि भावधर्मं हेतुमिच्छन् भावं नेच्छेत्।
[ ] पृ. ४८० (१)

क्रमेण युगपच्चैव यतस्तेऽर्थक्रियाकृतः ।
न भवन्ति ततस्तेषां व्यर्थः क्षणिकताश्रमः ॥
[ ] पृ. ३३६

क्रियाफलत्वादपोहस्य विषयो वक्तव्यः । तत्र 'गौर्न भवति' इत्ययमपोहः किं गोविषयः अथागोविषयः ? यदि गोविषयः कथं गोर्गोत्वाभावः ? अथागोविषयः कथमन्यविषयात् अन्यत्र प्रतिपत्तिः, नहि खदिरे छिद्यमाने पलाशे छिदा भवति । अथागोर्गवि प्रतिषेधो 'गौरगौर्न भवति' इति, केनचिद् [illegible] यत् प्रतिषिध्यत इति । [न्यायवा० पृ० ३३९ पं० १८-३३० पं० ४] पृ. ३०० (११,१२)

क्रियावद् गुणवत् समवायिकारणं द्रव्यम् ।
[वैशेषिकसू० १-१-१५] पृ. ६३३ (३)

क्रीडा हि रतिमविन्दताम्, न च रत्यर्थी भगवा[illegible] वात् । [न्यायवा० पृ० ४६१] पृ. ११[illegible]

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।
[योगद० पा० १ सू० २४] पृ. ११,१११

क्लेशेन पक्षधर्मत्वं यस्यापि प्रकल्प्यते ।
न सम्बध्येत तस्येतत्तदात्वेन सह लक्षणम् ॥
[ ] पृ. ५१०

क्वचित् तदपरिज्ञानं सदृशापरसम्भवात् ।
भ्रान्तेरपश्यत (?) भेदं मायागोलकभेदवत् ॥
[ ] पृ. २१८ (१)

क वा श्रुतिः । [तत्त्वसं० का० ६०७] पृ. ९६५

क्षणिकाः सर्वसंस्काराः । [ ] पृ. [illegible]

क्षणिकाः सर्वसंस्काराः [illegible] । [illegible]] पृ. [illegible]

[illegible] । [ ] पृ. [illegible]

क्षणिका हि सा न कालान्तरमवतिष्ठते ।
[ ] पृ. १५

क्षणिका हि सा न कालान्तरमास्ते । [ ] पृ. ५८ (१)

[illegible] ।
[illegible] ॥
[[illegible]] पृ. [illegible]

[illegible] ॥
[[illegible]] पृ. १६६ (११) [illegible]

ग

[illegible] । [ ] पृ. [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]
[illegible]

जातिभेदश्च तेनैव संस्कारो व्यवतिष्ठते ।
अन्यार्थप्रेरितो वायुर्यथाऽन्यं न करोति वः ॥
[श्लो॰ वा॰ सू॰ ६ श्लो॰ ८] पृ. ३६ (१)

जातिः पदार्थः । [वाजप्यायनः] पृ. १७९ (१,२)

जातेऽपि यदि विज्ञाने तावन्नार्थोऽवधार्यते ।
[ ] पृ. ११ (२)

जातेऽपि यदि विज्ञाने तावन्नार्थोऽवधार्यते ।
यावत् कारणशुद्धत्वं न प्रमाणान्तराद्गतम् ॥
[श्लो॰ वा॰ सू॰ २ श्लो॰ ४९] पृ. ५

जारिसयं गुरुलिंगं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं ।
[धर्मसङ्ग्रहणी गा॰ ११०८,११११] पृ. ७५० (४)

जाव अणेगभूयमाबभविए भवं ।
[भगवतीसूत्र श॰ १८ उ॰ १०] पृ. ६२५

जिज्ञासितविशेषो धर्मी पक्षः । [न्यायबि॰ ३,८] ५९२ (१)

जिणा बारसरूवा उ थेरा चोद्दसरूविणो ।
अज्जाणं पन्नवीसं तु अओ उड्ढमुवग्गहो ॥
[ओघनिर्युक्ति गा॰ ६७१]
[पञ्च॰ गा॰ ७७१] पृ. ७५१ (१,२)

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरमोक्षास्तत्त्वम् ।
[तत्त्वार्थसू॰ १-४] पृ. ६५१

[illegible] न परमतः अणो सदा प्रबुद्धो [illegible] अन्यथा [illegible] नावि- [illegible] । [illegible] दर्शने [illegible] मुच्यते च । [illegible] परमागमः, [illegible] अनेकदर्शनेन च [illegible] [illegible] । [illegible] कथञ्चित् [illegible] [illegible]] पृ. २०८ (२१,२२,२३)

[illegible] । [[illegible] गा॰ १०] पृ. ७७६

[illegible] । [[illegible] गा॰ २०९]
पृ. ७७७ (२)

[illegible]

[illegible]

ज्ञानमप्रतिघं यस्य ऐश्वर्यं च जगत्पतेः ।
वैराग्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥
[ ] पृ. ११

ज्ञानमात्रार्थकरणेऽप्ययोग्यं [illegible] ।
तद्योग्यतयाऽरूपं तदा वस्तु (?) [illegible] ॥
[ ] पृ. २८४ (८,९,१०)

ज्ञानवान् मृग्यते कश्चित् तदुक्तप्रतिपत्तये ।
अज्ञोपदेशकरणे विप्रलम्भनशङ्किभिः ॥
[ ] पृ. ११८

ज्ञानाद्व्यतिरिक्तं च कथमर्थान्तरं भवेत् ।
[ ] पृ. १८४ (९)

ज्ञे(अज्ञे)यं कल्पितं कृत्वा तद्व्यवच्छेदेन ज्ञेयेऽनुमानम् ।
[हेतु॰] पृ. ११८ (१०,११)

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञः स्याद् असति प्रतिबन्धरि ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. ११

ण

णणिगरस वा वि । [दशवैकालिक गा॰ २७] पृ. [illegible]

णणिगरस वा वि मुण्डस्स ।
[दशवैकालिक गा॰ २७] पृ. [illegible]

णत्थि [illegible] ।
[illegible] ॥
[आवश्यकनि॰ [illegible] गा॰ ३८] पृ. [illegible] (१)

[illegible] ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. [illegible] (२)

णो कप्पइ [illegible] । [[illegible] उ॰ १ सू॰ १] पृ. [illegible]

त

[illegible] ।
[आवश्यकनि॰ [illegible] गा॰ [illegible]] पृ. [illegible]

[illegible]

[illegible]

तत्स्वरूपं प्रत्यक्षोऽनुमानतो वा ।
[ ] पृ. १४ (७)
तत् परिच्छिन्दन्ति शब्दद् व्यवस्थिन्ति प्रवर्तयन्त्यर्थं च गृह्णन्ति । [ ] पृ. १८५ (११)
तत्पूर्वकमनुमानम् । [ ] पृ. ५६०
तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानम् । [ ] पृ. ५६०
तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतोदृष्टं च ।
[न्यायद० १-१-५] पृ. ५५१ (१०)
तत् प्रमाणे । [तत्त्वार्थ० १,१०] पृ. ५५५
तत्र ज्ञानान्तरोत्पाद. प्रतीक्ष्य कारणान्तरात् ।
यावद्धि न परिच्छिन्ना शुद्धिस्तावदसत्समा ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५०] पृ. ५
तत्र प्रत्यक्षतो ज्ञानात् तादात्म्यवत्किता ।
यद्येतुमितम् पूर्वं ज्ञानात् तच्छक्तियोगिता ॥
[श्लो० वा० अर्थाप० श्लो० ३] पृ. ५७२ (२)

तत्र महद् द्विविधम्-नित्यम् अनित्यं च । नित्यम् आकाश-काल-दिगात्मसु परममहत्त्वम्, अनित्यम् त्र्यणुकादिषु द्रव्येषु । अणु अपि नित्यानित्यभेदात् द्विविधम्-परमाणु-मनस्सु पारि-माण्डल्यलक्षणं नित्यम्, अनित्यम् द्व्यणुक एव । कुवला-ऽऽमलक-बिल्वादिषु तु महत्स्वपि तत्प्रकर्षाभावमपेक्ष्य भाक्तो-ऽणुत्वव्यवहारः । तथ हि-कार्ये बिल्वे महद् परिमाणम् तारतं न आमलके कार्ये च तत् तत्र न तारतं पुनरत इति ।

ननु महद्दीर्घयोस्त्र्यणुकादिषु वर्तमानयोः द्व्यणुके च अणुत्वह्रस्वत्वयोः को विशेषः । महत्सु 'दीर्घमानीयताम्' दीर्घेषु 'महद् आनीयताम्' इति व्यवहारभेददर्शनादस्ति तयोः परस्परतो भेदः । अणुत्वह्रस्वत्वयोस्तु विशेषो योगिनां तद्दर्शि-नामध्यक्ष एव । [ ] पृ. ६७५ (१)
तथर्जुमुख्यनीतिः स्यात् शुद्धपर्यायसंश्रिता (ता) ।
नश्वरस्यैव भावस्य भावा(त्)स्थितिवियोगतः ॥
[ ] पृ. ३११ (७,८,९)
तत्र शब्दान्तरोद्दिष्टे सामान्ये परिकल्पिते ।
तथैवावस्तुरूपत्वाच्छब्दभेदो न कल्प्यते ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० १०४] पृ. ११५ (१६)
ईश्वरात्मनि सुखादीनां यथा स्थिति. [illegible] म् ।
तथा सर्वत्र संयोग्य [illegible] ॥
[[illegible]) [illegible] १)
तथापवाद्धि [illegible]
वेदे [illegible]
[illegible] (५)
[illegible] (१)
[illegible] ११८, ३१४

तथा स्वस्वभावोऽसौ न स्वस्वभावान्तरैः ।
तत्स्वरूपयभिन्नयोः कार्यकारणयोः गमः ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८२] पृ. ११
तदात्म्यवर्णोदयस्तो नन्वं करिष्यती ।
अन्येनुमन्तरिते योगतोऽन्यो वशी यथेव हि ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८१] पृ. ११
तदाश्रितस्य तस्यापि वस्तुनः क्षणिकत्वः ।
कृते गमभिदस्तु वैशेषेण भिन्नताम् ॥
[ ] पृ. ३११ (१५)
तदादि-पदवी शुद्धे योदाहीनोऽसाक्षिते ।
शुद्धे शब्दी वा नेति नश्यतेऽस्यानिवेदनम् ॥
[तत्त्वसं० का० ११४६] पृ. ३३४ (१४,१५,१६)
तदनन्तरं तदीक्षितविशेषनिर्णयोऽवायः ।
[ ] पृ. ५५१ (७)
तदा प्रार्थने चक्षुषो न दोषः ।
[ ] पृ. ४११
तद् इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।
[तत्त्वार्थ० अ० १ सू० १४] पृ. ८०
तदेवमपूर्व (मपेक्षमत्वं) प्रत्यक्ष निर्विकारमविषया ।
तत्रावस्थितवत्वं भेदत्वं विवर्तते ॥
[ ] पृ. २८१ (१०,११,११)
तद्गुणैरपकृष्टानां शब्दे संक्रान्त्यसम्भवात् ।
यद्वा वाक्स्वभावेन न दुष्टोऽपि निराश्रयाः ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६२] पृ. ११
तद्रूपारेव रूपेषु संनिधानमभ्यभाविनः ।
स्वरूपाद्भिलाषेण व्यवहारः प्रवर्तते ॥
[ ] पृ. १५ (११) ४१८ (६)
तद्रूपारोपमन्यान्यव्यावृत्त्याऽधिगतैः पुनः ।
शब्दार्थोऽर्थ. स एवेति वचनेन विरुध्यते ॥
[ ] पृ. १८१ (११)
तद्वतो न वाचकः शब्दः, अस्वतन्त्रत्वात् ।
[ ] पृ. ११७ (१२)
तन्मात्राकाङ्क्षणाद् भेदः स्वसामान्येन नोज्झितः ।
नोपात्तः संशयोत्पत्तेः सैव चेत्पर्यता तयोः ॥
[ ] पृ. ११६ (११,११,१४,१५,१६)
तपसा निर्जरा च । [तत्त्वार्थ० ९-३] पृ. ७१५,७१७
तमोनिरोधे वीक्षन्ते तमसाऽनावृतं(तं) परम् ।
पदार्थिकम्-। [ ] पृ. ५४४ (१)
तस्मिन्-त्रिविधप्रैरूप्यम् । [प्रमाणवा० ५] पृ. ५७२ (२)
तस्मात् तद् रूपपेक्षत्वं प्रतिबिम्बादि योजनम् ।
तेषु तद् व्यभिचारित्वं दुर्निवारमतः स्थितम् ॥
[तत्त्वसं० का० १०५४] पृ. ३१६ (२२)
तस्मात् तन्मात्रसम्बन्धः स्वभावो भवमेव वा ।
निवर्तयेद् कार्यं वा कार्यमव्यभिचारतः ॥
[ ] पृ. ५५६ (७)

प्रकाशत एव 'वस्त्रम्' इति प्रत्ययोत्पत्तेः अभ्यासत एव गुण-गुणिनोर्भेदः सिद्धः । तथा, अनुमानतोऽपि तयोर्भेदः । तथाहि—यद् यद्रूपत्वेन प्रतीयते तत् ततो भिन्नम्, यथा देवदत्तात् अश्वः, गुणिव्यवच्छेदत्वेन प्रतीयन्ते च नीलोत्पलस्य रूपादय इति । तथा, पृथिव्यप्-तेजो-वायवो द्रव्याणि रूप-रस-गन्ध-स्पर्शेभ्यो भिन्नानि, एकवचन-बहुवचनविषयत्वात्, यथा 'चन्द्रः' 'नक्षत्राणि' इति, तथा च 'पृथिवी' इति एकवचनम् 'रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः' बहुवचनमुपलभ्यते इति तयोर्भेदः । अवयवाऽवयविनोरप्यनुमानतः सिद्धो भेदः । तथाहि—विवादाधिकरणेभ्यस्तन्तुभ्यो भिन्नः पटः भिन्नकर्तृकत्वात् घटादिवत्, भिन्नशक्तिकत्वाद् वा विषागदवत्, पूर्वोत्तरकालभावित्वाद् वा पितापुत्रवत्, विभिन्नपरिमाणत्वाद् वा कुवल-बिल्ववत् इति । विरुद्धधर्माध्यासनिबन्धनो ह्यन्यत्रापि भावानां भेदः, स च अत्रास्ति इति कथं न भेदः ? यदि चावयवी अवयवेभ्यो भिन्नो न भवेत् स्थूलप्रतिभासो न स्यात्, परमाणूनां सूक्ष्मत्वात् । न चान्यादृग्भूतः प्रतिभासः अन्यादृगर्थव्यवस्थापकः अतिप्रसङ्गात् । न च स्थूलाभावे 'परमाणुः' इति व्यपदेशोऽपि सम्भवी, स्थूलापेक्षित्वाद् अणुत्वस्य । [ ]

पृ. ६५८(६), ६५९ (१,२,३,४,५,६,७,८.)

ननु ज्ञानफलाः शब्दाः । [ ]

पृ. २०४ (१८)

ननु ज्ञानफलाः शब्दा न चैकस्य फलद्वयम् ।
अपवाद-विधिज्ञाने फलमेकस्य वः कथम् ॥

[प्रमाणवार्त० परि० ६ श्लो० १८] पृ. १८६ (४,५)

ननु भावाद्भिन्नत्वात् सम्प्रयोगोऽस्ति तेन च ।
न प्रत्यक्षमभेदोऽस्ति रूपादिविदिहापि च. ॥

[श्लो० वा० अभाव० १९] पृ. ५८१ (११)

न चैवमिति निर्दिष्टे निषेधस्य निषेधनम् ।
एवमित्यनिषेध्यं तु तद्गतैव स्थितिः ॥

[ ] पृ. ३३३

नाप्यन्यापोहकृच्छब्दो युष्मत्पक्षेऽनुवर्णितः ।
निषेधमात्रं नैवेह प्रतिभासे (ऽव) गम्यते ॥

[तत्त्वसं० का० १०] पृ. १८५ (१४,१५,१६)

न प्रत्यक्षपरोक्षाभ्यां मेयस्यान्यस्य सम्भवः ।
तस्मात् प्रमेयद्वित्वेन प्रमाणद्वित्वमिष्यते ॥

[ ] पृ. ५७४

न प्रत्यात्मवेदनीयस्य सुखस्य प्रतीतेः प्रत्याख्यानम् ।

[ ] पृ. ३५३

न याति न च तत्रासीदस्ति पश्चान्न चांशवत् ।
जहाति पूर्वं नाधारमहो व्यसनसन्ततिः ॥

[ ] पृ. ६६२(१)

न रागान् प्रत्ययं यथा हते गतोऽपि तत्र ... ।
... ॥

[...] पृ. ५५०

न रेखागवयादयः गवयत्वेन गवयादीनां गमकाः, एवं रेखागवयादयोऽपि न गवयत्वेन सत्यगवयादीनाम्; अपि तु सत्यत्वात् एवंरूपा गवयादयः सत्याः, वर्णप्रतिपत्त्युपाया अपि रेखाकादयः पुरुषसमयात् वर्णानां स्मारकाः न तु तेषां वर्णत्वेन वर्णप्रतिपादकत्वम्, रेखादिरूपेण च पश्चाद् वर्णानुभवमन्तरा पुनरुपलभ्यमानाः समयं स्मारयन्ति समयमहत्त्वात्, यथैव श्रूयमाणां बालादिषु प्रवृत्तिः । [ ]

पृ. २७३ (१८,१९,२०)

नर्ते तदागमात् सिध्येद् न च तेनागमो विना ।

[श्लोक० वा० सू० २ श्लो० १४२] पृ. ५१

न वाच्यं वाचकं वास्ति परमार्थेन किञ्चन ।
व्यवहारेषु भावेषु व्यवहारविशेषणः ॥

[तत्त्वसं० का० १०५०] पृ. २१६ (९,१०)

न विकल्पानुबद्धस्य स्पष्टार्थप्रतिभासिता ।
स्वप्नेऽपि स्मर्यते स्मार्ते न च तत् तादृगर्थवत् ॥

[ ] पृ. ५०२ (१४)

न वै निर्विशेषं ज्ञानम् । [ ]

पृ. ४०० (१०), ५६० (४)

न वै द्वितो भवेत् । [ ]

पृ. ७११ (१)

न व्यवसायिनि तेऽदर्श भवेत्प्रत्युपलब्धे ।
व्यवसायित्वतोऽथवेद् भेदो भेदः कथं भवेत् ॥

[ ] पृ. ७१० (१)

न शक्यं वेदितुं लोके बुद्धेः तद्रूपत्वात् वा ।
तदभावेऽपि तद्भावात् यदि सन्दिग्धदृष्टिता ॥

[श्लो० वा० सम० श्लो० ४] पृ. ६६५

न स त्रिविधादेतोस्त्यर्थान्तरसिद्धेव सिद्ध उच्यते ।

[ ] पृ. ५५८ (६)

न स्वरूपानुपलम्भात् सर्वत्रास्य गन्तुम् ।
शब्दस्य तावत्वात् ... तद् वाहेत् ॥

[...] पृ. २० (११)

न सर्वलोकसाक्षिकं सुखं प्रत्याख्यातुं शक्यम् ।

[ ] पृ. १०१ (४)

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥

[वाक्यप० श्लो० १२४ प्रथम०] पृ. ३८० (९,१०)

न हि तत् ... ।
... ।

पृ. १११ (११)

नहि तत् ... ।
... ॥

[श्लो० वा० सू० ४ श्लो० ५५] पृ. १०

नाऽसत्पक्षस्वभावम् । [ ]

न हि भिन्नावभासित्वेऽप्यर्थान्तरमेव रूपं नीलस्यानुभवात् ।
[ ] पृ. ३६४
न हि स्मरणतो यत् प्राक् तत् प्रत्यक्षमितीदृशम् ॥
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३४] पृ. ३१९
न हेतुरस्तीति वदन् सहेतुकं ननु प्रतिज्ञां स्वयमेव बाधते ।
अथापि हेतुप्रणयालसो भवेत् प्रतिज्ञया केवलयाऽस्य किं भवेत् ॥
[ ] पृ. ७१३-१४
नह्यप्रत्यक्षे कार्ये कारणभावगतिः ।
[ ] पृ. १४
नह्यवश्यं कारणानि फलवन्ति । [ ] पृ. ३४६
न ह्यस्य इन्द्रियदेतद् मम गौरं रूपं सोऽहमिति भवति प्रत्ययः, केवलं मनुष्योऽयं कुलैवं निर्दिशति ।
[न्यायवा० पृ० ३४१ पं० २१] पृ. ८०
नह्याभ्यामर्थं परिच्छिद्य प्रवर्तमानोऽर्थक्रियायां विसंवाद्यते ।
[ ] पृ. ४६८
न ह्येकं किञ्चिज्जनकम्, सामग्री वै जनिका ।
[ ] पृ. १२
नाकारणं विषयः । [ ] पृ. ६५८
नाक्रमात् क्रमिणो भावः ।
[ ] पृ. १८४ (१५)
नाक्रमात् क्रमिणो भावो नाप्यपेक्षा विशेषिणः ।
क्रमाद् भवन्ती धीर्यस्मात् क्रमं तस्यापि शंसति ॥
[ ] पृ. १३१ (१२,२१)
नागृहीतविशेषणा विशेष्ये बुद्धिः ।
[ ] पृ. ८४,५७४ (७), ६११,७२४,
नातीन्द्रियार्थप्रतिषेधो विशेषस्य कस्यचित् साधनेन [illegible] [illegible] [illegible] विशेषसाधनस्य [illegible] [illegible] प्रत्यक्षः । [illegible] हेतुं दर्शयति 'ओम्' [illegible] । अथ न दर्शयति प्रमाणा[illegible] [illegible], ननु [illegible] ।
[ ] पृ. ९८
[illegible] भवत्वेति हेतो न वचन ।
[तत्त्वसं० का० १०८८] पृ. ११० (२०)
[illegible]
[illegible]
[श्लोकवा० [illegible] श्लो० ८५] पृ. ०१२ (२)
[illegible] ॥
[श्लो० वा० [illegible] श्लो० ८०] पृ. १०१ (११)
[illegible]
[ ] पृ. [illegible]
[illegible]
[illegible]
[ ] पृ. ०६१ (०,८,९)

नाप्यत्यन्तमभावानामभावाभावर्जनात् ।
व्यक्तोऽपोहान्तरेऽपोहस्तस्मात् सामान्यवस्तुनः ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ९५] पृ. १६४
नाभावोऽपोह्यते तेन नाभावो भाव इत्यम् ।
भावस्तु न तदात्मेति तत्स्यैवमपोह्यता ॥
[तत्त्वसं० का० १०८१] पृ. २१४
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।
[ ] पृ. १५०
नामूर्तं मूर्ततामेति मूर्तं नायात्यमूर्तताम् ।
द्रव्यं कालत्रयेऽपीत्थं व्ययते नात्मरूपतः ॥
[ ] पृ. ४५१ (१)
नार्थशब्दविशेषस्य वाच्यवाचकतेष्यते ।
तस्य पूर्वमदृष्टत्वात् सामान्यं तूपदिश्यते ॥
[ ] पृ. १६५ (११,१४)
नावश्यं कारणानि तद्वन्ति भवन्ति ।
[ ] पृ. ५६१
नासिद्धे भावधर्मोऽस्ति ।
[ ] पृ. ४८० (१), ५६१ (१)
नासौ न पचतीत्युक्ते गम्यते पचतीति हि ।
औदासीन्यादियोगश्च तृतीये नभि गम्यते ॥
[तत्त्वसं० का० ११५७] पृ. २११
नास्तिता पयसो दध्नि प्रध्वंसाभावलक्षणम् ।
गवि योऽश्वाद्यभावस्तु सोऽन्योन्याभाव उच्यते ॥
[श्लो० वा० अभाव० श्लो० ३] १८१ (११), ५६१
नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् ।
अपेक्षातो हि भावानां कादाचित्कत्वसम्भवः ॥
[ ] पृ. ६६, ७४
नित्य-नैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवायजिहासया ।
मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्य-निषिद्धयोः ॥
[ ] पृ. १६१
नित्य-नैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् ।
ज्ञानं च विमलीकुर्वन्नभ्यासेन तु पाचयेत् ॥
[ ] पृ. १६०
नित्यमेकमनेकस्थानि [illegible] ।
[ ] पृ. ७११
[illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] — '[illegible]' [illegible] '[illegible]' [illegible] [illegible] ।
[ ] पृ. १००
'[illegible]' [illegible] [illegible] ।
[ ] पृ. २१०
[illegible] ।
[ ] पृ. ७१८

निरवयवेन स्वभावेनानुगतस्वभावानां प्रतिनियमेन कथं सर्वैकाकारत्वमिति सिद्धः प्रतिपत्त्यैकान्त्यः ।
[ ] पृ. ४६१
निराकारा नो बुद्धिः । [ ] पृ. ४६१
निराकारो बोधोऽर्थसदृशात्मनो न संभवति बाह्यार्थे प्रमाणम् ।
[ ] पृ. ४६९
निर्गुणा गुणाः । [ ] पृ. ६७६ (४)
निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत् ॥
[श्लो० वा० आकृति० श्लो० १०] पृ. ४०७
यत्र निश्चीयते रूपं तत् तेषां विषयः कथम् ॥
[ ] पृ. १८२ (२)
निश्चीयमानानिश्चीयमानयोर्भेदाभिधायके वाक्यं प्रयुज्यते ।
[ ] पृ. १८६ (१,१)
निषेधमात्रं नैवेह शाब्दे ज्ञानेऽवभासते ।
[तत्त्वसं० का० १०११] पृ. २०३ (११)
निष्पत्तेरपराधीनमपि कार्यं स्वहेतुना ।
सम्बध्यते कल्पनया किमकार्यं कथंचन ॥
[ ] पृ. ६३
निःसामान्यानि सामान्यानि ।
[ ] पृ. २२२ (१), ५६६
नीलोत्पलादिशब्दा अर्थान्तरनिवृत्तिविशिष्टानर्थानाहुः ।
[ ] पृ. १११, ११२ (१०,११)
नेदं प्रत्यक्षलक्षणविधानं किन्तु लोकप्रसिद्धप्रत्यक्षानुवादेन प्रत्यक्षस्य धर्मं प्रत्यनिमित्तप्रतिपादनम् ।
[ ] पृ. ५३५ (१)
नैकोऽसाधारणत्वाद् विशेषो निर्विकल्पकम् ।
तथा च शाबलेयादिरसामान्यग्रहः ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० १] पृ. १८७ (१५,१६,१७,१८)
नेह नानास्ति किंचन ।
[बृहदा० उ० अ० ४ ब्रा० ४ मं० १९] पृ. २७३ (७)
नैकदेशत्रासादृश्येभ्योऽर्थान्तरभावात् ।
[न्यायद० २-१-३८] पृ. ५६१
नैकत्वा मतिर्गौरिति भिन्ना कर्तुं न शक्यते ।
नात्र कारणदोषोऽस्ति बाधकः प्रत्ययोऽपि वा ॥
[श्लो० वा० वन० श्लो० ४९] पृ. ६९६
नैकात्मतां प्रपद्यन्ते न भिद्यन्ते च खण्डशः ।
स्वलक्षणात्मका अर्था विकल्पः प्लवते तु तान् ॥
[तत्त्वसं० का० १०४९] पृ. २०९ (१६,१७)
नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः ।
[तत्त्वार्थ० १-३३] पृ. ६५०,६५६
नैव दानादिचित्तात् स्वर्गः यदि ततो भवेत् तदनन्तरमेवासौ भवेत् अन्यथा मृतादिवस्थितेः कैश्चिन्न भवेत् तस्य च ततो धर्मसंस्तत्र स्वर्गः ।
[ ] पृ. ५०५ (७)
नो चेद् भ्रान्तिनिमित्तेन संयोज्येत गुणान्तरम् ।
शुक्तौ वा रजताकारो रूपसाधर्म्यदर्शनात् ॥
[ ] पृ. ५०७
नौर्जयत्यनर्थकम् । [ ] पृ. १५१ (२)

प

पक्षधर्मतानिश्चयः प्रत्यक्षतः कश्चित् ।
[ ] पृ. ५१२ (१२)
पक्षधर्मतानिश्चयः प्रत्यक्षतोऽनुमानतो वा ।
[ ] पृ. ७६
पक्षधर्मत्वदर्शनेन व्याप्तो हेतुस्त्रिधैव सः ।
अविनाभावनियमाद्धेत्वाभासास्ततोऽपरे ॥
[ ] पृ. ५५६ (१)
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतः ।
शिखी मुण्डी जटी वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥
[ ] पृ. २८१ (८)
पदमभ्यधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ।
[श्लो० वा० शब्द० श्लो० १०७] पृ. ७४१
पदं तभ्यधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ।
अथाधिक्यं भवेत् किंचित् स पदस्य न गोचरः ॥
[श्लो० वा० शब्द० श्लो० १०७] पृ. ४३५ (८,९,१०)
पदार्थपूर्वकस्तस्माद् वाक्यार्थोऽयमवस्थितः ।
[श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३३६] पृ. ७४३
पदार्थानां तु मूलत्वमिष्टं तद्भावभावनः ।
[श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० १११] पृ. ७४३
परमाणुस्वारम्भकाभिमतं कार्यं सद्धर्मोपेतं न भवति, सत्त्वप्रतिपादकप्रमाणाविषयत्वात्, शशशृङ्गवत् ।
[ ] पृ. ६५८
परमात्माऽविभागोऽप्यविद्याविप्लुतमानसैः ।
ग्राह्य-ग्राहक-संवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥
[ ] पृ. ४१४
परलोकिनोऽभावात् परलोकाभावः ।
[ ] पृ. ७३१ (५)
पराधीनेऽपि चैतस्मिन्नानवस्था प्रसज्यते ।
प्रमाणाधीनमेतद्धि स्वतस्तच्च प्रतिष्ठितम् ॥
[तत्त्वसं० का० २८५३] पृ. १८
परानुग्रहार्थमीश्वरः प्रवर्तते यथा कश्चिद् कृतार्थो मुनिरात्महिताऽहितप्राप्ति-परिहारार्थाऽसम्भवेऽपि परहितार्थमुपदेशादिकं करोति, तथा ईश्वरोऽपि आत्मीयामैश्वर्यविभूतिं विख्यापयन् प्राणिनोऽनुग्रहीष्यन् प्रवर्तत इति अथवा तथाविधस्वाभाव्यात् यथा कालस्य वसन्तादीनां पर्यायेण अभिव्यक्तो स्वभाव-अनुमतिकरोत्पत्ति स्वभावतः तथैव ईश्वरस्यापि आविर्भावानुग्रहसंहारादीनां पर्यायेण अभिव्यक्तौ प्राणिनामुत्पत्ति स्थिति-प्रलयहेतुत्वम् । [ ] पृ. ७११ (७,८)
परार्थाश्चक्षुरादयः । [ ] पृ. [illegible]

पराणं प्रधुज्ञानतः सन्त्य श्रीमन्त्रेणापि नम इ गमनानि ।
[ ] पृ. १११

परिणमयनैसा-विरिराडारते ।
[प्रमाण० प्र० श्लो० २१८] पृ. ६४ (५,६)

परिमाणव्यवहारकारणं परिमाणं महद्, अणु, दीर्घम्, ह्रस्वमिति चतुर्विधम् । [ ] पृ. ६७१ (२)

परोऽप्येवं ततश्चास्य सम्बन्धावदनादिना ।
येनेयं व्यवहारात् स्यादवैरस्पोऽपि निश्चना ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० २८९] पृ. ३६

पलालं न दहत्यग्निर्दह्यते न गिरिः क्वचित् ।
नासंयतः प्रभजति भव्यजीवो न सिध्यति ॥
[ ] पृ. ३१७ (११,१२)

पश्चादुपलभ्यते बुद्धिः [ ] पृ. ३६३ (६)

पश्यतः श्वेतमारूपं हेषाशब्दं च शृण्वतः ।
पदविक्षेपशब्दं च श्वेतासो धावतीति धीः ॥
[श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३५८] पृ. ७७१ (२)

पश्यन्नपि न पश्यति । [ ] पृ. २४५,५०६

पिण्डं सेज्जं च वत्थं च चउत्थं पायमेव य ।
अकप्पियं ण इच्छेज्जा पडिगाहेज्ज कप्पियं ॥
[दशवै० अ० ६ गा० ४७] पृ. ७५१

पिंडविसोही समिई भावण-पडिमाइ इंदियनिरोहो ।
पडिलेहण-गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु ॥
[ओघनि० गा० २] पृ. ७५५ (२)

पिण्डभेदेषु गोबुद्धिरेकगोत्वनिबन्धना ।
गवाभासैकरूपाभ्यामेकगोपिण्डबुद्धिवत् ॥
[श्लो० वा० वन० श्लो० ४४] पृ. ६३५ (३,४)

पित्रोश्च ब्राह्मणत्वेन पुत्रब्राह्मणतानुमा ।
सर्वलोकप्रसिद्धा न पक्षधर्ममपेक्षते ॥
[ ] पृ. ५५, ५७० (४)

पीनो दिवा न भुङ्क्ते इत्येवमादिवचःश्रुतौ ।
रात्रिभोजनविज्ञानं श्रुतार्थापत्तिरुच्यते ॥
[श्लो० वा० अर्था० श्लो० ५१] पृ. ५०९

पुरस्सरदीर्घविषयाकान्तगमीहा ।
[ ] पृ. ५५२ (४)

पुरुष एवेदं सर्वम् ।
[श्वेताश्व० ३० अ० ३, १५] पृ.

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतम् ।
[ऋक्सं० मण्ड० १० सू०

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च

[शु० यजु० अ० ३१ सू

पुरुष एवेदं सर्वं

[illegible]

[

पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥
[साङ्ख्यका० २१] पृ. १०१ (१८)

पूरणो अग्निना हेतुर्नो नियतिर्हेतुः ।
गगनाम्भोधरात् धर्मिन्दवा पुनर् भवेत् ॥
[ ] पृ. ७११ (१)

पूर्वं तु बुद्धिमयानां पुनरिडं न करणं कर्तुं ।
[ ] पृ. ६१ (३)

पूर्वस्मादाग्रहार्थात् तत् तथाभ्यासचिरं नानुगच्छति ।
[ ] पृ. ७१ (१)

पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातमाचष्टे ।
[नि० अ० १ ख० १] पृ. ७१५

पृथिव्यादिगुणा रूपादयस्तदर्थाः ।
[ ] पृ. ५११ (११)

द्वित्वादिग्रहणेन त्रिविधं द्रव्यमुपलब्धिलक्षणप्राप्तं ... गुणग्रहणेन सर्वो गुणोऽस्मदाद्युपलब्धिलक्षणप्राप्त ... विशेषणद्वाभ्याम् । [ ] पृ. ५१५

प्रकृतीशादिजन्यत्वं न हि वस्तु प्रसिध्यति ।
[तत्त्वसं० का० १०८३] पृ. २१४ (११)

प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः ।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि ॥
[साङ्ख्यका० २२] पृ. २८१ (१) ७२१ (४)

प्रतिज्ञार्थैकदेशो हि हेतुस्तत्र प्रसज्यते ।
पक्षे धूमविशेषे हि सामान्यं हेतुरिष्यते ॥
[श्लो० वा० शब्दप० ६३] पृ. ५४५

प्रतिपिपादयिषितविशेषो धर्मी ।
[ ] पृ. ५५१

प्रतिभासतोऽप्यक्षत । [ ] पृ. ३७१ (६)

प्रतिभासोपमाः सर्वे धर्माः ।
[ ] पृ ३७१ (८)

प्रतिसूर्यश्च काल्पनिकः प्रकाशक्रियानुगत इव एव ।
[ ] पृ ३६० (६)

प्रत्यक्षं कल्पनापोढमभ्रान्तम् ।
[ ] पृ ५१८ (१५)

प्रत्यक्षं कल्पनापोढं प्रत्यक्षेणैव सिध्यति ॥
[ ] पृ० ५०२

प्रत्यक्षोऽनुमानतो वा । [ ]

पृ १९८

]

पृ १०११ (६)

... १-१०] पृ ५५१

]

पृ ७१,५५१

प्रत्यक्षस्याभावविषयत्वविरोधाच्च ततः प्रमाणान्तराभावो- [illegible] शक्यः नापि कार्यस्वभावलक्षणादनुमानात् कार्य- [illegible] भावयोर्विधिसाधकत्वेनाभावसाधने व्यापारानभ्युपगमात् [illegible] रणव्यापकानुपलम्भयोस्तु अनभ्युपगतयोरगते प्रमाणान्त- [illegible] ऽभावसाधकत्वेन व्यापार एव न सङ्गच्छते अनन्तगमस्य [illegible] अर्थत्वेन व्याप्यत्वेन वा [illegible] ततोऽत्र कार्यकारण- [illegible] व्याप्यव्यापकभावसिद्धावेव व्यापाराद् [illegible] [illegible] स्थानलक्षणस्य विरोधस्यान्यतोऽसिद्धेः ।

[ ] पृ. ५७१ (४)

प्रत्यक्षादेरनुत्पत्तिः प्रमाणाभाव उच्यते ।
सात्मनोऽपरिणामो वा विज्ञानं वान्यवस्तुनि ॥
[श्लो० वा० अभाव० श्लो० ११] पृ. ११,५८० (१)

प्रत्यक्षाद्यवतारस्तु भावांशो गृह्यते यदा ।
व्यापारस्तदनुत्पत्तेरभावांशे जिघृक्षिते ॥
[श्लो० वा० अभाव० श्लो० १७] पृ. ५८१ (८,९,१०)

प्रत्यक्षाऽनुपलम्भसाधनं कार्यकारणभावम् ।
[ ] पृ. ९५

प्रत्यक्षेणावबुद्धेऽपि सादृश्ये गवि च स्मृते ।
विशिष्टस्यान्यतोऽसिद्धेरुपमानप्रमाणता ॥
[श्लो० वा० उपमान० श्लो० ३८] पृ. ५७६

प्रत्यक्षेऽपि यथा देशे स्मर्यमाणे च पावके ।
विशिष्टविषयत्वेन नानुमानाप्रमाणता ॥
[श्लो० वा० उपमान० श्लो० ३९] पृ. ५७६

प्रत्येकसमवेताऽपि जातिरेवैव बुद्धितः ।
[illegible] निर्णयम् ॥
[श्लो० वा० वन० श्लो० ४०] पृ ६९६

प्रत्येकसमवेतार्थविषयैव गोमतिः ।
प्रत्येकं कृत्स्नरूपत्वात् प्रत्येकव्यक्तिबुद्धिवत् ॥
[श्लो० वा० वन० श्लो० ४६] पृ. ६९५ (५)

प्रमाणं हि प्रमाणेन यथा नान्येन साध्यते ।
न सिध्यत्यप्रमाणत्वात् तथैव हि ॥
[तत्त्वसं० का० २८५४] पृ १८

प्रमाणप्रमेयसंशय:–[न्यायसू० १,१,१]
पृ. ५६० (१)

प्रमाणतोऽर्थप्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थवत् प्रमाणम् ।
[वात्स्या० भा० अ० १ सू० १] पृ. ११०, ५०९

प्रमाण-नयैरधिगमः । [तत्त्वार्थ० अ० १ सू० ६]
पृ. ७६०

प्रमाणनिर्णायका [illegible] ।
[लघीयस्त्रय] पृ ७१-७४

प्रमाणपञ्चकं यत्र ।
[श्लो० वा० सू० ५ अभाव० श्लो० १] पृ ४१

प्रमाणपञ्चकं यत्र वस्तुरूपे न जायते ।
वस्तुसत्तावबोधार्थं तत्राभावप्रमाणता ॥
[श्लो० वा० सू० ५ अभाव० श्लो० १] पृ ११,५८०

प्रमाणमविसंवादि । [ ]
पृ. ४६५ (६)

प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम् । [ ]
पृ. १४,१५

प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम् अर्थक्रियास्थितिरविसंवादनम् ।
[ ] पृ. १५,५११ (५)

प्रमाणषट्कविज्ञातो यत्रार्थो नान्यथा भवेत् ।
अदृष्टं कल्पयत्यन्यं सार्थापत्तिरुदाहृता ॥
[श्लो० वा० अर्था० श्लो० १] पृ. ५०८ (१२,१३,१४)

प्रमाणस्य प्रमाणेन न बाधा नाप्यनुग्रहः ।
बाधायामप्रमाणत्वमानर्थक्यमनुग्रहे ॥
[ ] पृ. ४५६ (११,१२)

प्रमाणस्य फलोऽऽनैकान्तः [illegible] द्वे एव प्रमाणे ।
[ ] पृ. ५६०

प्रमाणस्यागौणत्वादनुमानादर्थनिश्चयो दुर्लभः ।
[ ] पृ ७० (१)

प्रमाणाधीना हि प्रमेयव्यवस्था । पृ. १६८ (१)

प्रमाणाभावनिर्णीतचैत्राभावविशेषितम् ।
गेहाच्चैत्रबहिर्भावसिद्धिर्वा लिङ्गदर्शिता ॥
[श्लो० वा० अर्था० श्लो० ८] पृ. ५७९

प्रमाणु-प्रदेश [illegible] [illegible] पदार्थो भिद्यते यथा [illegible] प्रमाणम् । [ ] पृ० १०९

प्रमेया च तुलाप्रामाण्यवत् । [न्यायसू० २,१,१६]
पृ ५११,५१८ (१)

प्रयोगनियम एव एकवचनो हेतु ।
[ ] पृ ७११

प्रसङ्गस्यविपर्ययस्तु [illegible] ।
इति विना [illegible] ॥
[तत्त्वसं० का० १०१०] पृ २०३ (१०,१८)

प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् ।
[न्यायसू० १,१,६] पृ ५०० (८)

[illegible] ([illegible]) [illegible] ।
[[illegible] अ० १ आ० १ सूत्र ११]
पृ १००,१०४ (०)

[illegible] (६) [illegible] ।
[ ] पृ ५०३

[illegible] ।
[illegible] ॥
[[illegible] १२] पृ. [illegible]

प्रापणशक्तिः प्रामाण्यम् सदेव च प्रापकत्वम् अन्यथा ज्ञानान्तरव्यवधानेन व्यवस्थिताया: प्राप्तेः कथं प्रवर्तकज्ञान-शक्तिस्वभावता ? तत्र यद्यपि प्रत्यक्षं वस्तुक्षणग्राहि तद्ग्राह-फलं च तस्य प्रदर्शकत्वं तथापि क्षणिकत्वेन तस्याप्राप्तेः तत्सन्तान एव प्राप्यत इति सन्तानाध्यवसायोऽप्यक्षस्य प्रद-र्शकव्यापारो द्रष्टव्यः, अनुमानस्य तु वस्तुग्राहकत्वात् तत्प्राप-कत्वं यद्यपि न सम्भवति तथापि स्वाकारस्य बाह्यवस्त्वध्यवसा-येन पुरुषप्रवृत्तौ निमित्तभावोऽस्तीति तस्य तत्प्रापकमुच्यते ।

[ ] पृ. ४६८ (२,३,४,५)

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः
सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने
नाभाव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः ॥

[ ] पृ. ७१४ (७)

प्रामाण्यं व्यवहारेण । [ ]

[ ] पृ. १११,४५७ (१२)

प्रामाण्यं व्यवहारेण शास्त्रं मोहनिवर्तनम् ।

पृ. ५०८ (३)

प्रामाण्यं व्यवहारेणार्थक्रियालक्षणेन ।

[ ] पृ. १५

प्रामाण्यग्रहणात् पूर्वं स्वरूपेणैव संस्थितम् ।
निरपेक्षं स्वकार्ये च । [श्लो०वा० सू० २ श्लो० ८३]

पृ. ७ (७,८)

प्रेरणाजनिता बुद्धिर्न प्रमाणं न चाप्रमा ।
गुण-दोषविनिर्मुक्तकारणेभ्यः समुद्भवात् ॥

[ ] पृ. ११

प्रेरणाजनिता बुद्धिरप्रमा गुणवर्जितैः ।
कारणैर्जन्यमानत्वाल्लिङ्गाऽऽप्तोक्तबुद्धिवत् ॥

[ ] पृ. ११

प्रेरणाजनिता बुद्धिः प्रमाणं दोषवर्जितैः ।
कारणैर्जन्यमानत्वाल्लिङ्गाऽऽप्तोक्ताक्षबुद्धिवत् ॥

[श्लो० वा० सू० २ श्लो० १८४] पृ. ११

प्रेरणैव धर्मे प्रमाणम् । [ ] पृ. ४१

ब

बन्धवियोगो मोक्षः । [ ] पृ. ७२६ (१)

बहुवचनेन दुर्वचं । [ ] पृ. २७२ (८)

बहुत्वनिश्चयत्वेन तत्संकेतानुसारतः ।
सामान्य-भेदवाच्यत्वमप्येवं न विरुध्यते ॥

[तत्त्वसं० का० १०७५] पृ. २०३

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं च नारकस्य ।

[तत्त्वा० अ० ६ सू० १६] पृ. ५३ (२)

बाधकप्रत्ययस्तावदर्थान्यत्वावधारणम् ।
सोऽनपेक्षप्रमाणत्वात् पूर्वज्ञानमपोहते ॥

[तत्त्वसं० का० २८६६] पृ. १३

बाधकान्तरमुत्पन्नं यद्यस्यान्विच्छतोऽपरम् ।
ततो मध्यमबाधेन पूर्वस्यैव प्रमाणता ॥

[तत्त्वसं० का० २८६८] पृ. १९

बाधाज्ञाने त्वनुत्पन्ने का शङ्का निष्प्रमाणिका ।

[ ] पृ. ३४१ (९)

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरंस्त्वमाध्यात्मिकस्य तपसः परि-बृंहणार्थम् । [स्वयंभूस्तो० ८३] पृ. ७५० (१)

बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितं महाभूतादिकं व्यक्तं सुख-दुःख-निमित्तं भवति, अचेतनत्वात्, कार्यत्वात्, विनाशित्वात्, रूपादिमत्त्वात्, वास्यादिवत् ।

[न्यायवा० पृ० ४५९] पृ. १०१

बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।

[न्यायद० १-१-१५] पृ. ४६२,६८३ (२)

बुद्धौ येऽर्था विवर्तन्ते तानाह अननादयम् ।
निष्ठया च विशिष्टत्वमुक्तमेषामनन्तरम् ॥

. [तत्त्वसं० का० १०७१] पृ. २१२ (२५)

बुद्ध्यादीनां नवानां विशेषगुणानामात्यन्तिकः क्षय आत्मनो मुक्तिः । [ ] पृ. ११३

बुद्ध्यारूढमेवाकारं बाह्यवस्तुविषयं बाह्यवस्तुतया गृहीतं बुद्धिरूपत्वेनाविभावितं शब्दार्थम् ।

[ ] पृ. १८१ (२,३)

ब्रह्म-जीवात्मनामभेदेऽपि बिम्ब-प्रतिबिम्बवत् विद्याऽवि-द्याव्यवस्थां वर्णयन्ति । कथं पुनः संसारिषु विद्याया आत्म-न्युक्याः सम्भवः श्रवण-मनन-ध्यानाभ्यास-तत्साधनयम-नियम-ब्रह्मचर्यादिसाधनत्वात्, तस्य पूर्वमसत्त्वादविद्यावत् । स च श्रवण-मनन-पूर्वकध्यानाभ्यासोऽखिलभेदप्रतियोगि-मुख्यकमेव वेदे दर्शितः–'स एष नेति न' [बृहदा० उ० अ० ३ ब्रा० ९ म० २६] इत्यादिना सप्रतियोगित्वात् भेदप्रपञ्चं निवर्तयताऽऽत्मनापि प्रलीयते, यतः श्रोतव्यादीनामभावे न श्रवणादीनामुपपत्तिः, स तु तथाभूतोऽभ्यस्यमानः स्वविषयं प्रविलापयन्नात्मोपघाताय कल्पते तदभ्यासस्य परिशुद्धात्मप्र-काशफलत्वात् यथा रजःसम्पर्ककलुषे उदके द्रव्यविशेषचूर्ण-रजः प्रक्षिप्तं रजोऽन्तराणि संहरत् स्वयमपि संह्रियमाणं स्वस्थां स्वरूपावस्थामुपनयति एवं श्रवणादिभिर्भेदाविरह्नर-स्वस्थो स्वरूपावस्थामुपनयति विशेषात् स्वगतेऽपि भेदे समुच्छिन्ने स्वरूपे संसार्यवतिष्ठते यतोऽविद्ययैव परमात्मनः संसार्यात्मा भिद्यते तन्निवृत्तौ कथं न परमात्मस्वरूपता यथा घटादिभेदे व्योम्नः परमाकाशतैव महा-स्वच्छेदव्यावृत्तौ ? तथैतत् स्यात्–श्रवणादिभेदविषयतया-ऽविद्यास्वभावः कथं वा अविद्यैव अविद्यां निवर्तयति ? उच्यते यथा रजसा रजसः प्रशमः एवं भेदात्मकश्रवणमनन-ध्यानाभ्यासानां भेददर्शनविरोधित्वादविद्यया अन्यविद्यानिर-सनत्वम् । तथा च तत्त्वबिन्दिरत्रार्थे निदर्शनान्युक्तानि–यथा पयः पयो जरयति स्वयं च जीर्यति, यथा विषं विषान्तरं

ब्राह्मणो न हन्तव्यः इत्ये न सत्यमिति [ ] एवं भव-नादिषु द्रष्टव्यम् । [ ]
पृ.२७८,२७९ (१,२,३,४,५,६,७,८,९,१०,११,१२)

ब्रह्मत्वादिजात्यपेक्षयो-जाति-गुण क्रियासमुदायो विना विकल्प-समुच्चयाभ्यामभिधीयते, यथा वनादिशब्दैर्धवादयः ।
पृ. १८० (२,३)

ब्राह्मणो न हन्तव्यः । [ ]
पृ. ७३१ (१)

भ

भई मिच्छादंसणसमूहमइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ संविग्गसुहाहिगम्मस्स ॥
[स० त० का० ३ गा० ६९] पृ. २९

भवतु सांव्यवहारिकं विसंवादकम् अनुमानादिकं प्रत्यक्षादिवदस्वादिविभागाभावाच प्रमाणमनुपपन्नमिति कथं शब्दसंयोजनात् श्रुते स्वलक्षणानुपपत्तिमत् ? तदुक्तम्—प्रमाणस्यागौणत्वादनुमानादर्थनिर्णयो दुर्लभः ।
[चार्वाकाः] पृ. ५५४ (१,२)

भविष्यं वेद्योऽर्थो न ज्ञानकालेऽस्तीति न प्रतिभाति ।
[ ] पृ. ४९९ (५)

भविष्यति न दृष्टं च, प्रत्यक्षस्य मनागपि । सामर्थ्यम् ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११५] पृ. ३१ (२)

भव्वा वि ते अणंता सिद्धिपहं जे न पावेंति ।
[ ] पृ. ७५१

भावेऽपि भवेदेवं कर्तृस्मृत्या तु बाध्यते ।
वेदे तु तत्स्मृतिर्यो तु सार्थवादनिबन्धना ॥
[श्लो० वा० सू० ७ श्लो० ३६०] पृ. ४०

भावनास्तु न पर्याया भावकांशश्च वाचकाः ।
न चैकं वाक्यमेवानेकं चेति वर्णितम् ॥
[तत्त्वसं० का० १०३३] पृ. १०७ (७,८,९,१०)

भावनैव हि वाक्यार्थः सर्वत्राख्यातवत्तया ॥
[श्लो० वा० वाक्याधि० श्लो० ३३०] पृ. ७४२

भावान्तरविनिर्मुक्तो भावोऽत्रानुपलम्भवत् ।
अभावः सम्मतस्तस्य हेतो. किं न समुद्भवः ॥
[ ] पृ. १० (४), ३२० (१६)

भावान्तरात्मकोऽभावो येन सर्वो व्यवस्थित. ।
तत्राश्वादिनिवृत्त्यात्माऽभावः क इति कथ्यताम् ॥
[श्लो० वा० अभा० श्लो० २] पृ. १८७ (१३,१४)

भावा येन निरूप्यन्ते तद्रूपं नास्ति तत्त्वतः ।
यस्मादेकमनेकं वा रूपं तेषां न विद्यते ॥
[ ] पृ. ३०६ (१५)

भावे येन विकल्पः स्याद् विधेरेवानुरोधतः ।
[ ] पृ. ३३३ (११)

भाव्यनिष्ठो भावकव्यापारो भावना ।
[ ] पृ. ७४१

भुवनहेतवः प्रधान-परमाण्वादयः स्वकार्योत्पत्तावतिशयबुद्धि-मन्तमधिष्ठातारमपेक्षन्ते, स्थित्वा प्रवृत्तेः, तन्तु-तुर्यादिवत् ।
[न्यायवा० पृ० ४५७] पृ. १०१

भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ।
[ ] पृ. ४५५ (१)

भूतेभ्यः । [न्यायद० १-१-१२] पृ. ५३१

भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ॥
[सांख्यका० १५] पृ. २८४ (१)

भेदे हि कारणं किञ्चिद् वस्तुधर्मतया भवेत् ।
अभेदे तु विरुध्येते तस्यैकस्य क्रियाऽक्रिये ॥
[ ] पृ. ३०१ (१४)

भोगाभ्यासमनुवर्धन्ते रागाः, कौशलानि चेन्द्रियाणाम् ।
[पात० यो० पा० २ सू० १५ व्यासभा०] पृ. १५३

भ्रान्तिरपि सम्बन्धतः प्रमा ।
[ ] पृ. ४८१ (५), ५०८ (१८)

भ्रान्तिसंवृतिसज्ज्ञानमनुमानानुमानिकम् ।
स्मार्ताभिलापिकं चेति प्रत्यक्षाभं सतैमिरम् ॥
[ ] पृ. ५१७

म

मन्नइ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहिं पन्नत्तं ।
[धर्मसं० ८१९] पृ. ७५६

मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।
[तत्त्वार्थ० अ० १ सू० २७] पृ. ६६१ (१), ७३२

मति-श्रुताऽवधि-मनःपर्याय-केवलानि ज्ञानम् ।
[तत्त्वार्थ० १,९] पृ. ५५५

मतिःस्मृतिःसंज्ञाचिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।
[तत्त्वार्थ० १-१३] पृ. ५५३ (८)

मनेवं प्रतिभासो यो न संस्थानवर्जितः (?)।
एवमन्यत्र दृष्टत्वादनुमानं तथा सति ॥
[ ] पृ. २५१ (१८)

महत्यनेकद्रव्यवत्त्वाद् रूपाच्चोपलब्धिः ।
[वैशेषिकद० अ० ४-१-६] पृ. १००,१०२,६५८

महाभूतादिव्यक्तं चेतनाधिष्ठितं प्राणिनां सुख-दुःखनिमित्तम्, रूपादिमत्त्वात्, तुर्यादिवत् । तथा पृथिव्यादीनि महाभूतानि बुद्धिमत्कारणाधिष्ठितानि स्वासु धारणाद्यासु क्रियासु प्रवर्तन्ते, अनित्यत्वात् वास्यादिवत् ।
[न्यायवा० पृ० ४६७] पृ. १००

मायोपमाः सर्वे धर्माः ।
[ ] पृ. ३७७, ४८८ (८)

मालती च महत्त्वविशेषो यथोत्तरविद. ।
मुख्याऽविच्छिन्नविज्ञानप्रकाशोत्तरविदः ॥
[ ] पृ. ६७६

यदा यदा पूर्वकृतस्य कर्मणः फलं निधानस्थमिवावतिष्ठते ।
तथा तथा तत्प्रतिपादनोद्यता प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्तते ॥
[ ] पृ. ७१४ (८)

यदा स्वेदजमिदं च स्पर्शेनैवोपलभ्यते ।
तदेवं हि स्पर्शेनैतत्पूर्वं ■ प्रताप्यते ॥
[ ] पृ. ५७०

यथा विशुद्धमाकाशं तिमिरोपहतो जनः ।
संकीर्णमिव मात्राभिश्चित्राभिरभिमन्यते ॥
[ ] पृ. १८१ (९)

यथा श्वमांसादीनां स्वत एव अशुचित्वम् अन्येषां च भावानां तद्योगात् तत्, तथेहापि तादात्म्यात् विशेषेषु स्वत एव व्यावृत्तप्रत्ययहेतुत्वम् परमाण्वादिषु तु तद्योगात् । किंच, अतदात्मकेष्वपि अन्यनिमित्तः प्रत्ययो भवत्येव यथा प्रदीपात् घटादिषु न पुनः घटादिभ्यः प्रदीपे एवं विशेषेभ्य एव अश्वादौ विशिष्टप्रत्ययः न अश्वादिभ्य इत्यादिकम् ।
[ ] पृ. १९६ (२)

यथाहेनमेवातोऽसङ्कीर्णार्थाभिधायिनः ।
शब्दा विवेकतो वृत्ताः पर्यायाः न भवन्ति नः ॥
[तत्त्वसं० का० १०४४] पृ. २०६ (२,३,४)

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥
[भग० गी० अ० ४ श्लो० ३७] पृ. १५०

यथैव प्रथमं ज्ञानं तत्संवादमपेक्षते ।
संवादेनापि संवादः पुनर्मृग्यस्तथैव हि ॥
[तत्त्वसं० का० २८५४] पृ. ६ (५)

यथैवोत्पद्यमानोऽयं न सर्वैरवगम्यते ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ८४] पृ. १५

यदपोहोऽपि शब्दस्य शब्दार्थः ।
[ ] पृ. १८० (८,९)

यदा ज्ञानं प्रमाणं तदा हानादिबुद्धयः फलम् ।
[१-१-३ वात्स्या० भा०] पृ. ५१०

यद्यपि पूर्वं दुःखं नास्ति तथाप्यभिलाषस्य दुःखस्वभावत्वात् तन्निबर्हणस्वभावं सुखम् ।
[ ] पृ. १५१ (९)

यदा ■ शब्दवाच्यत्वात् व्यक्तीनामपोह्यता ।
तदाऽपोह्येत सामान्यं तस्यापोहाच्च वस्तुना ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ९५] पृ. १९४ (३)

यदा स्वतः प्रमाणत्वं तदाऽन्यन्नैव मृग्यते ।
निवर्तते हि मिथ्यात्वं दोषाज्ञानादयत्नतः ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५२] पृ. १८

यदि गौरित्ययं शब्दः समर्थोऽन्यनिवर्तने ।
जनको गवि गोबुद्धेर्मृग्यतामपरो ध्वनिः ॥
[भामहालं० परि० ६ श्लो० १७] पृ. १८६ (२३)

यदि चाविद्यमानोऽपि भेदो बुद्धिप्रकल्पितः ।
साध्यसाधनधर्मादेर्व्यवहाराय कल्पते ॥
[श्लो० वा० निरा० श्लो० १७१] पृ. ५६४ (१०)

यदि प्रतीतिरन्यथा न स्यात् सर्वं शोभेत, दृष्टा च पक्षधर्मसम्बन्धवचनमात्रात् प्रतिज्ञावचनमन्तरेणापि प्रतीतिरिति कस्योपयोगः । [धर्मकीर्तिः] पृ. ६७

यदि विरुद्धधर्माध्यासः पदार्थानां भेदको न स्यात् तदाऽन्यस्य तद्भेदकस्याभावाद् विश्वमेकं स्यात् ।
[ ] पृ. १०१

यदि शब्दस्यापोहोऽभिधेयोऽर्थस्तदाऽभिधेयार्थव्यतिरेकेणास्य स्वार्थो वक्तव्यः, अथ स ■ स्वार्थस्तथापि व्याहतमेतत् अन्यशब्दार्थापोहं हि स्वार्थं कुर्वती श्रुतिरभिधत्त इत्युच्यते इति, अस्य हि वाक्यस्यायमर्थस्तदानीं भवत्यभिदधानाभिधत्त इति । [न्यायवा० अ० २ आ० २ सू० ६७ पृ० ३३० पं० २२-पृ० ३३१ पं० ३] पृ. २०४ (१,२)

यदि शब्दान् पक्षयसि तदा 'आनन्त्यात्' इत्यस्य पक्षधर्मत्वाद् व्यधिकरणो हेतुः, अथ भेदा एव पक्षीक्रियन्ते तदा नान्वयी न व्यतिरेकी दृष्टान्तोऽस्तीत्यसिद्धहेतुरानन्त्यम् ।
[न्या० वा० अ० २ आ० २ सू० ६७ पृ० ३३३ पं० १६]
पृ. १७५ (८,९)

यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात् सर्वज्ञः ।
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० १११] पृ. ५७

यदि षड्भिः प्रमाणैः स्यात् सर्वज्ञः केन वार्यते ।
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० १११] पृ. ४९

यदि संयोगो नार्थान्तरं भवेत् तदा क्षेत्रबीजोदकादयो निर्विशिष्टत्वात् सर्वदैवाङ्कुरादिकार्यं कुर्युः, न चैवम्, तस्मात् सर्वदा कार्यानारम्भात् क्षेत्रादीन्यङ्कुरोत्पत्तौ कारणान्तरसापेक्षाणि, यथा मृत्पिण्डादिसामग्री घटादिकरणे कुलालादिसापेक्षा; योऽसौ क्षेत्रादिभिरपेक्ष्यः स संयोग इति सिद्धम् । किंच, असौ संयोगो द्रव्ययोर्विशेषणभावेन प्रतीयमानत्वात् ततोऽर्थान्तरत्वेन प्रत्यक्षसिद्ध एव । तथाहि–कश्चित् केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये आहर' इत्युक्तो ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभते ते एवाहरति न द्रव्यमात्रम् । किंच, दूरतरवर्तिनः पुंसः सान्तरेऽपि वने निरन्तरत्वावभासिनी बुद्धिरुदयमासादयति, सेयं मिथ्याबुद्धिः मुख्यपदार्थानुभवमन्तरेण न क्वचिदुपजायते । न ह्यननुभूतगोदर्शनस्य गवये 'गौः' इति विभ्रमो भवति । तस्मादवश्यं संयोगो मुख्योऽभ्युपगन्तव्यः । तथा, 'न चैत्रः कुण्डली' इत्यनेन प्रतिषेधवाक्येन न कुण्डलं प्रतिषिध्यते, नापि चैत्रः, तयोरन्यत्र देशादौ सत्त्वात् । तस्माच्चैत्रस्य कुण्डलसंयोगः प्रतिषिध्यते । तथा, 'चैत्रः कुण्डली' इत्यनेनापि विधिवाक्येन न चैत्रकुण्डलयोरन्यतरविधानम्, तयोः सिद्धत्वात्, पारिशेष्यात् संयोगविधानम् । तस्मादस्त्येव संयोगः ।
[न्यायवा० पृ० २३९] पृ. ११

येऽपि सातिशया दृष्टाः प्रज्ञा-मेधादिभिर्नराः ।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन न त्वतीन्द्रियदर्शनात् ॥
[ ] पृ. ४६

येषामप्यनवगतोत्पत्तीनां भावानां रूपमुपलभ्यते तेषां तन्तुव्यतिषङ्गजनितं रूपं दृष्ट्वा तद्व्यतिषङ्गविमोचनात् तद्विनाशाद् वा विनङ्क्ष्यतीत्यनुमीयते ।
[ ] पृ. ९४ (६)

योगिप्रत्यक्षं सम्यग्धर्ममप्रत्यक्षमाहुः व्याप्तेः सकलाक्षेपेणावगमात् ।
[ ] पृ. ७५-७६

यो ज्ञानप्रतिभासमन्वयव्यतिरेकावनुकारयति ।
[ ] पृ. ५१४

यो नाम न यदात्मा हि स तस्यासौ उच्यते ।
न भावोऽभावरूपश्च तद्योगे न वस्तुना ॥
[तत्त्वसं० का० १०२] पृ. २१४ (१७,१८)

यो ह्यव्यवस्थितेः संवेद्यतान्यथाऽपि वा ।
स भ्रान्तो न तु तेनैव यो नित्यमुपलभ्यते ॥
[ ] पृ. २७

र

रजतं यदयथार्थं हि निरालम्बीति कथ्यते ।
[ ] पृ. ५३९ (२)

रूपादिज्ञानेष्वालम्बनादिकार्यं सदैव ।
[योगः] पृ. ४२२

रत्नप्रभा विभा तावया विभाऽन्यथा ।
[मीमांसासि० प्रविभ० ३ अ० १ सू० ७८] पृ. ६२९ (१)

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वापरत्वे बुद्धयः सुख-दुःखे इच्छा-द्वेषौ प्रयत्नश्च गुणाः । [वैशेषिकद० १-१-६] पृ. ६७२ (५)

रूपसंस्काराभावाद् वायावनुपलब्धिः ।
[वैशेषिकद० अ० ४-१-७] पृ. १००

रूपादिलक्षणविषयेन्द्रियदानम् अर्थसंबन्धयुक्तयोर्वा लौकिकानाम् । [ ] पृ. ४९९

रूपाभावेऽपि चैकत्वं कल्पनाशिल्पिनिर्मितं यथा ।
भिन्नेऽपि तदेवेति पुनः पर्यवसानतः ॥
[तत्त्वसं० का० १०२२] पृ. २०० (५)

रूवं पुण पासइ अपुट्ठं तु ।
[आवश्यकनि० गा० ५] पृ. ५४५ (५)

ल

लक्षणयुक्ते बाधासम्भवे तल्लक्षणमेव दूषितं स्यात् ।
[ ] पृ. २०५ (६)

लभ्यतेऽवयवतो देशे निवृत्तो न च केनचित् ।
इन्द्रियनिरुद्धानां तु विवेको लोकवद् भवेत् ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० १११] पृ. २८

लक्षणमन्तरेणैव प्रवृत्तिः स्ववेद्य तु ।
[ ] पृ. १०

लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम् ।
[ ] पृ. ४५९ (२,३) ४७५

लिङ्ग-लिङ्गिधियोरेवं पारम्पर्येण वस्तुनि ।
प्रतिबन्धात् तदाभासशून्ययोरप्यवञ्चनम् ॥
[ ] पृ. २०५ (१)

व

वचा नहि कर्म कश्चित् सान्तरेण प्रपद्यते ।
[श्लो० वा० शब्दनित्य० श्लो० २८८] पृ. ४३५ (७)

वचा नहि कर्म कश्चित् सान्तरेण प्रपद्यते ।
यथैवाव्य परेच्छः तथैवैनं विवक्षति ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० २८८] पृ. ११

वचनं राजकीयं वा लौकिकं नापि विद्यते ।
न चाऽपि स्मरणात् पूर्वादृष्टस्य प्रवर्तनम् ॥
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० ११५] पृ. ३१५ (३)

वज्जरिसहे संघयणे । [भगवतीसू० श० १४ उ० ४ सू० ५११] पृ. ६१५ (१,२)

वत्सविवृद्धिनिमित्तं क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य ।
पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य ॥
[सांख्यका० ५७] पृ. १०९

वय-समणधम्म-संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ ।
णाणाइतियं तव-कोहनिग्गहाई चरणमेयं ॥
[ओघनि० भा० ३] ७५५ (२)

वर्णानुपूर्व्यापरत्वं लोके हि गम्यते ।
[ ] पृ. २०१ (२)

वर्तमानावभासि यदि प्रत्यक्षम् । [ ] पृ. ५५१

वस्तुत्वाद् द्विविधस्यात्र सम्भवो दुष्टकारणात् ।
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ५४] पृ. ८ (७-८)

वस्तुने सत्येव [illegible] ... लोके [illegible] ।
[ ] पृ. २०० (११) २०८ (१)

वस्तुभेदप्रसिद्धस्य [illegible] ।
[ ] पृ. ७१

वस्तुभेदे प्रसिद्धस्य । [ ] पृ. ४८०

[illegible]
[illegible] [ ] पृ. [illegible]

[illegible]
[[illegible]] पृ. [illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[[illegible]] पृ. [illegible]

वाक्येष्वदृष्टेष्वपि सार्थकेषु पदार्थचिन्मात्रतया प्रतीतिम् ।
दृष्ट्वानुमानव्यतिरेकमीताः क्लिष्टाः पदाभेदविचारणायाम् ॥
[श्लो० वा० शब्दप० श्लो० १११] पृ० ७३८

वाग्रूपता चेद् व्युत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥
[वाक्यप० प्र० का० श्लो० १२५] पृ. ३८० (१३), ४८९ (३)

वार्यते केनचिन्नापि तदिदानीं प्रदुष्यति ।
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३६] पृ. ४९६ (६)

वार्यते केनचिन्नापि तद् तदानीं प्रदुष्यति ।
ते नेन्द्रियार्थसम्बन्धात् प्रागूर्ध्वं वापि यत् स्मृतेः ॥
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० २३६] पृ. ३१९ (४)

विकल्पप्रतिबिम्बमेव सर्वशब्दानामर्थः, तदेव चाभिधीयते व्यवच्छिद्यत इति च ।
[ ] पृ. १९९ (११,१२)

विकल्पोऽवस्तुनिर्भासाद् विसंवादादुपप्लवः ।
[ ] पृ. ५०० (८), ५११ (१०)

[illegible] । [ ] पृ. ६१३ (१)

[illegible] । [ ] पृ. ४६१

[illegible] ।
[श्लो० वा० [illegible] श्लो० २१७] पृ. ३१९

[illegible] । [बृहदा० उ० अ० ३ ब्रा० ९ मं० २८] पृ. १५१

[illegible]

विशिष्टरूपानुभवान्नान्यतोऽपि निरीक्षिता ।
[ ] पृ. २७४ (१,४)

विशिष्यत इति विशेषः गुणेभ्यो विशेषो गुणविशेषः [illegible] अभिधीयते, द्वितीयश्चात्र गुणविशेषशब्द एकशेष [illegible] तेन गुणपदार्थो गृह्यते—गुणाश्च ते विशेषाश्च गुणविशेषाः—विशेषग्रहणमाकृतिनिरासार्थम् । [illegible] विशेषस्वभावा, संयोगश्च गुणपदार्थान्तर्गतः [illegible] ग्रहणे आकृतेरपि ग्रहणं स्यात्, न च [illegible] इष्यते पृथक् स्वशब्देन तस्या उपादानात् । [illegible] द्रव्यमभिधीयते—तेषां गुणविशेषाणामाश्रय [illegible] त्यर्थः । सूत्रे 'तत्'शब्दलोपं कृत्वा निर्देशः [illegible] विग्रहः कर्तव्यः—गुणविशेषाश्च गुणविशेषाश्चेति गुणविशेषाः तदाश्रयश्चेति गुणविशेषाश्रयः, समाहारद्वन्द्वात् [illegible] त्रिकस्य [अ० २ पा० ४ सू० ११ [illegible] पृ० ४७१ पं० ८] इति [illegible] भवति—योऽयं गुणविशेषाश्रयः सा [illegible] तत्र यदा द्रव्ये मूर्तिशब्दस्तदाऽधिकरणसाधनो [illegible] मूर्च्छन्त्यस्मिन्नवयवा इति मूर्तिः, यदा तु [illegible] साधनः—मूर्च्छन्ति द्रव्ये समवयन्तीति [illegible] शब्दस्तु द्रव्ये कर्मसाधनः [illegible] ।
[व्या० वा० अ० २ आ० १ सू० १६ पृ० १११ पं० ३–२४] पृ. १७७ (९,१०,११)–१०४ (१,१)

विशेषणं विशेष्यं च सम्बन्धं लौकिकीं स्थितिम् ।
गृहीत्वा संकलय्यैतत् तथा प्रत्येति नान्यथा ॥
[ ] पृ. ५१९ (१), ५९९ (१)

[illegible]

वेदाध्ययनमखिलं गुर्वध्ययनपूर्वकम् ।
वेदाध्ययनवाच्यत्वादधुनाऽध्ययनं यथा ॥
[श्लो० वा० सू० ७ श्लो० ३६६] पृ. ४०

वोसट्ठचत्तदेहो विहरइ गामाणुगामं तु ।
[आव० नि० भा० ११६] पृ. ७५०

व्यक्तिजन्मन्यजाता चेदागता नाश्रयान्तरात् ।
प्रागासीद् न च तद्देशे सा तया सङ्गता कथम् ॥
[ ] पृ. २४० (११)

व्यक्तिनाशेन चेन्नष्टा गता व्यक्त्यन्तरं न च ।
तत् शून्ये न स्थिता देशे सा जातिः केति कथ्यताम् ॥
[ ] पृ. २४० (१२)

व्यक्तिरूपावसायेन यदि पातोऽह कथ्यते ।
तद्विज्ञानविसम्बन्धी व्यक्तिज्ञानेऽस्य विद्यते ॥
[तत्त्वसं० का० १३४२] पृ. २२४

व्यक्तिर्गुणविशेषाश्रयो मूर्तिः ।
[न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६६] पृ. १७०

व्यक्तेर्जात्यादियोगेऽपि यदि जातेः स नेष्यते ।
तादात्म्यं कथमिष्टं स्यादनुपप्लुतचेतसाम् ॥
[ ] पृ. २४० (१३,१४)

व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः ।
[न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६५] पृ. १७७

व्यञ्जकानां हि वायूनां भिन्नावयवदेशता ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० ७६–८] पृ. ३६

व्यवहारस्तु तामेव प्रतिवस्तुव्यवस्थिताम् ।
तथैव दृश्यमानत्वाद् व्यवहारयति देहिनः ॥
[ ] पृ. ३११ (५,६)

व्याकृतं च तस्येदमिदमाभ्यवसायिकम् ।
मिथ्यावभासिनो ह्येते प्रत्यया शब्दनिर्मिताः ॥
[तत्त्वसं० का० १२१२] पृ. ३१२ (२१,२२)

व्यावहारिकस्य चैतत् प्रमाणस्य लक्षणमुक्तम् ।
[ ] पृ. ४६०

श

शक्तयः सर्वभावानां कार्यार्थापत्तिगोचराः ।
[श्लो० वा० सू० ५ शून्य० श्लो० २५४] पृ ५४

शब्द एवाभिजल्पत्वमागतः शब्दार्थः ।
[ ] पृ १८० (११

शब्दज्ञानादसन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिः शाब्दम् ।
[१-१ ५ शाबरभा०] पृ ५७७ (२)

शब्दस्य गमकः [illegible] गोशब्दस्य निवेक्ष्यते ।
व्यक्तिरेव विशेषाऽन्तो हेतुर्यत्र प्रयुज्यते ॥
[श्लो० वा० [illegible]] पृ [illegible]

शब्दस्य पूर्वे सर्वत्र [illegible] ।
प्रमाणमागम[illegible] [illegible] ॥
[ ] पृ. ५८०

शब्दस्यागमनं तावददृष्टं परिकल्प्यते ॥
[श्लो० वा० सू० ६ श्लो० १०७] पृ. १८

शब्दादुदेति यद् ज्ञानमप्रत्यक्षेऽपि वस्तुनि ।
शाब्दं तदिति मन्यन्ते प्रमाणान्तरवादिनः ॥
[ ] पृ. ५७४ (४)

शब्दे दोषोद्भवस्तावद् वक्त्रधीन इति स्थितम् ।
तदभावः क्वचित् तावद् गुणवद्वक्तृकत्वतः ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ६२] पृ. १९

शब्दे चाप्यन्वयमात्रं च विशेष्यमिति सादृशम् ।
तेन सामान्यमेष्टव्यं विषयो बुद्धि-शब्दयोः ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ९४] पृ. १९१ (६)

शब्देनाव्यापृताक्षस्य बुद्धावप्रतिभासनात् ।
अर्थस्य दृष्टाविव तदनिर्देश्यस्य वेदकम् ॥
[ ] पृ. ३५० (११,१२) ५२५ (७)

शरीरान्तरेऽपि तदभावाच्च निश्चित तद्गुणा इवलम्ब्यते इत्यभिदधाति । तथाहि–'देवदत्ताङ्गनाङ्गं देवदत्तगुणपूर्वकम्, कार्यत्वे सति तदुपकारकत्वात्, ग्रासादिवत्'। कार्यत्वे च सति-द्वितं कारणं तज्जनने व्यभिचरेऽथ्यपाऽऽतिप्रसङ्गादिति तदङ्गनाप्रादुर्भावदेशे तस्वारुणगुणसिद्धिः । तथा तदङ्गनादौ च प्रतीयन्ते तथाहि–अग्नेरूर्ध्वज्वलनम्, वायोस्तिर्यक् पवनं तद्गुणपूर्वकम्, कार्यत्वे सति तदुपकारकत्वात्, ग्रासादिवत् । अत्र च तद्गुणास्य तद्गुणप्रत्यनुमीयत इति 'अत्रैव एव देवदत्तस्य' इति प्रतिज्ञा अनुमानबाधिता । ततोऽनुमानबाधितकर्मनिर्देशानन्तरप्रयुक्तत्वेन कालात्ययापदिष्टो हेतुः ।
[ ] पृ. १४१–१४० (१)

शाबलेयाच्च भिन्नत्वं बाहुलेयाश्वयोः समम् ।
सामान्यं नान्यदिष्टं चेत् क्वागोऽपोह प्रवर्तनम् ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ७०] पृ. १९० (१०)

शास्त्रस्य तु फले दृष्टे तत्सम्बन्धावसायिता ।
प्रेक्षावन्तः प्रवर्तन्ते तेन वाच्यं प्रयोजनम् ॥
[ ] पृ. १६६ (१०)

शास्त्रार्थप्रतिज्ञाप्रतिपादनपर [illegible] ।
[ ] पृ १०१ (१)

शिरसोऽवयवा निम्ना वृद्धि-[illegible] ।
शशशृङ्गादिरूपेण [illegible] ॥
[श्लो० वा० अभा० पर० श्लो०] पृ [illegible]

[illegible]

[illegible] पृ [illegible]

[illegible]

[illegible] ॥

[illegible]

[illegible]स्थितम् ।
[प्रशस्त० भा० पृ० १०३ पं० [illegible]]

श्रेयःसाधनता ह्येषां नित्यं वेदात् प्रतीयते ।
ताद्रूप्येण च धर्मत्वं तस्मान्नेन्द्रियगोचरः ॥

[श्लो॰ वा॰ सू॰ २ श्लो॰ १४] पृ. ५०५

श्रेयो हि पुरुषप्रीतिः सा द्रव्यगुणकर्मभिः ।
चोदनालक्षणैः साध्या तस्मादेष्वेव धर्मता ॥

[श्लो॰ वा॰ सू॰ २ श्लो॰ १९१] पृ. ५०५

श्रोत्रधीरप्रमाणं स्यादितराभिरसङ्गतेः ।

[श्लो॰ सू॰ २ श्लो॰ ७७] पृ. १६

श्रोत्रादिवृत्तिरविकल्पिका ।

[ ] पृ. ५३३ (१)

ष

षड्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ।

[ ] पृ. १०५, २७६ (९)

षडेव धर्मिणः प्रोक्ताः । [ ] पृ. ६६१ (७)

स

स एवाविनाभावो दृष्टान्ताभ्यां दर्श्यते ।

[ ] पृ. ३६४

संजोगसिद्धीए फलं वयंति ।
[आवश्यकनि॰ पढमाव॰ गा॰ २२] पृ. ७५७ (१)

संयोगस्य द्रव्ययोर्विशेषणत्वेन अध्यक्षतः प्रतीयमानत्वात् । तथाहि–कश्चित् केनचित् 'संयुक्ते द्रव्ये आहर' इत्युक्तो ययोरेव द्रव्ययोः संयोगमुपलभ्य(भ)ते, ते एव आहरति न द्रव्यमात्रम् अन्यथा हि यत् किञ्चिद् आहरेत । एतद् विभागप्रत्ययेऽपि विपर्ययेण सर्वं समानम् । किञ्च, यदि अर्थान्तरभूतौ संयोग-विभागौ वस्तुनो न स्याताम् तदा वस्तुमात्रनिबन्धनौ 'सान्तर-मिदम्' 'निरन्तरम्' इति च प्रत्ययौ नोत्पद्येयाताम् न हि विशेषप्रत्ययौ वस्तुविशेषमन्तरेण सम्भविनौ सर्वदा सर्वत्र भाव-प्रसङ्गात् । अपि च दूरदेशवर्तिनः प्रमातुः सान्तरावस्थितेऽपि धव-खदिरादौ निरन्तरावभासिनी बुद्धिर्जायते या च [illegible] [illegible] सान्तरत्वावभासिनी समुपजायते; [illegible] इदम् 'अनुत्पन्नम्' इति भ्रान्तैकत्वबुद्धिः । न च असौ मुख्यपदार्थमन्तरेण क्वचिद् [illegible] संभवेत् न हि अननुभूतस्य [illegible] 'रजतम्' इति विभ्रमः [illegible] क्वचित् दृष्टो भवति विभ्रमविषयो [illegible] [illegible] च संयोग-विभागसिद्धिः [illegible] अन्यथा [illegible] प्रसङ्गात् । तथा 'कुण्डली देवदत्तः' इति [illegible] [illegible] [illegible] । न कुण्डल-कुण्डल-[illegible] [illegible] [illegible] । अपि च [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कथनात्, अत एव न चैत्रः तदर्थस्य कुण्डलसंयोगः प्रती-यते । एवं 'कुण्डली चैत्रः' इत्यत्रापि चैत्र-कुण्डलयोरन्य-तरस्य विधिः तयोः सिद्धत्वात् । ततः परिशेष्याद् अर्थान्तर-भूत-संयोगस्यैव विधिरिति संयोगादिसिद्धिः समस्तेषु व्यवहारेषु विभक्तविधि-प्रतिषेधश्रुतिः 'चैत्रः कुण्डली' इत्यादि-प्रयोगेषु । किञ्च, यदि संयोगः अर्थान्तरं न भवेत् तदा बीजा-दयः–अविशिष्टत्वात्–सर्वदैव स्वकार्यमङ्कुरादिकं विदध्युः न चैवम् सर्वदा तेषां कार्यानारम्भात्; अतो बीजादयः स्वकार्य-निर्वर्तने कारणान्तरसव्यपेक्षाः मृत्पिण्ड-दण्ड-चक्र-सूत्रादय इव घटादिकरणे; योऽसौ अपेक्ष्यः स संयोगः ।

[ ] पृ. ६७७(४,५)–६७८(१,२,३,४)–६७९(१,३)

संयोग्यादिषु येष्वस्ति प्रतिबन्धो न तादृशः ।
न ते हेतव इत्युक्तं व्यभिचारस्य सम्भवात् ॥

[ ] पृ. ५५९

संवादस्याथ पूर्वेण संवादित्वात् प्रमाणता ।
अन्योऽन्याश्रयभावेन न प्रामाण्यं प्रकल्पते ॥

[ ] पृ. ६

संवित्तिः संवित्तितयैव संवेद्या न संवेद्यतया ।

[ ] पृ. ७९

संवित्स्वाख्यं फलं ज्ञातृव्यापारसद्भावे सामान्यतो दृष्टं लिङ्गम् ।

[ ] पृ. १७

संसट्ठमसंसट्ठा उद्धड तह अप्पलेविया चेव ।
उग्गहिया पग्गहिया उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥

[ ] पृ. ७५५ (४,५)

संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ।

[सांख्यका॰ ४०] पृ. ४१७ (८)

संसर्गमोहितधियो विविक्तं वस्तुगोचरात् ।
भावात्मानं न पश्यन्ति ये तेभ्यः स विविच्यते ॥

[ ] पृ. ७३९

संस्कारे धर्ममेवैकमनुष्ठानाश्रयोचितः ।

[श्लो॰ वा॰ सू॰ ५ सम्बन्धा श्लो॰ ५२]

पृ. १००

संसृज्यन्ते न भिद्यन्ते स्वतोऽर्थाः पारमार्थिकाः ।
रूपमेकमनेकं वा तेषु बुद्धेरुपप्लवः ॥

[ ] पृ. २१० (१,२,३,४)

संहनन-संस्थान-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (स्था॰ । [illegible]) [ ] पृ. २२१ (११)

[illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[ ] ५०३ (८)

[illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥

[ ] पृ ५३५ (३) ५३७ (२)

संख्या-परिमाणानि पृथक्त्वम् संयोग-विभागौ परत्वाऽपरत्वे कर्म च रूपि(द्रव्य)समवायाच्चाक्षुषाणि ।
[वैशेषिकद० ४-१-११] पृ. ११३,६७३ (३) ६८६ (३)
स चेदगोनिवृत्त्यात्मा भवेदन्योन्यसंश्रयः ।
सिद्धश्चेद् गौरपोहार्थं वृथापोहप्रकल्पनम् ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ८४] पृ. १११ (११)
सत्ता-द्रव्यत्वसम्बन्धात् सद्द्रव्यं वस्तु ।
[ ] पृ. ७११
सत्ता-स्वकारणाऽऽश्लेषकरणात् कारणं किल ।
सा सत्ता स च सम्बन्धो नित्यौ कार्यमथेह किम् ॥
[ ] पृ. ३०२ (७)
स सत्सम्पादकत्वादस्तुसम्बन्धहानितः ।
न शब्दाः प्रत्ययाः सर्वे भूतार्थाव्यभिचारिणः ॥
[तत्त्वसं० का० ११६५] पृ. २२७ (६)
सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षम् ।
[जैमि० सू० १-१-४] पृ. ४६,८०,५१४(८)
सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्य इन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत् प्रत्यक्षमनिमित्तम्, विद्यमानोपलम्भनत्वात् ।
[जैमिनीयसू० १-१-४] पृ. ३१
सदकारणवन्नित्यम् ।
[वैशेषिकद० ४-१-१] पृ. ६४७,६५६,७२१
सदुपलम्भकप्रमाणगम्यत्वे षण्णामस्तित्वमभिधीयते, तत्र षट्पदार्थविषयं ज्ञानम् तस्मिन् सति 'सत्' इति व्यवहारप्रवृत्तेः । एवं 'ज्ञानजनितं ज्ञानज्ञेयत्वम्' 'अभिधानजनितम् अभिधेयत्वम्' इत्येवं व्यतिरेकनिबन्धना षण्णां सिद्धा, न चाऽनवस्था, न च षट्पदार्थव्यतिरिक्तपदार्थान्तरप्रसक्तिः ज्ञानस्य गुणपदार्थेऽन्तर्भावात् । [ ] पृ. ६६१ (१०)
सदैव न जन्यते । [ ] पृ. ५७
सद्रूपत्वस्वरूपेण रूपादेरेकतेष्यते ।
स्वरूपापेक्षया चैषां परस्परं विभिन्नता ॥
[श्लो० वा० अभाव० श्लो० २४] पृ. ५८८ (१२)
सद्रूपतामतिक्रान्तस्वभावमिदं जगत् ।
सन्मात्रतया सर्वं संगृह्णन् संग्रहो मतः ॥
[ ] पृ. ३११ (४)
स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।
[तत्त्वार्थ० अ० २ सू० ९] पृ. ६१८
सन्तानविषयत्वेन वस्तुविषयत्वं दूरोत्सारितम् ।
[ ] पृ. ४६८ (९)
सन्ति पञ्च महाभूताः ।
[बृहस्प० प्र० सु० प्र० अ० म० वं० पं० ०] पृ. ५९
संनिकर्षविशेषात् तद्ग्रहणम् ।
[ ] पृ. ५१८
सन्निकृष्टार्थवृत्तित्वं न तु दूरान्तरेष्वयम् ।
[श्लो० वा० निरा० श्लो० ११५] पृ. ५१० (११,१२)

सन् योग्यो यस्मात् सद्भावेनोपलभ्यते ।
नश्यन् भावः कथं तस्य न भावः कार्यतानियात् ॥
[ ] पृ. २३१ (५,६)
सप्त भुवनान्येकबुद्धिनिर्मितानि, एकवस्त्वन्तर्गतत्वात्, एकावसथान्तर्गतानेकापवरकवत्; यथैकावसथान्तर्गतानामपवरकाणां सूत्रधारैकबुद्धिनिर्मितत्वं दृष्टं तथैकस्मिन्नेव भुवनेऽन्तर्गतानि सप्त भुवनानि, तस्मात् तेषामप्येकबुद्धिनिर्मितत्वं निश्चीयते; यद्बुद्धिनिर्मितानि चैतानि स भगवान् महेश्वरः सकलभुवनैकसूत्रधारः । [ ] पृ. ११९
स बहिर्देशसम्बन्धो विस्पष्टमुपलभ्यते ।
[ ] पृ. ११९
समवायिनः श्वैत्यात् श्वैत्यबुद्धेः श्वेते बुद्धिः ।
[वैशेषिकद० ८-१-९] पृ. ६११ (९)
समानप्रसवात्मिका जातिः ।
[न्यायद० अ० २ आ० २ सू० ६८] पृ. १७८ (७)
समाना इति तद्ग्रहात् ।
[ ] पृ. २४२ (१०)
समुच्चयादिर्यो वार्थः कश्चिदेकोपदीपितः ।
तदन्यस्य विकल्पादेर्भवेद् तेन व्यपोहनम् ॥
[तत्त्वसं० का० ११५९] पृ. २१६ (५)
सम्बद्धं वर्तमानं च गृह्यते चक्षुरादिना ।
[श्लो० वा० प्रत्यक्ष० श्लो० ८४] पृ. ५६,५२७ (१)
सम्बद्धबुद्धिजनकं तेषां सम्बन्ध एव च ।
[ ] पृ. ५०७ (५,६)
सम्यगर्थे च संशब्दो दुष्प्रयोगनिवारणः ।
[श्लो० वा० सू० ४ प्रत्यक्ष० श्लो० ३८] पृ. ५३५ (१)
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।
[तत्त्वार्थसू० १-१] पृ. ६५१
सर्ग-स्थित्युपसंहारान् कुर्वन् व्यपरक्षितः ।
कृपया यस्य कुर्वीत सोऽपेक्ष्य रोऽस्मत्प्रभोऽस्तु ॥
[ ] पृ. ७३६ (९,१०)
सर्वो हि पुरुषो व्यवहारोऽन्योऽन्येदृग् , तत्तदर्थं बहु-हानौ प्रवर्तमानत्वात्, अस्मिदादिव्यवहारवत् बुद्ध्यन्ते पदादिषु प्रवर्तमानो व्यवहारो यथा पुरुषे दृष्टः ।
[ ] पृ. ७०१ (३)
सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारः ।
[ ] पृ. १००
सर्व एवायमनुमानानुमेयव्यवहारो बुद्ध्यारूढेन धर्मधर्मिभेदेन ।
[ ] पृ. ५१८ (९)
सर्वचित्त-चैत्तानामात्मसंवेदनं प्रत्यक्षम् ।
[न्या० बि० १-१०] पृ. ५०३ (३) ५०८, ५१६
सर्वचित्तचैत्तानामात्मसंवेदनं प्रत्यक्षम् ।
[ ] पृ. ५०६, (९,९)

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीम्—।
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११७] पृ. ५५

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत् ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११७] पृ. ४५

सर्वज्ञो नावबुध्येत येनैव स्यान्न तं प्रति ।
तद्वाक्यानां प्रमाणत्वं मूलज्ञानेन वाक्यवत् ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३५] पृ. ५३ (२)

सर्वज्ञोऽयमिति ह्येतत् तत्कालेऽपि बुभुत्सुभिः ।
तज्ज्ञानज्ञेयविज्ञानरहितैर्गम्यते कथम् ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० १३४] पृ. ५२

सर्वत्र पर्यनुयोगपराण्येव सूत्राणि बृहस्पतेः ।
[ ] पृ. ६१,७४

सर्वनामैकार्थाश्रयत्वानुच्छेदात् कृत्स्नार्थपरिसमाप्तेश्च यथाक्रमं जातिधर्म्मा एकत्व-नित्यत्व-प्रत्येकपरिसमाप्तिलक्षणा अपोह एवावतिष्ठन्ते; तस्माद् गुणोत्कर्षादर्थान्तरापोह एव शब्दार्थः साधुः । [ ] पृ. २०१ (८)

सर्वेषां [illegible] प्रवर्तते ॥
[श्लो० वा० निरालम्ब० श्लो० १२८] पृ. १७७

[illegible] ।
[illegible] ॥
[ ] पृ. २४१ (१०,११,१२)

[illegible] ।
[ ] पृ. ५११ (२)

[illegible] ।
[ ] पृ. २०३ (१)

[illegible] ।
[illegible] ॥
[[illegible] श्लो० ५] पृ. ११९

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible]

सव्यापारप्रतीतत्वात् प्रमाणं फलमेव सत् ।
[ ] पृ. ४[illegible]

सव्यापारमिवाभाति व्यापारेण स्वकर्मणि ।
[ ] पृ. ४११

सव्वत्थोवा [illegible]
असंखेज्जगुणा । [ ] पृ.

सव्वाओ लद्धीओ । [विशेषा० भा० [illegible]] पृ. १०८ (४)

सव्वे वि एगदूसेण निग्गया जिणवरा ।
[आवश्यकमू० भा० २२७] पृ. [illegible] (४)

स सर्वो (सर्वो) मिथ्यावभासोऽयमर्थ [illegible] लेष्वेका (सर्वेष्वेका) स्वकमहः । [illegible] मदर्थिका ॥ [ ] पृ. १८१ (११,१०,१४)

सहभाविनो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाः ।
[ ] [illegible] (४)

सहवर्तिनो गुणाः । [ ] पृ. [illegible]

सह गुणा । [[illegible]] पृ. [illegible]

[illegible] । [ ] पृ. [illegible]

सांव्यवहारिकस्य च प्रमाणस्य [illegible] ।
[ ] पृ. [illegible]

साकारे से नाणे अणागारे दंसणे ।
[ ] पृ. [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
[[illegible]] पृ. [illegible]

[illegible] ।
[[illegible]] पृ. [illegible]

[illegible]

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रसिद्धिरनुमानात् ।
[सांख्यका० ६] पृ. ५६६
सामान्यप्रत्यक्षात् विशेषाप्रत्यक्षात् विशेषस्मृतेश्च संशयः ।
[वैशेषिकद० २,२, १७] पृ. ४५२ (१)
सामान्यमपि नीलत्वादि नीलाद्याकारमेव अन्यथा 'नीलम्' 'नीलम्' इति अनुवृत्तिप्रत्ययो न स्यात् इति हेतोरसिद्धत्वात् नानुमानबाधा । [ ] पृ. ६१२
सामान्यविषयत्वं हि पदस्य स्थापयिष्यते ॥
[श्लो० वा० शब्दप० ५५] पृ. ५७५
सिद्धश्चागौरपोह्येत गोनिषेधात्मकश्च सः ।
तत्र गौरेव वक्तव्यो नञा यः प्रतिषिध्यते ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ८२] पृ. १११ (१०)
सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्धः ।
[न्यायद० अ० १ आ० २ सू० ६] पृ. ९७
सुखमाह्लादनाकारं विज्ञानं मेयबोधनम् ।
शक्तिः क्रियानुमेया स्याद् यूनः कान्तासमागमे ॥
[ ] ४७८ (६)
सुविवेचितं कार्यं कारणं न व्यभिचरति ।
[ ] पृ. ११८,२६६,५६१,
सुविवेचितं कार्यं कारणं न व्यभिचरति अवस्तुदृष्टान्तत्वेन पक्षो विधेयः । [ ] पृ. १०
सोमिला ! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए य अहं ।
से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ ! एगे वि अहं ।
[भग० श० १८ उ० १० सू० ६४७] पृ. ६१५
सोमिला ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, णाणदंसणट्ठयाए दुवे अहं ।
[भगवती० श० १८ उ० १० सू० ६४७] पृ. ६१५
सोऽयं प्रमाणार्थोऽपरिसंख्येयः ।
[वात्स्या० भा० पृ० १ पं० १२] पृ. ५२४
सो य तवो कायव्वो जेण मणो मंगुलं न चिंतेइ ।
[पयर० पृ. ३५ गा० २१४] पृ. ७४१ (२)
स्त्रीत्वादयो गोत्वादय इव सामान्यविशेषाः ।
[ ] पृ. २२२ (३)
स्मृत्यनुमानागमसंशयप्रतिभास्वप्नज्ञानोहाः सुखादिप्रत्यक्षमिच्छादयश्च मनसो लिङ्गानि । [१-१-१६ वात्स्या० भा०] पृ. ५६२
स्वधर्मेण युक्त एव सर्वो युज्यते नर ।
■ तथाऽऽकृष्यते तेन न यथा स्वयमिच्छति ॥
[ ] पृ. ७१५
स्वकारणसमवायकालः प्रथमः ततः स्वतःसाध्यविभागक्रियाकालः ततः अवयवकर्मकालः ततः अवयवविभागकालः ततः आरम्भकसंयोगविनाशकालः ततः द्रव्यविनाशकाल ।
[ ] ■ ६८७
स्वधियैवानुभावात्मनोऽध्यवसिताकिया ।
[ ] पृ ११६ (१)
स्वदृष्टिनिर्मितो भूयो न तथाऽऽत्मनुमन्यते ।
[ ] पृ ७५

स्वतः सर्वप्रमाणानां प्रामाण्यमिति गम्यताम् ।
नहि स्वतोऽसती शक्तिः कर्तुमन्येन पार्यते ॥
[श्लो० वा० सू० २ श्लो० ४७] पृ. ४
स्वबीजानेकविच्छिन्नवस्तुसङ्केतशक्तितः ।
विकल्पास्तु विभिद्यन्ते तद्रूपाध्यवसायिनः ॥
[तत्त्वसं० का० १०४८] पृ. २०६ (१४,१५)
स्वभावेऽप्यव्यवस्थातः सिद्धे यदि पर्यनुयुज्यते ।
तत्रोत्तरमिदं युक्तं न दृष्टेऽनुपपन्नता ॥
[ ] पृ. ९६
स्वभावेऽप्यविनाभावो भावमात्रानुरोधिनि ।
तदभावे स्वयं भावस्याभावः स्यादभेदतः ॥
[ ] पृ. १३१ (११) ५६९ (४)
स्वभावोऽपि ■ तस्येत्थं येनापेक्ष (?) निवर्तते ।
(?) विरोधिनं यथाऽन्येषां प्रवाहो मुद्गरादिकम् ॥
[ ] पृ. १४८
स्वयमेव भावो न भवेत् । [ ] पृ. ४६५
स्वरूप-पररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मके ।
वस्तुनि ज्ञायते किञ्चिद् रूपं कैश्चित् कदाचन ॥
[श्लो० वा० अभाव प० श्लो० १२] पृ. ५८१ (६)
स्वरूपसत्त्वमात्रेण न स्यात् किञ्चिद् विशेषणम् ।
स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद् विशेषणम् ॥
[श्लो० वा० अपो० श्लो० ८७] पृ. १३२
स्वलक्षणस्य गतिः । [ ] पृ. १५,४६५,४८२, ५१२
स्वरूपेणैव निर्देश्यः । [ ] ५१२
स्वसंवेद्यमनिर्देश्यं रूपमिन्द्रियगोचरः ।
[ ] पृ. १८७ (५)
स्वाभाविकीमविद्यां तु नोच्छेत्तुं कश्चिदर्हति ।
[श्लो० वार्तिक० सू० ५] पृ. १७८
स्वाश्रयेन्द्रियसन्निकर्षापेक्षप्रतीतिकं सामान्यम् ।
[ ] पृ. ६१४
हये नाणं कियाहीणं हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पंगुलो दड्ढो धावमाणो य अंधओ ॥
[आवश्यकनि० पडमाल० गा० ११] पृ ७५६ (८)
हिताहितप्राप्ति-परिहारयो । [ ] पृ. ७१९
सर्वेषु — । [ ] पृ. ११
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे । [ऋग्वेद अ० ८ व० १० सू० १२१] पृ. ३९,७०, ७२
हेतुना ■ कस्यचिद् कार्योत्पादोऽनुमीयते ।
अर्थान्तरापेक्षत्वात् स कालोऽनुमीयते ॥
[ ] पृ. ५६२
हेतुमद्विरुद्धमपि कश्चिदस्तद्भिन्नं विदुः ।
क्वचन वचनं क्वचं विदीन्द्रियकम् ॥
[वाक्यप० १०] पृ. २८१ (१८)
हेत्वन्तरे हेतुः । [ ] पृ २८१ (०)

*सन्मतिटीकागता वादिनो वादाश्च ।

* परिशिष्टेऽस्मिन् सर्वेऽप्यङ्काः पृष्ठाङ्कसूचकाः,( ) एतच्चिह्नान्तर्गताः अङ्काः टिप्पणसूचकाः,[ ] एतच्चिह्नान्तर्गताः शब्दाः मन्थविषयत्वेन सन्दीर्घ सूचकत्वेनोक्ताः ॥

सन्मतिटीकागता वादिनो वादाश्च ।

*सन्मतिटीकागता दार्शनिकाः पारिभाषिकाश्च शब्दाः।

* मध्ये—एतच्चिह्नमात्राः शब्दा अन्याभिप्रायानुसारेण निर्दिष्टाः। ( ) एतच्चिह्नान्तर्गता अङ्काः टिप्पणाङ्कं सूचयन्ति ॥

*सन्मतिटीकागताः केचिद् विशिष्टाः शब्दाः ।

* [illegible]

टीकायामनिर्दिष्टस्थलानामवतरणानां सम्पादकैः संशोधितानि स्थलानि

[बहिर्निर्देशिकर *दुर्गविवर्तिहन्ति स्वकाणि परिशिष्टपत्रके ...]

स्न्मत्यादृंगनानि सम्पादकीयानि च टिप्पणानि।

आ

आ० टिप्पण ३-१,४,५,३-११

ग

गु० टि० ६-१,३-८;४-४,२-११;१०-७,५,१९-४,५;
१५-१,१७-१,१,१९-५;२०-४,८,२१-१;२१-१;
२४-१,२८-४,३१-७,३३-१,७,३७-१;४२-१;४८-
६।

ब

ब० टि० ३९,४-८,९,१५,३९,५-८,१०,१५,१८,२०,२१;
३९,६-१,१,१,७,८,११,३९,७-४,५,७,११,३९,८-१;
४००-५,७,११;४०६-१,४०९-७,१०,१५,४०३-४,
८,१०;४०४-१,७,११;४०५-५,१;४०६-७;४१०-८,
११;४१६-१,४१४-१,४१५-१;४१९-८;४२०-११;
४२६-४,१,७,४२८-१,१,४३३-१,५,१०,१६,१७;
४३५-१,१,१,८,९,१५,१६,१७,१८;४३६-१,४,१४,
१५,४३७-१,४३०-७,८,४३६-१,४३९-५,८,१०,
११,१२;४३३-१,४,८,१,४३४-१,८,११,१२;४३५-
१;४३६-४,७,११,१२,१४,४३७-५,४३८-१,३;
४३९-१,१,१२,१५,१६,१७;४४०-७,८,९,११,४४६-
१,४४५-१;४४७-१,१,४,४४८-१,४४६-१,१,४४७-
५,६,४४८-१,४,१,८,४७६-१,८;४७२-१,४,६,११;
४७४-१,५;४७६-१,४७७-१,१०,११,१२,४७९-१;
४८०-८,४८१-१,४८२-१,१,१;४८३-१,१,१,४,१२;
४८४-१,१,५,८,१०,११;४८५-१,१,७,८,९,१०;
४८६-१,४,५,८,९,११,१४,१५,४८७-१,१,१,७;
४८८-१,५,४९०-१,५;४९१-१,८,१०,१२,१३;
४९४-५;४९६-१,१,१,७,८;४९७-१,७,९,११;४९८-
१,१,४,५,५००-७,९;५०१-१,१,४,५,८;५०२-५,६,
७,९,११;५०३-१,१,७,५०४-१,१,११;५०५-१,४,
५,१०;५०६-४,५,६,७,८;५०७-१,१,१,५,७,१०,११;
५०८-१,७,९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,५०९-
१,१,४,७,८,१०,११;५१०-८,५११-१,१,४,५,६;
५१२-४,५,६,८,१०,११,१४,१०,१८,२०,५१३-१,६,
८,९,११,१२,१५,५१४-१,१,१,१०,११,१७,५१५-१,
७,११,५१६-७,५१७-१,७,११,१४,१५,५१८-१,१;
५१९-६,९,१०,११,१२,१३,५२०-१,५,५२१-१,१;
५२२-१,१,४,८,९,५२३-१,१,१,४,५,९,१०,११;
५२४-१,१,४,७,१०,११/५२५-१,५२६-१,७,५२७-१,
५,११,११,१४,५२८-१,१,१;५२९-१,१,१,७,५३०-८,
११,५३१-१;५३२-१,१,४,१०,११,१४,१५
५३४-१,१,५,५,१०,११,११,१४,१५,५३५-१,
१८,२०;५३६-५,६,७;५३७-१,१,१,८,११,१३;
५३९-१;५४०-१;५४१-१;५४२-१,७,५४४-८,
११,५४७-१;५४८-१,११,१४,५५०-१,५,५५१-१,
५,१,११,११;५५२-४,६,५५३-१,६,५५४-१०,११;
५५५-१,१,४,७,५५७-१,११;५५८-१,१५,१७,५६०-
४,६,८,७;५६१-१,१,११,१३,११;५६२-६,१०;
५६३-१,४,७,८,१०,११,११;५६४-१,५६५-४;
५६६-१;६०५-५,६,७,६०३-१,१,६०४-५,६१०-८,
१४,६११-१,६१२-४,६,६१४-१४,१४,६१५-१,४,
६,७,६१९-१,४,५;६४०-१,६४३-१,१,१,५,७;
७२७-१।

म

मो० टिप्पण २-१;७,१;३-१,१०;७-४;८-२,७,८;११-७;
४२-६,४८-१,१०;६४-५;७२-६,२८-१;३९४-८;
३९५-८,११,१८;३९७-४,१४,४०६-१,४२२-३;
४२३-१५।

म

मो० टिप्पण १८-१०;४८-५,६४-५;७०-५;७२-६;
९८-१,४,१०२-४,५,३९४-१५,३९५-८,९,१०,
१८,२०,२१;३९६-१,६,११;३९७-४,५,७,१४,१५;
४००-११,४०६-३;४०२-१०,११,१५;४०३-४,८,
१०,४०४-५,६,८,११,४०५-५,६,४०६-५;४१०
११;४१२-१;४१४-८,११,४१५-३,४,५,४
४१९-८,१२,४२०-१,६,७,१२,११,१५,
७,४२२-१,३;४२३-१,२,३,५,७,९,

१४,१६,१७,१९;४२४-५,८,१४;४२५-६,८,९,१५, १६,१७,१८;४२६-२,४;४२७-१६;४२८-९;४२९-२; ४३०-७,८;४३१-१,२,३;४३२-५,८,१०,११,१३; ४३३-२,४,८,९;४३४-८,११,१२.

ल

ल० टि० ४०६-५;४१०-८,११;४१२-६;४१४-२;४१५-३;४१९-८;४२०-१२,१३;४२१-४,६,७;४२२-१,३;४२३-१,५,१०,१६;४२४-१३;४२५-६,८,९,१५,१६,१७,१८;४२६-२,४,१४,१५;४२७-६;४३०-७;४३१-१;४३२-५,८,१०,११;४३४-१,६,८,११,१२;४३५-६;४३७-५;४३८-१,२;४३९-१,२,१२,१५,१६,१७;४४०-४,८,९;४४१-६;४४५-२;४४७-१,२,४,४४८-१;४६६-२,६;४६७-५,६,९;४६८-१,४,६;४७१-१,८;४७२-२,४,६,११,१३;४७४-२,५;४७६-२,९;४७७-२,१०,११,१२;४७९-१;४८१-१,३;४८२-१,२,३;४८३-१,२,३,४,१२;४८४-१,३,५,८,१०,११,४८५-१,२,७,८,९,१०;४८६-३,४,५,८,९,११,१४,१५,४८७-१,२,३,४,४८८-२,५,४८९-५,५००-[illegible] [illegible]

५,७,८;५४२-२,४,५,६,१०,११,१२,१३,[illegible] १,२,५,६,७,९,१०,११,१२,१५,[illegible] १२;५४५-६,७,८,९,१०,११,१४,५४६-[illegible] ५४७-१,३,४,७,९,१२,१७,५४८-[illegible] ७;५४९-४,५,७,९,१०,११,१२,१४;[illegible] ५५३-१,७,१२;५५८-६,७,९,११;[illegible] ९;५६२-६,७,५६६-५,६;[illegible] ५७०-१;५७३-२,५७८-३,१२;[illegible] ९,११;५८३-९;५८८-१५,१७;[illegible] ५९४-२;[illegible] २,४,६,७.

य

वि० टिप्पण ९५-५;९७-३;१०६-१,६;१०७-[illegible] ३.

र

धारक टिप्पण ७-१०;९-१२;१२-६;[illegible] २०-३,२२-४,२४-४,५,२८-[illegible] १४;३१-२,३,४,५,८;३२-३,५,[illegible] ४१-१,४४-३;४९-१,५२-७;[illegible] ७;११४-२;११८-४;[illegible] १४३-७,९;[illegible] २२१-७,२४८-१,[illegible] ३३८-१५,१६,२४२-११,[illegible] ३५७-१८,३७०-१२,[illegible] ४२१-१,४२३-६,४३३-८,९,[illegible]

१४,१६,१७,१९;४२४-५,८,१४;४२५-६,८,९,१५,
१६,१७,१८;४२६-२,४;४२७-१६;४२८-९;४२९-२;
४३०-७,८;४३१-१,२,३;४३२-१,८,१०,११,१३;
४३३-२,४,८,९;४३४-८,११,१२.

ल

ल० टि० ४०६-५;४१०-८,११;४१२-६;४१४-२;४१५-
३;४१९-८;४२०-१२,१३;४२१-४,६,७;४२२-१,
२;४२३-१,५,१०,१६;४२४-१३;४२५-६,८,९,१५,
१६,१७,१८;४२६-२,४,१४,१५;४२७-६;४३०-७;
४३१-१;४३२-५,८,१०,११;४३४-२,६,८,११,१३;
४३५-६;४३७-५;४३८-१,३;४३९-१,२,१३,१५,
१६,१७;४४०-७,८,९;४४१-६;४४५-२;४४७-१,२,
४,४४८-१;४६६-२,६;४६७-५,६,९;४६८-१,४,६;
४७१-६,८;४७२-२,४,६,११,१३;४७४-२,५;४७६-
२,९;४७७-२,१०,११,१३;४७९-१;४८१-१,३;
४८२-१,२,३;४८३-१,२,३,४,१२;४८४-१,३,५,८,
१०,११;४८५-१,२,७,८,९,१०;४८६-३,४,५,८,९,
१३,१४,१५;४८७-१,२,३,४;४८८-२,५,४८९-५;
५००-७,९;५०१-१,२,४,५,५०२-५,६,७,९,१३;
५०३-२,३,७;५०४-१,२;५०५-३,४,५,१०;५०६-४,
५,६,७,८;५०७-१,३,७,१०,११;५०८-७,९,१०,११,
१२,१३,१५,१९; ५०९-२,३,४,७,८,१०,११;५१०-
४;५११-२,६;५१२-४,५,६,१०,१३,१४,१७,१८,२०;
५१३-१,६,८,९,११,१३,१५;५१४-१,३,९,१०,११,
१०;५१५-१,७,११;५१६-७;५१७-३,७,११,१४,१५;
५१८-२,३;५१९-६,९,१०,११,१२,१३;५२१-२;
५२२-१,३,४,८,९;५२३-१,२,३,४,५,१०,११;
५२४-३;५२५-३;५२६-१,७,९;५२७-१,९,१२,१३,
१४;५२८-१,२,३,४,७,१०;५२९-३,८,९,१०,१२,
१४;५३१-१;५३४-१;५३७-७,१२;५३८-१,५,७,९,
१०;५३९-१,७,८,१२,१३;५४०-१,२,८;५४१-८,
५,७,८;५४२-२,४,५,६,१०,११,१२,१३,१४;५४३-
१,२,५,६,७,९,१०,११,१२,१५,१६;५४४-१,५,१०,
१३;५४५-६,७,८,९,१०,११,१४;५४६-२,११,१३;
५४७-१,३,४,७,९,१२,१७;५४८-२,४,५,८,९,१०;
५४९-४,५,७,९,१०,११,१२,१४;५५०-३,४,९;
५५३-१,७,१२;५५८-६,७,९,१३;५६०-५;५६१-६,
९;५६२-६,७;५६६-५,६;५६७-१,२;५६९-२,६;
५७०-१;५७३-३;५७८-१,१२;५८०-५;५८१-३,६,
९,११;५८३-९;५८८-१५,१७;५९१-२,३,११;
५९४-२;५९७-१;६०५-४,५;६१४-१४,१५;६१५-
२,४,६,७.

व

वि० टिप्पन ९५-५;९७-२;१०६-२,६;१०७-४;१०८-
३.

स

संपादक टिप्पन ७-१०,९-११;१२-६;१६-१;१९-२,४;
२०-२;२२-४;२४-४,५,२८-२;२९-५;३०-५,११,
१४;३१-२,३,४,५,८;३२-१,५,९;३३-८;३९-११;
४१-१,४४-३;४६-१,५२-७;७०-५;८७-१;११०-
७;११४-२,११८-४;११९-९;१२०-३;१४२-१;
१४३-७,९;१६९-३;१७७-११;१७९-१,२०७-१,४;
२२१-७,२४८-१,२५७-३;२७२-१४,२८०-६;
३३८-१५,१९;३४२-११;३४३-७;३४५-५;३४९-११;
३५७-१८;३७०-११;३९३-४,४००-९,४११-१,९;
४२१-२;४२३-६,४३३-८,९,४३३-२,४९,८-१;
५०२-३,५११-१४;५२९-११,५४५-५,५५०-११;
५६१-१०;५७२-२,५७३-४,५८८-७,५९१-८,८,६;
५९२-२,६,५९२-१८,१९,६०९-१,२,६०८-९;
६६६-५,६२४-५;७०५-६,७०७-८,७१९-९;
७२९-९,७३२-२;७३३-७,९,७३६-२;७५४-११
७५६-६,७६६-१८.

ष

स

सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः।

अनुयोगद्वारसूत्र (सुरत-आगमोदय समिति)
अनुयोगद्वारवृत्ति हरिभद्रीय (रतलाम आवृत्ति)
अनेकान्तजयपताका (अमदावाद)
अनेकान्तजयपताकाटीका (काशी यशोविजय ग्रंथमाला)
अनेकान्तजयपताकाटीका (लिखिता)
अन्नंभटमिताक्षरा (काशी-विद्याविलास प्रेस)
अपोहसिद्धिप्रकरण (सिक्स बुद्धिस्ट न्याय टेक्स्ट बिब्लिओथेका इंडिका नं. १२२६ सं. हरप्रसादशास्त्री)
अभिधानचिन्तामणिकोश (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
अभिधानप्पदीपिका (अमदावाद गूजरात पुरातत्त्व मंदिर)
अमरकोश (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला निर्णयसागर प्रेस)
अष्टशती (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
अष्टसहस्री (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
अष्टसहस्रीटीका (लिखिता पूना भांडारकर प्राच्य विद्यासंशोधनमंदिर)
आचाराङ्गसूत्र (सुरत आगमोदय समिति)
आचाराङ्गसूत्रटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
आप्तपरीक्षा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
आप्तमीमांसा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
आवश्यकनिर्युक्ति (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला अपूर्ण)
आवश्यक हरिभद्रीय (सुरत आगमोदयसमिति)
उत्तराध्ययनसूत्र (सुरत देवचंद लालभाइ)
ऋग्वेद
ऋक्संहिता
ओघनिर्युक्ति (सुरत आगमोदयसमिति)
कठोपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
कल्पसूत्र मूल (सुरत देवचंद लालभाई)
कातन्त्रव्याकरण (बिब्लिओथेका इंडिका नं. ८१)
काशिकावृत्ति (काशी-विद्याविलास प्रेस)
कुमारसंभव (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
[illegible] (अमदावाद जैन साहित्यसंशोधक)
[illegible] (प्रथम सरस्वती प्रेस [illegible])
[illegible] (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
[illegible] (सुरत [illegible] ग्रंथमाला)
[illegible] (बिब्लिओथेका इंडिका नं. [illegible])
[illegible] ([illegible])
[illegible] ([illegible] १९०१ [illegible])

जीवविचारप्रकरण (मेसाणा)
जीवाजीवाभिगमसूत्र (सुरत आगमोदयसमिति)
जैनतर्कपरिभाषा (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
जैनेन्द्रव्याकरण (काशी-सं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद)
जैमिनिसूत्र (काशी-विद्याविलास प्रेस)
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (सुरत आगमोदयसमिति)
ज्ञानबिन्दु (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
तत्त्वार्थव्याख्या (अमदावाद पोथी आकार)
तत्त्वार्थटीका (सुरत देवचंद लालभाई पुस्तकाकार)
तत्त्वार्थभाष्य (पूना आर्हतमत प्रभाकर, कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी बेंगाल)
तत्त्वार्थराजवार्तिक (काशी-सनातनजैनग्रंथमाला)
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति)
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालङ्कार (मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति)
तत्त्वार्थसूत्र (मेसाणा)
तत्त्वसंग्रहकारिका (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
तत्त्वसंग्रह पञ्जिका (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
तत्त्वोपप्लव (लिखित गूजरात पुरातत्त्व मंदिर)
तन्त्रवार्तिक (काशी)
त्रिंशिकाविज्ञप्ति (सं. प्रॉ० सिल्वन् लेवी पेरिस)
त्रिंशिकाविज्ञप्तिभाष्य (सं. प्रॉ० सिल्वन् लेवी पेरिस)
दशवैकालिकसूत्र (सुरत देवचंद लालभाई)
दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्ति (सुरत देवचंद लालभाई)
देशीनाममाला (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
द्रव्यगुणपर्यायरास (लिखित)
द्वादशारनयचक्र (लिखित)
धर्मपद (बौद्ध) (ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटि प्रेस १८८५)
धर्मसंग्रहणी (सुरत देवचंद लालभाई)
धर्मसंग्रहणीवृत्ति (सुरत देवचंद लालभाई)
नयकर्णिका? त्रिसूत्री (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
नयोपदेशवृत्ति (भावनगर आत्मानंदसभा)
नयरहस्य
नियमसार (मुंबई जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय)
नैषधकाव्य (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
[illegible] ([illegible])
नन्दिसूत्र मलयगिरिटीका (सुरत देवचंद लालभाई)
नन्दिसूत्रचूर्णि (लिखित)
न्यायकुमुदचन्द्र (लिखित)
न्यायदर्शन (काशी-विद्याविलास प्रेस)

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य (काशी-विद्याविलास प्रेस)
न्यायप्रवेशसूत्र (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
न्यायबिन्दुप्रकरण (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ७,१९१८)
न्यायबिन्दुप्रकरणटीका (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ७,१९१८)
न्यायमञ्जरी (सं० गंगाधरशास्त्री विजयनगर ग्रंथमाला)
न्यायवार्तिक (काशी-विद्याविलास प्रेस)
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका (काशी-विद्याविलासप्रेस)
न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
न्यायावतार (पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला)
न्यायावतारटिप्पण (पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला)
पञ्चाध्यायी (सुरत जैनविजयप्रेस)
पञ्चाशकटीका (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
पञ्चास्तिकाय (मुंबई रायचंद्र जैन ग्रंथमाला)
पराशरमाधव (बिब्लिओथेका इन्डिका प्रथमभाग)
परीक्षामुख (सं० घनश्यामदास जैन)
पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर सं० बेचरदास जीवराज दोशी)
पाणिनीयव्याकरण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पाणिनीयमहाभाष्य (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पाणिनीयव्याकरणवार्तिक (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पातञ्जलयोगदर्शनवाचस्पतिमिश्रटीका (काशी-विद्याविलासप्रेस)
प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारसूत्र (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
प्रमाणपरीक्षा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
प्रमाणमीमांसा (पूना आर्हतमत प्रभाकर पुस्तकाकार, अमदावाद पोथीआकार)
प्रमेयकमलमार्तण्ड (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
प्रमेयकमलमार्तण्डटिप्पण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
प्रमेयरत्नकोष (भावनगर जैन धर्मप्रसारक सभा)
प्रवचनसार (मुंबई रायचंद्र जैन शास्त्रमाला)
प्रवचनसारोद्धार (सुरत देवचंद लालभाई)
प्रशमरतिप्रकरण (कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी बंगाल तत्त्वार्थभाष्यपुस्तकान्तः)
प्रशस्तकन्दली (विजयनगर ग्रंथमाला सं० विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी)
प्रज्ञापनासूत्र (सुरत देवचंद लालभाई)
प्राकृतपिङ्गल (कलकत्ता सं० चंद्रमोहन घोष)
प्राकृतप्रकाश (काशी-विद्याविलास प्रेस)
प्राकृतमञ्जरी (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
प्राकृतरूपावतार (सं. ई. हुल्त्श-रॉयल एशियाटिक सोसायटी)
बृहदारण्यकोपनिषद् (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहद्द्रव्यसंग्रह (मुंबई रायचंद्र जैन शास्त्रमाला)
बृहत्संहिता (काशी-पं. सुधाकर द्विवेदी संपादित)
बोधिचर्यावतार प्रज्ञापारमितापञ्जिका (बिब्लिओथेका इंडिका १५०)
बौद्धनिधिकोश (कलकत्ता आवृत्ति)
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभामतीटीका (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
भगवद्गीता (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
भगवतीसूत्र (रायचंद्र जिनागमसंग्रह)
भगवतीसूत्रटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
भामहालङ्कार (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
मज्झिमनिकाय (सी. वि. राजवाडे संपादित)
मध्यमकावृत्ति (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ४)
मनुस्मृति (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत आदिपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत वनपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत शान्तिपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महायानसूत्रालङ्कार (पेरिस १९०७ सं० सिल्वन् लेवी)
महाव्युत्पत्ति (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ११)
माठरवृत्ति (साङ्ख्यकारिका) (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
मीमांसादर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
यास्कनिरुक्त (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
योगदर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
पातञ्जलदर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
रत्नाकरावतारिका (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
रामायणबालकाण्ड (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
लघीयस्त्रय (मुंबई माणेकचंद दिगंबर जैनग्रंथमाला)
लघीयस्त्रय स्वोपज्ञ वृत्ति (लिखित)
ललितविस्तरा (सुरत देवचंद लालभाई)
लौकिकन्यायाञ्जलि (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
लङ्कावतारसूत्र (कलकत्ता सं. शरच्चंद्रदास अने विद्याभूषण)
वाक्यपदीयमूल (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाक्यपदीयटीका हेलाराजकृता (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाक्यपदीयटीका पुण्यराजकृता (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाचस्पत्यकोश (कलकत्ता)
वात्स्यायनभाष्य (काशी विद्याविलासप्रेस)
व्यासभाष्य (पूना आनंदाश्रमग्रंथमाला)
वायुपुराण (बिब्लिओथेका इंडिका नं. ८५)
विशेषणवती (लिखित)
विशेषावश्यकबृहद्वृत्ति (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
विशेषावश्यकभाष्य (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (सं. प्रॉ. सिल्वन् लेवी पेरिस)
वैजयन्तीकोश (मद्रास सरकारीप्रेस)
वैद्यकसिन्धु (कविराज उमेदचंद गुप्त कलकत्ता)
वैशेषिकदर्शन (मुंबई गूजरातीप्रेस, काशी-विद्याविलासप्रेस)

सन्मतिसम्पादने उपयुक्तानां ग्रन्थानां सूचिः।

अनुयोगद्वारसूत्र (सुरत-आगमोदय समिति)
अनुयोगद्वारवृत्ति हरिभद्रीय (रतलाम आवृत्ति)
अनेकान्तजयपताका (अमदावाद)
अनेकान्तजयपताकाटीका (काशी यशोविजय ग्रंथमाला)
अनेकान्तजयपताकाटीका (लिखिता)
अन्नंभट्टमिताक्षरा (काशी-विद्याविलास प्रेस)
अपोहसिद्धिप्रकरण (सिक्स बुद्धिस्ट न्याय टेक्स्ट बिब्लि-ओथेका इंडिका नं. १२२६ पं. हरप्रसादशास्त्री)
अभिधानचिन्तामणिकोश (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
अभिधानप्पदीपिका (अमदावाद गूजरात पुरातत्त्व मंदिर)
अमरकोश (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला निर्णयसागर प्रेस)
अष्टशती (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
अष्टसहस्री (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
अष्टसहस्रीटीका (लिखिता पूना भांडारकर प्राच्य विद्यासंशोधनमंदिर)
आचाराङ्गसूत्र (सुरत आगमोदय समिति)
आचाराङ्गसूत्रटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
आप्तपरीक्षा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
आप्तमीमांसा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
आवश्यकनिर्युक्ति (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला अपूर्ण)
आवश्यक हरिभद्रीय (सुरत आगमोदयसमिति)
उत्तराध्ययनसूत्र (सुरत देवचंद लालभाइ)
ऋग्वेद
ऋक्संहिता
ओघनिर्युक्ति (सुरत आगमोदयसमिति)
कठोपनिषद् (ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
कल्पसूत्र मूल (सुरत देवचंद लालभाई)
कातन्त्रव्याकरण (बिब्लिओथेका इंडिका नं. ८१)
काशिकावृत्ति (काशी-विद्याविलास प्रेस)
कुमारसंभव (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
केवलीभुक्तिप्रकरण (अमदावाद जैन साहित्यसंशोधक)
गणरत्नमहोदधि (प्रयाग सरस्वती प्रेस संपादक भीमनाथ शर्मा)
गोमटसार (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
गौडपादकारिका (पूना आनंदाश्रम ग्रंथमाला)
गङ्गानाथ झा अनुवादित श्लोकवार्तिक (बिब्लिओथेका इंडिका नं. ९८६)
चरकसंहिता (कलकत्ता सं० योगेंद्रनाथ सेन)
चान्द्रव्याकरण (लिप्झीक १९०२ संपा० ई. लिबीश)
जीवविचारप्रकरण (मेसाणा)
जीवाजीवाभिगमसूत्र (सुरत आगमोदयसमिति)
जैनतर्कपरिभाषा (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
जैनेन्द्रव्याकरण (काशी-पं. विन्ध्येश्वरीप्रसाद)
जैमिनिसूत्र (काशी-विद्याविलास प्रेस)
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (सुरत आगमोदयसमिति)
ज्ञानबिन्दु (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
तत्त्वार्थव्याख्या (अमदावाद पोथी आकार)
तत्त्वार्थटीका (सुरत देवचंद लालभाई पुस्तकाकार)
तत्त्वार्थभाष्य (पूना आर्हतमत प्रभाकर, कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी बेंगाल)
तत्त्वार्थराजवार्तिक (काशी-सनातनजैनग्रंथमाला)
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति)
तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालङ्कार (मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति)
तत्त्वार्थसूत्र (मेसाणा)
तत्त्वसंग्रहकारिका (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
तत्त्वसंग्रह पञ्जिका (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
तत्त्वोपप्लव (लिखित गूजरात पुरातत्त्व मंदिर)
तन्त्रवार्तिक (काशी)
त्रिंशिकाविज्ञप्ति (सं. प्रॉ० सिल्वन् लेवी पेरिस)
त्रिंशिकाविज्ञप्तिभाष्य (सं. प्रॉ० सिल्वन् लेवी पेरिस)
दशवैकालिकसूत्र (सुरत देवचंद लालभाई)
दशवैकालिकसूत्रनिर्युक्ति (सुरत देवचंद लालभाई)
देशीनाममाला (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
द्रव्यगुणपर्यायरास (लिखित)
द्वादशारनयचक्र (लिखित)
धर्मसंग्रह (बौद्ध) (ऑक्स्फर्ड युनिवर्सिटि प्रेस १८८५)
धर्मसंग्रहणी (सुरत देवचंद लालभाई)
धर्मसंग्रहणीवृत्ति (सुरत देवचंद लालभाई)
नयनप्रसादिनी चित्सुखी (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
नयोपदेशवृत्ति (भावनगर आत्मानंदसभा)
नवतत्त्व
नियमसार (मुंबई जैन ग्रंथरत्नाकर कार्यालय)
नैषधकाव्य (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
नन्दिसूत्रचूर्णिः (रतलामनी आवृत्ति)
नन्दिसूत्र मलयगिरिटीका (सुरत देवचंद लालभाई)
नन्दिसूत्रलघुटीका (लिखित)
न्यायकुमुदचन्द्रोदय (लिखित)
न्यायदर्शन (काशी-विद्याविलास प्रेस)

न्यायदर्शनवात्स्यायनभाष्य (काशी-विद्याविलास प्रेस)
न्यायप्रवेशसूत्र (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति (वडोदरा गायकवाड ग्रंथमाला)
न्यायबिन्दुप्रकरण (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ७,१९१८)
न्यायबिन्दुप्रकरणटीका (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ७,१९१८)
न्यायमञ्जरी (पं० गंगाधरशास्त्री विजयनगर ग्रंथमाला)
न्यायवार्तिक (काशी-विद्याविलास प्रेस)
न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका (काशी-विद्याविलासप्रेस)
न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
न्यायावतार (पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला)
न्यायावतारटिप्पण (पाटण हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला)
पद्मपुराण (सुरत जैनविजयप्रेस)
पञ्चाशकटीका (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
पञ्चास्तिकाय (मुंबई रायचंद जैन ग्रंथमाला)
परमार्थसत्य (बिब्लिओथेका इन्डिका प्रथमभाग)
परीक्षामुख (पं० घनश्यामदास जैन)
पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर शे० बेचरदास जीवराज दोशी)
पाणिनीयव्याकरण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पाणिनीयमहाभाष्य (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पाणिनीयव्याकरणवार्तिक (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
पातञ्जलयोगदर्शनवाचस्पतिमिश्रटीका (काशी-विद्याविलासप्रेस)
प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारसूत्र (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
प्रमाणपरीक्षा (काशी-सनातन जैनग्रंथमाला)
प्रमाणमीमांसा (पूना आर्हतमत प्रभाकर पुस्तकाकार, अमदावाद पोथीआकार)
प्रमेयकमलमार्तण्ड (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
प्रमेयकमलमार्तण्डटिप्पण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
प्रमेयरत्नकोश (भावनगर जैन धर्मप्रसारक सभा)
प्रवचनसार (मुंबई रायचंद जैन शास्त्रमाला)
प्रवचनसारोद्धार (सुरत देवचंद लालभाई)
प्रशमरतिप्रकरण (कलकत्ता रॉयल एशियाटिक सोसायटी बेंगाल तत्त्वार्थभाष्यपुस्तकान्त)
प्रशस्तकन्दली (विजयनगर ग्रंथमाला पं० विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी)
प्रज्ञापनासूत्र (सुरत देवचंद लालभाई)
प्राकृतपिङ्गल (कलकत्ता पं० चंद्रमोहन घोष)
प्राकृतप्रकाश (काशी-विद्याविलास प्रेस)
प्राकृतमञ्जरी (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
प्राकृतरूपावतार (पी. ई. दुन्दा-रॉयल एशियाटिक सोसायटी)
बृहदारण्यकोपनिषद् (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यवार्तिक (पूना आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला)
बृहत्कल्पसंग्रह (मुंबई रायचंद ...)
बृहत्संहिता (काशी-पं. सुधाकर द्विवेदी संपादित)
बोधिचर्यावतार प्रज्ञापारमितापञ्जिका (बिब्लिओथेका इंडिका १५०)
बौद्धाभिधर्मकोश (कलकत्ता ...)
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यभामतीटीका (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
भगवद्गीता (मुंबई निर्णयसागर प्रेस)
भगवतीसूत्र (रायचंद जिनागमसंग्रह)
भगवतीसूत्रटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
भामहालङ्कार (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
मज्झिमनिकाय (सी. वि. राजवाडे संपादित)
मध्यमकवृत्ति (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. ४)
मनुस्मृति (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत आदिपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत वनपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महाभारत शान्तिपर्व (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
महायानसूत्रालङ्कार (पेरिस १९०७ पं० सिल्वन् लेवी)
महाव्युत्पत्ति (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. १३)
माठरवृत्ति (साङ्ख्यकारिका) (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
मीमांसादर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
यास्कनिरुक्त (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
योगदर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
पातञ्जलदर्शन (काशी-विद्याविलासप्रेस)
रत्नाकरावतारिका (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
रामायणअरण्यकाण्ड (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
लघीयस्त्रय (मुंबई माणेकचंद दिगंबर जैनग्रंथमाला)
लघीयस्त्रय स्वोपज्ञ वृत्ति (लिखित)
ललितविस्तरा (सुरत देवचंद लालभाई)
लौकिकन्यायाञ्जलि (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
लङ्कावतारसूत्र (कलकत्ता पं. शरच्चंद्रदास अने विद्याभूषण)
वाक्यपदीयमूल (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाक्यपदीयटीका हेलाराजकृता (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाक्यपदीयटीका पुण्यराजकृता (काशी-चोखंबा ग्रंथमाला)
वाचस्पत्यकोश (कलकत्ता)
वात्स्यायनभाष्य (काशी विद्याविलासप्रेस)
व्यासभाष्य (पूना आनंदाश्रमग्रंथमाला)
वायुपुराण (बिब्लिओथेका इंडिका नं. ८५)
विशेषणवती (लिखित)
विशेषावश्यकबृहद्वृत्ति (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
विशेषावश्यकभाष्य (काशी-यशोविजय ग्रंथमाला)
विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (पं. प्रॉ. सिल्वन् लेवी पेरिस)
वैजयन्तीकोश (मद्रास सहकारीप्रेस)
वैद्यकबिन्दु (कविराज अमेरचंद गुप्त
वैशेषिकदर्शन (मुंबई गूजरातीप्रेस,

वैशेषिकसूत्रदीपिका (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
शाकटायनव्याकरण (मद्रास १८९३ नी आवृत्ति)
शाबरभाष्य (काशी–विद्याविलासप्रेस)
शाब्दबोध (पूना सं. कृष्णाजी गोविंद ओक)
शास्त्रदीपिका युक्तिस्नेहप्रपूरणीसिद्धान्तचन्द्रिकाख्यव्याख्यायुता (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
शास्त्रवार्तासमुच्चय (सुरत देवचंदलालभाई)
शास्त्रवार्तासमुच्चयस्याद्वादकल्पलताटीका (सुरत देवचंदलालभाई)
शिक्षासमुच्चय (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. १. १९०२ नी आवृत्ति
श्रीभाष्य (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
श्वेताश्वतरोपनिषद् (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
श्लोकवार्तिक (काशी–चोखंबा ग्रंथमाला)
श्लोकवार्तिकतात्पर्यपरिशिष्टव्याख्या (काशी–चोखंबा ग्रंथमाला)
षड्दर्शनसमुच्चय (भावनगर आत्मानंद सभा)
षड्दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्ति (बिब्लिओथेका इंडिका नं. १६७)
षड्भाषाचन्द्रिका (सं. कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी) (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
सनातन जैनग्रन्थमाला प्रथमगुच्छक
सन्मतितर्कप्रकरण (अमदावाद गूजरातपुरातत्त्वमंदिर)
सप्तभङ्गीतरङ्गिणी (मुंबई रायचंद जैनग्रंथमाला)
सर्वदर्शनसंग्रह (पूना भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमंदिर)
सर्वार्थसिद्धि (कोल्हापुर जैनेंद्र मुद्रणालय)
सारस्वतव्याकरण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
सिद्धिविनिश्चय (लिखित)
सुभाषित (पूना–रि. वि. [illegible]
सूत्रकृताङ्गसूत्र (सुरत आगमोद[illegible]
सूत्रकृताङ्गटीका ([illegible]
सुत्तनिपातनिद्देस (पालिटेक्स्ट सोसायटी १८८६)
सूर्यसिद्धान्त (टट्ट्वन्स्टन्कॉलेज आवृत्ति हिंदी भाषांतर)
संक्षेपशारीरक (काशी–विद्याविलास प्रेस)
संयुत्तनिकाय (पालिटेक्स्ट सोसायटी १८९८)
साङ्ख्यकारिका (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यदर्शन (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यप्रवचनभाष्य (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यसंग्रह (काशी–विद्याविलास प्रेस)
स्थानाङ्गसूत्र (सुरत आगमोदयसमिति)
स्थानाङ्गटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
स्फुटार्थअभिधर्मकोशव्याख्या (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं २१)
स्फोटसिद्धिन्यायविचार (त्रिवेन्द्रं–संस्कृतग्रंथमाला)
स्याद्वादमञ्जरी (पूना–आर्हतमतप्रभाकर)
स्याद्वादरत्नाकर (पूना–आर्हतमतप्रभाकर पुस्तकाकार, अमदावाद पोथी आकार)
स्वयंभूस्तोत्र (धाँधर प्रेस सोलापुर)
हेतुमुख
हेतुबिन्दुतर्कटीका (अमदावाद गूजरातपुरातत्त्वमंदिर लिखित)
हैमअनेकार्थसंग्रह (सं. श्रीकोशेर थबेरी एज्युकेशन सोसायटी प्रेस)
हेमचन्द्रोऽनुशास[illegible] [illegible]भंडारकर का[illegible])
हैमतत्त्वप्रकाशिका [illegible] (हेमचं[illegible]का पाटण)
हैमधातुपारायण [illegible] [illegible]न सोसायटी प्रेस)
हैमशब्दानुशा[illegible] [illegible]
हैमव्याकरण[illegible] [illegible]
[illegible]

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रन्थावली

आर्यविद्यापाठावली

१७ वैदिक पाठावली—सं० श्री० रसिकलाल छोटालाल परीख. कि० ३–८–०
५ उपनिषत्पाठावली—सं० श्री० दत्तात्रेय बाळकृष्ण कालेलकर. कि० ०–१२–०
१ पालीपाठावली—सं० श्री० जिनविजयजी. कि० ०–१४–०
२ प्राकृतकथासंग्रह— ,, ,, कि० ०–१२–०

मूळ पालीग्रन्थ

६ अभिधम्मत्थसंगहो—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ)
सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० २– ०–०
९ अभिधानप्पदीपिका—(पाली भाषानो शब्दकोष)
सं० श्री० जिनविजयजी कि० ५– ० –०

गूजराती भाषामां बौद्ध ग्रन्थो

१२ धम्मपद—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. कि० १– ० –०
१३ समाधिमार्ग—,, ,, कि० ०– ८ –०
१४ बौद्धसंघनो परिचय—,, ,, कि० २– ० –०
७ बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० ,, कि० २– ८ –०

जैन तत्त्वज्ञानना ग्रन्थो

१० सन्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास दोशी कि० १०–०–०
१६ ,, ,, २— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
१८ ,, ,, ३— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
१९ ,, ,, ४— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
२० तत्त्वार्थसूत्र (गूजराती) वि० पं० सुखलालजी ,, २–४–०
२१ सन्मतितर्क भाग ५—सं० पं० सुखलालजी तथा पं० बेचरदास दोशी ,, १०–०–०

व्याकरणग्रन्थ

१५ प्राकृत व्याकरण—(गूजराती भाषामां प्राकृतभाषानुं व्याकरण)
ले० पं० बे० जी० दोशी कि० ४– ० –०

अलंकारग्रन्थ

११ काव्यप्रकाश—अनु० श्री० रामनारायण विश्वनाथ पाठक अने
श्री० र. छो. परीख. कि० १– ८ –०

वैशेषिकद्वात्रिंशिका (भावनगर जैनधर्मप्रसारक सभा)
शाकटायनव्याकरण (मद्रास १८९३ नी आवृत्ति)
शाबरभाष्य (काशी–विद्याविलासप्रेस)
शाश्वतकोश (पूना सं. कृष्णाजी गोविंद ओक)
शास्त्रदीपिका युक्तिस्नेहप्रपूरणीसिद्धान्तचन्द्रिकाव्याख्यायुता (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
शास्त्रवार्तासमुच्चय (सुरत देवचंदलालभाई)
शास्त्रवार्तासमुच्चयस्याद्वादकल्पलताटीका (सुरत देवचंदलालभाई)
शिक्षासमुच्चय (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं. १. १९०२ नी आवृत्ति
श्रीभाष्य (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
श्वेताश्वतरोपनिषत् (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
श्लोकवार्तिक (काशी–चोखंबा ग्रंथमाला)
श्लोकवार्तिकपार्थसारथिमिश्रव्याख्या (काशी–चोखंबा ग्रंथमाला)
षड्दर्शनसमुच्चय (भावनगर आत्मानंद सभा)
षड्दर्शनसमुच्चयबृहद्वृत्ति (बिब्लिओथेका इंडिका नं. १६७)
षड्भाषाचन्द्रिका (सं. कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी) (मुंबई राजकीय ग्रंथमाला)
सनातन जैनग्रन्थमाला प्रथमगुच्छक
सन्मतितर्कप्रकरण (अमदावाद गूजरातपुरातत्त्वमंदिर)
सप्तभङ्गीतरङ्गिणी (मुंबई रायचंद जैनग्रंथमाला)
सर्वदर्शनसंग्रह (पूना भांडारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमंदिर)
सर्वार्थसिद्धि (कोल्हापुर जैनेंद्र मुद्रणालय)
सारस्वतव्याकरण (मुंबई निर्णयसागरप्रेस)
सिद्धिविनिश्चय (लिखित)
सुत्तनिपात (पूना–पि. वि. बापट)
सूत्रकृताङ्गसूत्र (सुरत आगमोदयसमिति)
सूत्रकृताङ्गटीका („)
सुमङ्गलविलासिनी (पालिटेक्स्ट सोसायटी १८८६)
सूर्यसिद्धान्त (उदयनारायणसिंह आर्यनो हिंदी अनुवाद)
संक्षेपशारीरक (काशी–विद्याविलास प्रेस)
संयुत्तनिकाय (पालिटेक्स्ट सोसायटी १८९८)
साङ्ख्यकारिका (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यदर्शन (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यप्रवचनभाष्य (काशी–विद्याविलास प्रेस)
साङ्ख्यसंग्रह (काशी–विद्याविलास प्रेस)
स्थानाङ्गसूत्र (सुरत आगमोदयसमिति)
स्थानाङ्गटीका (सुरत आगमोदयसमिति)
स्फुटार्थअभिधर्मकोशव्याख्या (बिब्लिओथेका बुद्धिका नं २१)
स्फोटसिद्धिन्यायविचार (त्रिवेन्द्रं–संस्कृतग्रंथमाला)
स्याद्वादमञ्जरी (पूना–आर्हतमतप्रभाकर)
स्याद्वादरत्नाकर (पूना–आर्हतमतप्रभाकर पुस्तकाकार, अमदावाद पोथी आकार)
स्वयंभूस्तोत्र (श्रीधर प्रेस सोलापुर)
हेतुमुख
हेतुबिन्दुतर्कटीका (अमदावाद गूजरातपुरातत्त्वमंदिर लिखित)
हैमअनेकार्थसंग्रह (सं. थीयोडोर जचेरी एज्युकेशन सोसायटी प्रेस)
हैमछन्दोऽनुशासन (मुंबई निर्णयसागर आवृत्ति)
हैमतत्त्वप्रकाशिका बृहन्न्यास (हेमचंद्राचार्य ग्रंथमाला पाटण)
हैमधातुपारायण (मुंबई थ. जोह० किर्स्ट एज्युकेशन सोसायटी प्रेस)
हैमप्राकृतव्याकरण (मुंबई राजकीय आवृत्ति)
हैमव्याकरणबृहद्वृत्ति (अमदावाद आवृत्ति)
हैमव्याकरण (अमदावाद आवृत्ति)

गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित

पुरातत्त्व मंदिर ग्रन्थावली

आर्यविद्यापाठावली

१७ वैदिक पाठावली—सं० श्री० रसिकलाल छोटालाल परीख. किं० ३-८-०
५ उपनिषद्पाठावली—सं० श्री० दत्तात्रेय बाळकृष्ण कालेलकर. किं० ०-१२-०
१ पालीपाठावली—सं० श्री० जिनविजयजी. किं० ०-१४-०
२ प्राकृतकथासंग्रह— „ „ किं० ०-१२-०

मूळ पालीग्रन्थ

६ अभिधम्मत्थसंगहो—(बौद्ध तत्त्वज्ञाननो प्राथमिक ग्रंथ)
सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० २- ०-०
९ अभिधानप्पदीपिका—(पाली भाषानो शब्दकोष)
सं० श्री० जिनविजयजी किं० ५- ० -०

गुजराती भाषामां बौद्ध ग्रन्थो

१२ धम्मपद—सं० अ० धर्मानंद कोसम्बी. किं० [illegible]
१३ समाधिमार्ग— „ „ किं० [illegible]
१४ बौद्धसंघनो परिचय— „ „ किं० [illegible]
७ बुद्धलीलासारसंग्रह—ले० „ किं० [illegible]

जैन तत्त्वज्ञानना ग्रन्थो

१० सन्मतितर्क भाग १—सं० पं० सुखलालजी [illegible]
१६ „ „ २— „ [illegible]
१८ „ „ ३— „ [illegible]
१९ „ „ ४— „ [illegible]
२० तत्त्वार्थसूत्र (गुजराती) [illegible]
२१ सन्मतितर्क भाग ५—[illegible]